5550

'मास्टर' मणिमालायाः १५७ संख्यको मणिः
( धर्मशास्त्रविभागे २ )

॥ श्रीः ॥

# शान्तिमयूखः

रचयिता—
श्रीनीलकण्ठभट्टः

सम्पादक—
स्व० पं० श्रीवायुनन्दनमिश्रः

प्रकाशकः—
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारससिटी ।

मूल्यं सार्द्धरूप्यकद्वयम्

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF ARCHAEOLOGY
CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY

CLASS

CALL NO. S Sa3S INil/M.M

D.G.A. 79.

'मास्टर' मणिमालायाः १५७ संख्यको मणिः ( धर्मशास्त्रविभागे २ )

* श्रीः * Śāntimayūkha

# शान्तिमयूखः ।

रचयिता—
श्रीनीलकण्ठभट्टः ।

सम्पादकः—
स्व० पण्डितश्रीवायुनन्दनमिश्रः ।

संशोधकः—
श्रीमन्नालाल अभिमन्यु एम० ए०

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY New Delhi
5356
Sa3S
Nil/M.M.

प्रकाशकः—
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

प्रथमं संस्करणम् ] मूल्यं रूप्यकद्वयम् [ सन् १९४३ ई०

अधिकारः सर्वथा सुरक्षितः ।

MUNSHI RAM MANOHAR LAL
SANSKRIT & HINDI BOOK-SELLERS
NAI SARAK, DELHI-6.

प्रकाशकः—
जे० एन० यादव प्रोप्राइटर
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारस सिटी।

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY NEW DELHI.
Acc. No. 5356.
Date 29/12/56.
Call No. Sa3S/Nil/M.M.

मुद्रकः—
श्रीमन्नालाल अभिमन्यु एम० ए०
मास्टर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स,
बुलानाला,
बनारस सिटी।

# भूमिका

मयूख ग्रन्थों के रचयिता का नाम संस्कृत-साहित्य-मकरन्द-लोलुपों की जिह्वा पर विराजमान है। मीमांसक भट्ट श्रीनीलकण्ठ ने अपने द्वादश मयूखों से धर्मशास्त्रान्तरिक्ष को प्रदीप्त कर अपनी विलक्षण प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। इन्होंने न केवल अपने नाम को ही, बल्कि अपने आश्रयदाता सेंगर-क्षत्रियवंशावतंस श्रीभगवन्तभास्कर की कीर्ति-वैजयन्ती को भी दिक् विदिक् में स्थापित किया है। इन्होंने अपने राजा की वंशावली 'शान्तिमयूख' के आरम्भ में यों बतलायी है—

ब्रह्मा-कश्यप-विभाण्डक शृङ्गिसुर-कर्णदेव-विशोकदेव-रयदेव-वैराटराज-वीढराज नरब्रह्मदेव-मन्युदेव-चन्द्रपालदेव-शिवगणदेव-रोलिचन्द्रदेव-कर्मसेनदेव-नरहरिदेव-यशोदेव-ताराचन्द्रदेव-चक्रसेनदेव-राजसिंह-भूपतिसाहिदेव-भगवन्तदेव।

महाराज भगवन्तदेव के विषय में अन्त में वे लिखते हैं—

चर्मण्वती-तरणिजा-शुभसङ्गमस्य सान्निध्यभाजि कृतशालिनि मध्यदेशे।
ख्याता भरेहनगरी किल तत्र राजा राजीवलोचनरतो भगवन्तदेवः॥

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि चर्मण्वती (चम्बल) और तरणिजा (यमुना) के सङ्गम पर स्थित भरेह नगर (जिला इटावा) में महाराज भगवन्त देव शासन करते थे और राजाश्रय प्राप्त कर इन्होंने उसी नगर में ग्रन्थप्रणयन किया। 'आज्ञप्तस्तेन राज्ञा' से भी यही ध्वनि निकलती है। जिस समय इन्होंने ग्रन्थारम्भ किया उस समय भारतवर्ष में मुगल सम्राट् जहाँगीर का शासन काल था और जिस समय ये ग्रन्थ लिखे जा चुके थे उस समय जगत्प्रसिद्ध ताजमहल निर्माता शाहजहाँ का राज्यकाल था। इस तरह इनका प्रादुर्भाव काल सन् १६१०–१६५० ई० माना जाता है।

भट्ट श्रीनीलकण्ठ ने इन मयूख ग्रन्थों को बनाया—

१ संस्कार मयूख—इसमें गर्भाधान आदि संस्कारों का उल्लेख है।

२ आचार मयूख—इसमें आचार सम्बन्धी वर्णन है।

३ समय मयूख—इसमें प्रत्येक मास की तिथियों एवं व्रतों का निर्णय है

४ श्राद्ध मयूख—इसमें अष्टका-अन्वष्टका-एकोद्दिष्ट श्राद्धों की विधि है।

५ नीति मयूख—इसमें राजनीति के प्रत्येक अङ्गों पर सूक्ष्म विश्लेषण है।

६ व्यवहार मयूख—इसमें हिन्दू कानून सम्यक् रूप से वर्णित है। अतः गुजरात, बम्बई, उत्तरी कोंकण आदि में इसके अनुसार व्यवस्था है। बम्बई हाईकोर्ट ने 'हिन्दू ला' का इसे प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। श्रीपाण्डुरङ्ग वामन काणे, एम० ए०, एल-एल० एम० ने *History of Dharmasastra Literature* में भी यही बात स्वीकार की है।

७ दानमयूख—इसमें विविध दानों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है।
८ उत्सर्ग मयूख–इसमें जलाशय-तडाग-वापी-कूप-आराम आदि उत्सर्ग हैं।
९ प्रतिष्ठा मयूख—इसमें अनेकविध प्रतिष्ठा का क्रम बतलाया गया है।
१० प्रायश्चित्त मयूख—इसमें प्रायश्चित्त प्रकरण है।
११ शुद्धि मयूख—इसमें शुद्धि का परिपूर्ण रीति से वर्णन है।
१२ शान्ति मयूख—यह पुस्तक आपके कर–कमलों में ही है।

अब दो शब्द इस ग्रन्थ के सम्पादक श्रीवायुनन्दनामश्र कर्मकाण्डी के सम्बन्ध में कहना अप्रासङ्गिक न होगा। आपने कर्मकाण्ड के ग्रन्थों में एक अभिनव, किन्तु आकर्षक, शैली रूपी उष्णरश्मि को जन्म देकर भारतीय विद्वद्वर्य के चित्त–चकोर को हठात् अपनी ओर खींच लिया। आपकी बनायी हुई कुछ पुस्तकों की तालिका इसके अन्तिम आवरण पृष्ठ पर है। इनके अतिरिक्त आपने अन्त्येष्टि सहित कर्मकाण्ड समुच्चय, त्रयोदश संस्कार रत्न, विष्णुप्रतिष्ठा (बौधायनोक्त), लिङ्ग प्रतिष्ठा, काली प्रतिष्ठा, आदि का प्रणयन तथा गोपद्म व्रत कथा, वामन द्वादशी कथा, ऋषि पञ्चमी कथा, अनन्त चतुर्दशी व्रत कथा, महालक्ष्मी पूजा आदि की टीका लिखी है। ये सब कागज की महर्घता एवं दुष्प्राप्य होने से अप्रकाशित हैं। इसके बाद उन्होंने वर्तमान ग्रन्थ 'शान्ति मयूख' के सम्पादन में हाथ लगाया और ७२ पृष्ठ तक ही छपे थे कि सम्वत् १९९६ मार्गशीर्ष शुक्ल २ मङ्गलवार को, रात्रि में दो बजे, ६४ वर्ष की आयु में, अपनी ऐहिक लीला का संवरण कर, सम्भवतः शताश्वमेधकर्ता इन्द्र के महामख में प्रधान ऋत्विज का आसन ग्रहण करने के लिए, अमर-लोक चले गये। आपके निधन से कर्मकाण्ड-संसार की अपूरणीय क्षति हुई। कई अनिवार्य कारणों से लगभग दो वर्षों तक यह यों ही पड़ा रहा। सन् १९४२ ई० में मैंने पूज्यपाद पण्डितजी की हस्तलिखित प्रति का समाश्रय लेकर इसका संशोधन करना आरम्भ कर दिया और एक वर्ष में अवशिष्ट अंशों का यथामति संशोधन किया। पण्डितजी की हस्तलिखित प्रति के अतिरिक्त मेरे पथ-प्रदर्शन के लिए कोई दूसरी प्रति नहीं थी अतः इस पुस्तक में जो भी त्रुटि रह गयी हो उसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। इसके लिए मैं विद्वद्वृन्द से क्षमा प्रार्थी हूँ तथा प्रार्थना करता हूँ कि वे उन त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान दिला देंगे जिसमें दूसरे संस्करण में उनका सुधार किया जा सके।

काशी
१—१—१९४३ ई०

विद्वज्जनचरणचञ्चरीक—
मन्नालाल अभिमन्यु

# ❀ अथ शान्तिमयूखस्य विषयसूची ❀


| प्रकरणम् | पृ० | पं० |
|---|---|---|
| मङ्गलाचरणम् | १ | १ |
| कविवंशकथनम् | १ | ३ |
| शान्तिलक्षणम् | ३ | ५ |
| परिभाषा | ३ | १३ |
| अथ विनायकस्नपनम् | ७ | २६ |
| प्रयोगः | १२ | १९ |
| अथ ग्रहयज्ञः | १७ | ९ |
| अयुतादिहोमं प्रकृत्यवशिष्टः | १८ | २२ |
| ग्रहादीनां लक्षणानि | ३९ | ७ |
| अधिदेवता-प्रत्यधिदेवतालक्षणानि | ४० | १ |
| विनायकादिलक्षणानि | ४१ | २० |
| लोकपालरूपाणि | ४२ | १५ |
| अथ लक्षहोमः | ४३ | १ |
| अथ कोटिहोमः | ४५ | १५ |
| शतमुखकोटिहोमः | ५१ | १ |
| अथ ग्रहमखप्रयोगः | ५६ | ८ |
| मण्डपकरणम् | ५६ | १९ |
| गणेशपूजादि- | ५७ | ७ |
| वास्तुकर्म | ५८ | १ |
| द्वारपूजा | ६३ | १ |
| तोरणपूजा | ६४ | १ |
| अग्निस्थापनम् | ७२ | २५ |
| मण्डलदेवतास्थापनम् | ७३ | १ |
| ग्रहादिस्थापनं पूजनं च | ७६ | १५ |
| कलशस्थापनम् | ८३ | १६ |
| वितानबन्धनम् | ८४ | १३ |
| होमः | ८४ | १५ |
| बलिदानम् | ८६ | २३ |
| पूर्णाहुतिः | ८६ | ३१ |
| अभिषेकः | ८७ | २५ |
| आचार्यादिपूजनम् | ८८ | १३ |
| अथ ग्रहयोगशान्तिः | ८९ | १ |
| ग्रहस्नानानि | ९१ | १६ |
| आदित्यशान्तिः | ९२ | १५ |
| चन्द्रशान्तिः | ९३ | १० |
| मङ्गलशान्तिः | ९४ | १ |
| बुधशान्तिः | ९४ | १६ |
| गुरोः शान्तिः | ९५ | ३ |
| गुरुपूजा | ९५ | २२ |
| शुक्रशान्तिः | ९८ | १ |
| प्रतिशुक्रादिशान्तिः | ९८ | १५ |
| शन्यादिशान्तिः | ९९ | १६ |
| शनिव्रतम् | १०० | ५ |
| शनिस्तोत्रम् | १०१ | ५ |
| अर्कविवाहः | १०३ | १ |
| प्रयोगः | १०६ | ६ |
| ऋतुशान्तिः | १०८ | ८ |
| प्रयोगः | ११४ | १० |
| उपरागे रजोदर्शनविशेषः | ११६ | १४ |
| गोमुखप्रसवविधिः | ११७ | ५ |
| प्रयोगः | ११९ | ५ |
| सदन्तोत्पत्तिशान्तिः | ११९ | १३ |
| कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः | १२१ | १ |

| प्रकरणम् | पृ० | पं० |
|---|---|---|
| सिनीवालीकुहूशान्तिः | १२३ | १ |
| प्रयोगः | १२४ | २३ |
| दर्शजननशान्तिः | १२६ | १ |
| प्रयोगः | १२८ | ५ |
| ज्येष्ठाशान्तिः | १२८ | २६ |
| प्रयोगः | १३१ | १४ |
| मूलशान्तिः | १३२ | १९ |
| मूलाश्लेषाशान्त्योःप्रयोगः | १४१ | ३ |
| वैधृतिव्यतीपात-संक्रांतिशान्तयः | १४६ | ५ |
| प्रयोगः | १४८ | २५ |
| एकनक्षत्रजन्मशान्तिः | १४९ | २८ |
| प्रयोगः | १५० | २० |
| ग्रहणोत्पत्तौ शान्तिः | १५१ | ६ |
| विषघटिकाशान्तिः | १५३ | १ |
| भगण्डान्तशान्तिः | १५४ | ११ |
| दिनक्षयादिशान्तिः | १५५ | १० |
| त्रिकशान्तिः | १५६ | १३ |
| प्रसववैकृतशान्तिः | १५७ | १५ |
| यमलशान्तिः | १५८ | १ |
| ग्रहीगृहीतबालकविधिः | १५९ | १९ |
| बालग्रहस्तवः | १६० | १८ |
| पूतनाविधानम् | १६५ | ५ |
| ज्वराद्युत्पत्तौ शान्तयः | १७० | २५ |
| वारशान्तयः | १७२ | २२ |
| नक्षत्रशान्तयः | १७३ | १५ |
| तिथिवारर्क्षेषु साधारणः प्रयोगः | १८१ | २१ |
| ग्रहणशान्तिः | १८३ | ८ |
| जलाशयवैकृतशान्तिः | १८५ | १६ |
| वृष्टिवैकृतशान्तिः | १८६ | ६ |
| अग्निवैकृतशान्तिः | १८७ | १ |
| प्रतिमादिवैकृतशान्तिः | ,, | २२ |
| आकस्मिकप्रासाद-पतनशान्तिः | १८९ | १ |
| वृक्षविकारशान्तिः | १९० | १२ |
| उत्पातशान्तिः | १९१ | ७ |
| पल्लीसरटशान्तिः | १९२ | १८ |
| ग्रामारण्यादिशान्तिः | १९४ | ५ |
| कपोतशान्तिः | १९५ | १७ |
| काकवैकृतशान्तिः | १९६ | १६ |
| काकमैथुनदर्शनशान्तिः | १९७ | २२ |
| काकस्पर्शशान्तिः | १९८ | २२ |
| सिंहादौ गवादिप्रसूतिशा० | २०२ | १६ |
| मुसलाद्याकस्मिक-स्फुटने शान्तिः | २०४ | ३ |
| विद्युत्पातादिशान्तिः | २०५ | २० |
| मण्याद्यैकदेशभेदे शान्तिः | २०६ | ९ |
| अश्वशान्तिः | २०७ | १ |
| गजशान्तिः | २१० | १४ |
| महाशान्तिः | २१४ | १ |


इति सूचीपत्रम् ।

—०*०—

* श्रीगणेशाय नमः *

# अथ शान्तिमयूखः ।

❀ प्रारभ्यते ❀

महोमयमुदाराभं लोकत्रयनमस्कृतम् ।
तमहं भास्करं वन्दे सतां सर्वार्थसिद्धिदम् ॥१॥
यज्ञे पितामहतनोः खलु कश्यपो य-
स्तस्मादजायत मुनिस्तु विभाण्डकाख्यः ।
तं पुत्रिणां धुरमरोपयदृश्यशृङ्ग-
स्तस्मान्वयेऽप्यजनि शृङ्गिवराभिधानः ॥२॥
तस्मिन्वंशे महति विततेऽसेंगराख्ये नृपाणां
राजा कर्णः समजनि यथा सागरे शीतरश्मिः ।
कीर्त्या यस्य प्रथिततरया श्रोत्रजातेऽभि पूर्णे
कर्णस्याऽपि प्रविततकथा नावकाशं लभन्ते ॥३॥
विशोकाख्यदेवस्ततस्तत्सुतोऽभूत्
विशोकी कृता येन सर्वा धरित्री ।
ततोऽप्यासराजास्तशत्रुस्ततोऽभूत्
रयाख्यो रयेणैव सर्वाहितघ्नः ॥४॥
बभूवाऽथ वैराटराजस्ततोऽभू-
न्नृपो मेदिनीवल्लभो वीढराजः ।
नरब्रह्मदेवस्ततो मन्युदेव-
स्ततोऽभून्नृपश्चन्द्रपालाभिधानः ॥५॥
शिवगणाख्यनृपः समजन्यथो
शिवगणाख्यपुरं प्रचकार यः ।

शिवगणेन समः सकलैर्गुणैः
शिवशिवप्रथमो गणनासु यः ॥६॥
रोलिचन्द इति तत्तनयोऽभूत् कर्मसेननृपतिस्तमथानु ।
लोकपो नरहरिर्नृपराजो रामचन्द्र इति तत्तनुजातः ॥७॥
यशोदेवस्ततो जातस्ताराचन्द्रनृपस्ततः ।
चक्रसेनस्ततो राजा राजसिंहनृपो यतः ॥८॥
ततोऽप्यभूद्भूपतिसाहिदेवः स्वकीर्तिभिर्निर्जितदुग्धसिन्धुः ।
अभूत्ततः श्रीभगवन्तदेवः सदैव भाग्योदयवान् क्षितीशः ॥९॥
यद्दानद्रविणाद्रिनिर्जितवपू रत्नाचलो लज्जया
दूरेस्तब्ध इलावृते निविशते नो यत्र पुंसां गतिः ।
किंच त्रस्पदरातिवामनयनानेत्राम्बुभिर्वर्द्धित-
स्तेजोग्निर्वडवा मुख्योत्थहुतभुक्तुल्यः कथं नो भवेत्॥१०॥
आज्ञप्तस्तेन राज्ञा विविधकुलमणिर्दक्षिणात्यावतंसो
भट्टश्रीनीलकण्ठः स्मृतिषु दृढमतिर्जैमिनीये द्वितीयः ।
आज्ञामादाय मूर्ध्ना सविनयममुना तस्य सर्वान्निबन्धान्
दृष्ट्वा सम्यक् विविच्य प्रविततकिरणस्तन्यते भास्करोऽयम्॥११॥
प्रतारकैरादृतमन्त्रकिञ्चि-
न्मया तु निर्मूलतया तदुज्झितम् ।
ऊनोक्तितातो न हि तेन काचित्
खपुष्पहीनाऽपचितिर्न हीयते ॥१२॥
[1]संस्काराऽऽचा[2]रकालाः[3]समुचितरचनाः[4]श्राद्ध[5]नीती विवा
[6]दो[7]दानो[8]त्सर्ग-[9]प्रतिष्ठा जगति जयकराः सङ्गतार्थाऽनुबद्धाः॥

---

१ संस्कारमयूख २ आचारमयूख ४ समयमयूख ४ श्राद्धमयूख ५ नीतिमयूख । ६ विवादमयूख ७ दानमयूख ८ उत्सर्ग मयूख ९ प्रतिष्ठामयूख

प्राय[1]श्चित्तं विशु[2]द्धिस्तदनु निगदिता शा[3]न्तिरेवं क्रमेण
ख्याता ग्रन्थेऽत्र शुद्धे बुधजनसुखदा द्वादशैते मयूखाः ॥१३॥
भगवन्तभास्कराख्ये ग्रन्थेऽस्मिन् शिष्टसम्मते च ततः ।
शान्तिविवेकमयूखः प्रतन्यते नीलकण्ठेन ॥१४॥

अस्पष्टपापानिदानकैहिकमात्रानिष्टनिवर्त्तकं पापाप्रयोजकं वैधं कर्मशान्तिकम् । क्षयाद्विहरदानादावति प्रसङ्गं वारयितुं निदानकान्तम् ॥ आमुष्मिकानिष्टनिवर्त्तके तं वारयितुमैहिकेति । प्रायश्चित्तं वारयितुं मात्रपदम् । प्रायश्चित्तं त्वामुष्मिकानिष्टनिवर्त्तकमपि, अभिचारप्रत्यभिचारादौ वारयितुं पापाप्रयोजकमिति । तयोः फलतो हिंसात्वेन तदनुष्ठानं प्रायश्चित्तोक्तेश्च पापप्रयोजकत्वात् । अनिष्टनिवर्त्तकत्वं च शान्तिकस्य तन्निदानपापनाशरूपसामग्रीविघटत्वेन पुष्टिफलकं वैधं कर्म पौष्टिकम् ।

तत्र परिभाषा मार्कण्डेयपुराणे—

शिरस्नात[4]श्च कुर्वीत दैवपित्र्यमथाऽपि वा ।
प्राङ्मु[5]खोदङ्मुखो वाऽपि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ॥१॥
तत्रैव—देवार्चना[6]दिकर्माणि तथा गुर्वभिवादनम् ।
कुर्वीत सम्यगाचम्य प्रयतोऽपि सदा द्विजः ॥२॥
बृहन्मनुः—प्राणाना[7]यम्य कुर्वीत सर्वकर्माणि संयतः ।
मार्कण्डेयः—सङ्कल्प्य[8] विधिवत्कुर्यात् स्नानदानव्रतादिकम् ॥३॥
देवलः—मास[9]पक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः ।
उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत् ॥४॥

---

१ प्रायश्चित्तमयूख । २ शुद्धिमयूख । ३ शान्तिमयूख एवं द्वादशमयूख । ४ दैवपित्रकर्म में शिर से स्नान करै । ५ श्मश्रु कर्म पूर्व मुँह या उत्तर मुँह करावै । ६ देवता आदि का पूजन गुरु की वन्दना इत्यादि कर्म आचमन करके करै । ७ प्राणायाम करके । ८ सङ्कल्प युक्त स्नान करै । ९ मासपक्षतिथिवार निमित्त उच्चारण करे ।

मासपक्षतिथयः प्रयोगाधिकरणभूताः सर्वेऽपि यत्तु अनेकदिनसाध्ये कर्मण्याद्यदिने सङ्कल्पकालीनां तिथिमधिकरणत्वेनोल्लिख्य ज्योतिष्टोमेनाह यज्ये इत्यादिसंकल्पवाक्यं प्रयुञ्जते यायजूकाः ॥ तत्तु पदानामन्वयायोगादनादर्त्तव्यम् ॥ यदपि केचित्तेन तेन रूपेण प्रयोगाङ्गतया विहितानामेव मासादीनामुल्लेख इति तदपि न मानाभावात् ॥ अविहितमासादिक आधानादौ मासपक्षतिथीनां ज्योतिष्टोम एकादशीव्रतादौ च मासपक्षयोरुल्लेखाभावप्रसंगाच्च ॥ अतो ज्योतिष्टोमादावेकादश्यादिपूर्णिमान्तानामुल्लेखः ॥ एवमन्यत्रापीति दिक् ॥ अत्र शूद्राणामप्यधिकारः ॥

श्रावयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः—

इत्यादिवाक्येषु श्रावणस्य वृत्यर्थतया रागप्राप्तत्वेन तद्विधौ वैयर्थ्यापत्तेर्निजविवक्षया श्रवणविधानात्तेषां पुराणश्रवणेऽधिकारेण ज्ञानसद्भावात् ॥ वैदिकमन्त्राभावे कथं तद्वत्सु कर्मस्वधिकार इति चेत् ॥ शृणु धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां धर्ममनुष्ठिताः ॥ मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति चेति मनुना मन्त्रवर्जनात् ॥ यत्तु—मेधातिथिर्मन्त्रवर्जितेषूपवासादिष्वधिकारार्थमिदं न तु समन्त्रकेषु मन्त्रपर्युदासेनाधिकारार्थमिति तन्न ॥ अमन्त्रकोपवासादिषु श्रवणविधिनैवाधिकारसिद्धावेतद्वाक्यानर्थक्यापत्तेः ॥ अत एव मोक्षधर्मेऽपि ॥ मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति कुर्वाणाः पौष्टिकीं क्रियामिति ॥ अत्रैतद्वाक्यस्य पौराणत्वेन तत्सामान्योपस्थितपौराणक्रियोद्देशेन मन्त्रवर्जनविधौ पौष्टिकीमित्यस्योद्देशायविशेषणत्वेनाविवक्षितत्वम् ॥ एवं मनुवाक्यस्यैतस्य चैकैव श्रुतिमूलत्वेन कल्प्यते ॥

गृह्यपरिशिष्टे—आदौ विनायकः पूज्य अन्ते तु कुलदेवताः ।
शौनकः—पुण्याहवाचनविधिं वक्ष्यामोऽथ यथाविधि ॥१॥
प्रयोक्तुः कर्मणामादावन्ते चोदयसिद्धये ।
कर्मप्रदीपे—कर्मादिषु तु सर्वत्र मातरः सगणाधिपाः ॥२॥
पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ।
प्रतिमासु च शुद्धासु लिखित्वा वा पटादिषु ॥३॥
अपि वाऽक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ।

कुड्यलग्नावसोर्द्धाराः सप्तवारं घृतेन तु ॥४॥
कारयेत्पञ्चधारा वा नातिनीचो न चोच्छ्रिताः ।
आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥५॥
षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्रद्धदानमुपक्रमेदिति ।
षड्भ्य इति कातीयछन्दोगपरम् ॥

अन्येषां तु नव दैवत्यम्—

अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेहनि ।
अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥६॥
इति वचनात् ॥

सर्वत्राचार्यो यजमानसमशाखीय एव ॥ अन्यथाऽऽचार्यस्य यजमानशाखाध्ययनाभावे तच्छाखीयपदार्थानां निर्वाह एव न स्यात् ॥ स्वशाखयैवानुष्ठाने तु वैगुण्यम् ॥ तथा च पराशरः—

यः स्वशाखां परित्यज्य परशाखां समाश्रयेत् ।
अप्रमाणमृषिं कृत्वा सोऽन्धे तमसि मज्जतीति ॥१॥

ऋत्विजस्तु भिन्नशाखीया अपि सर्वेप्याचार्य्यं ब्रह्मर्त्विजो मधुपर्केण पूज्याः ॥ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेदित्याश्वलायनोक्तेः ॥

सम्पूज्य मधुपर्केण ऋत्विजः कर्मकारयेदिति ॥
विश्वामित्रोक्तेश्च ॥

यो ऋत्विक् यच्छाखीयं कर्म करोति तच्छाखोक्तेन प्रकारेण काण्डानुसमयेन मधुपर्कं कुर्वन्ति यायजूकाः केचित् ॥ परे यजमानशाखोक्तेन ॥ यजमानेन स्वशाखीया ऋत्विग्भिश्च स्वस्वशाखीयाः पदार्था अनेकेषु ऋत्विक्षु पदार्था नु समयेनानुष्ठेया इति तु युक्तं तत्तच्छाखाध्ययनजन्मज्ञानस्याङ्गत्वादेकप्रयोगविधिपरिग्रहाच्च ॥

ऋत्विग्भ्यो देयमुक्तं लिङ्गपुराणे—

वस्त्रयुग्मं तथाप्यूरं केयूरं कर्णभूषणम् ।
अङ्गुलीभूषणं चैव मणिबन्धस्य भूषणम् ॥१॥

कण्ठाभरणयुक्तानि प्रारम्भे धर्मकर्मणः ।
पुरोहिताय दत्वाऽथ ऋत्विग्भ्यश्चाऽपि दापयेत् ॥२॥

आपः पूर्यन्तेऽस्मिन्नित्यप्यूरं जलपात्रम् ॥

मत्स्यपुराणे–यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
पश्चिमद्वारमाश्रित्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥१॥
संग्रहे–समन्ततश्च सिद्धार्थान् किरेद्रक्षोघ्नमन्त्रतः ।
प्रतिष्ठासारे–सर्वतः पञ्चगव्येन प्रोक्षयेद्यागमण्डपम् ॥
आपो हि ष्ठा तृचेनैव ततः स्वस्त्ययनं जपेत् ॥२॥

अत्र हेमाद्रौ वास्तुपूजाप्युक्ता–
समण्डपं प्रविश्याऽथ तोरणादि प्रपूज्य च ।
वास्तुयागं ततः कुर्यात् प्रासादे मण्डपेऽथवा ॥३॥
वास्तुमण्डले च–नैर्ऋत्यां दिशि वास्त्वीशं ब्रह्माद्यांश्च समर्चयेत्
इति शारदोक्तेः ॥

वास्तुहोमस्तु भिन्नस्थण्डिले कार्यः । मुख्यायतने वा ॥ तत्राप्यादौ पृथक्प्रयोगतया प्रधानसमतन्त्रतया वा ॥ शारदातिलके तु होम एव नोक्तः ॥ सर्वं च शान्तिकं पौष्टिकं महादानादिलौकिकाग्नौ कार्यम् । श्रौतस्मार्त्ताग्निप्राप्तौ मानाभावात् ।

यत्तु मनुः–वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गार्ह्यं कर्म यथाविधि ॥
पञ्चयज्ञविधानं च पंक्तिवाऽन्वाहिकी गृहीति ।

तत्स्पष्टं गृह्योक्तपरम् । वैवाहिक इति च दारदायाद्य कालिकयोरप्युपलक्षकम् । तत्सजातीयसंस्कारस्यैव साधनतावच्छेदकत्वात् ॥
यदपि याज्ञवल्क्यः–स्मार्तं कर्म विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही ।
दायकालाहृते वापि श्रौतवैतानिकाग्निष्विति ॥१॥

तत्रापि सामान्यं स्मार्तपदं गार्ह्यं उपसंह्रियते ॥ एतेनाहवनीयादयो निरस्ताः ॥ यदाहवनीये जुहुतीत्यादावश्व प्रतिग्रहेऽष्टौ वैदिक-

त्वसाम्येन वैदिकाश्वदानप्रतिग्रहोपस्थितिवत् वैदिकहोमोपस्थितेश्च। यद्यप्यत्र गार्ह्यस्मार्तं एव श्रौतं च वैतानिक एवेति नियमेन स्मृत्युक्तेऽपि कर्मणि श्रौतस्मार्त्ताग्न्योः प्राप्तिः सम्भाव्यते ॥ तथाऽपि न आहवनीयावसथ्यत्वादिरूपेण ॥ किन्तु लौकिकसाधारणज्वलनत्वेनैव ॥ अन्यथाहुतिप्रक्षेपे आहवनीयत्वादिविघातापत्तेश्च । अत एव सर्वाधानिन औपासनाभावाद्वैतानिप्राप्तेश्च तेन गार्ह्ये लौकिक एव कार्य्यम् ॥ अमुमेव सर्वमर्थं स्मृत्यर्थसारकृदपि संजग्राह ॥

गार्ह्यमौपासने कुर्यात्सर्वाधानी तु लौकिके ।
स्मार्तं च लौकिके कुर्याच्छ्रौतं वैतानिकाऽग्निष्विति ॥१॥

यत्तु नारायणवृत्तौ सर्वाधानिना सोमन्तोन्नयनादि गार्ह्यकर्मार्थं स्मार्त्ताग्निरुत्पादनीय इति ॥ तत्र मूलमन्वेष्यम् ॥ यदपि विज्ञानेश्वरो ऽहयज्ञ औपासन इत्यूचे ॥ तत्रापि मूलमन्वेष्यम् । कातीयपरं वा तत्सूत्रे तथाज्ञानात् ॥ अत एव विनायकशान्तौ लौकिकाग्निमेवाऽवोचत् । अतः स्मृत्युक्तं लौकिक एवेति ॥

कृत्यरत्नाकरे-शुभपात्रं तु कांस्यं स्यात्तेनाग्निं प्रणयेद्बुधः ।
तस्याभावे शरावेण नवेनाभिमुखं च तम् ॥१॥
गोभिलीये-आहूय चैव होतव्यो यो यत्र विहितोऽनलः ।
तथा-लक्षहोमे च वह्निः स्यात्कोटिहोमे हुतासनः ।
पूर्णाहुत्या मृडो नाम शान्तिके वरदः सदा ॥१॥

अन्येषु संस्कारादिकर्मस्वग्नेर्नाम विशेषाः प्रयोगरत्ने ज्ञेयाः ॥

होमविशेषो गोभिलीये-न मुक्तकेशो जुहुयान्नातिपातितजानुकः ।
उत्तानेनैव हस्तेन अङ्गुष्ठाग्रेण पीडितम् ॥ १ ॥
संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्घृतमिति ।

बहुकर्तृके होमे प्रत्याहुतित्यागाशक्तेर्होमारम्भ एव सर्वादेवताश्चतुर्थ्यं तेनोद्दिश्य सर्वाणि द्रव्याणि त्यजेदिति हेमाद्र्यादयः ॥

अथ विनायकस्थापनम्—

याज्ञवल्क्यः-विनायकः कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः ।

गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥१॥
तेनोपसृष्टो यस्तस्य लक्षणानि निबोधत ।
स्वप्नेऽवगाह्यतेत्यर्थं जलं शुण्डांश्च पश्यति ॥२॥
काषायवाससश्चैव क्रव्यादाँश्चाधिरोहति ।
अन्त्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रैः सहैकत्राऽवतिष्ठति ॥३॥
व्रजन्नपि तथाऽऽत्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ।

उपसृष्टः उपद्रुतः ॥ स्वप्ने स्रोतसाऽपह्रियते तत्र मज्जति वानत्वगाहनमात्रं विवक्षितं तस्य शुभसूचकत्वात् ॥ अन्त्यजैश्चाण्डालैः ॥ प्रत्यदनलक्षणान्याह—

विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्तकः ।
तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः ॥१॥
कुमारी नैव भर्तारमपत्यं गर्भमङ्गना ।
आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ॥२॥
वणिक्लाभं च नाप्नोति कृषिं चापि कृषीवलः ।

संसीदति कारणं विना दीनमनस्को भवति ॥ एतदुपलक्षणं यस्य यदिष्टं स चेदिष्टसामग्री सत्वे तन्न प्राप्नोति तदा तदुपद्रुतो बोध्यः ॥ एतदुपद्रवपरिहारार्थं च कर्माह—

स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येह्नि विधिपूर्वकम् ।

अत्र पुण्येऽह्नीत्यविशेषेऽपि विशेषोऽपरार्के भविष्ये—

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां च वारेण धिषणस्य च ।
तिष्ये च वीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृपेति ॥१॥

अत्रादौ देवतापूजोक्ता तत्रैव—

व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भामजं तथा ।
कृष्णस्य पितरं केतुं अर्कमारं सितं तथा ॥१॥
धिषणं क्लेदपुत्रं च कोणलक्ष्मं च भारत ।

विधुन्तुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारणमिति ॥२॥

व्योमकेशः शिवः ॥ भामजो गणेशः ॥ आरो भौमः ॥ सितः शुक्रः ॥ धिषणो गुरुः ॥ क्लेदपुत्रो बुधः ॥ कोणः शनैश्चरः ॥ लक्ष्म तद्वांश्चन्द्रः ॥ बाहुलेयः स्कन्दः ॥ नन्दकधारी कृष्णः ॥

गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च ।
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसस्तथा ॥१॥
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्या द्विजैः शुभाः ।

गौरसर्षपपिष्टेन गोघृतयुक्तेनोत्सादितस्योद्वर्त्तितस्य ॥

सर्वौषधानि छन्दोगपरिशिष्टे—

कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा-शैलेय-चन्दनम् ।
वचा-कर्चूर-मुस्ते च सर्वौषध्यः प्रकीर्तिताः ॥१॥

सर्व-गन्धैश्चन्दन-कुङ्कुमाऽगरु-कस्तूरिका-जातीफलादिभिः । वेद्यां सितवस्त्रप्रच्छादितश्रीपर्णीपीठभद्रासनं स्वस्तिवाच्याः स्वस्तिवाचनीयाः ॥ ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचनं कारयेदित्यर्थः ॥

अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ह्रदात् ।
मृत्तिकां रोचनां गन्धं गुग्गुलुं चाप्सु निक्षिपेत् ॥१॥
या आहृता एकवर्णैश्चतुर्भिः कलशैर्ह्रदात् ।
चर्मण्यानुडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं ततः ॥२॥

आनडुहं चर्म च वेद्यां प्राग्ग्रीवमूर्ध्वलोम च स्थाप्यमिति विज्ञानेश्वरः ॥ या आपः ते चत्वारोऽपि कलशा भद्रासनात्पूर्वादिचतुर्दिक्षु स्थाप्या इति साम्प्रदायिकाः ॥ पूर्वादिदिक्त्रयावस्थितकलशोदकेनाभिषेकक्रमेण मन्त्रानाह—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमानीः पुनन्तु ते ॥१॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः ।

भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥२॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे केशयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु ते सदा ॥३॥

सहस्राक्षं बहुशक्तिकं ॥ पावमानी इत्यनन्तरमाप इति शेषः ॥ भगं कल्याणं ॥ दौर्भाग्यमकल्याणम् । उदग्दिगवस्थितेनाभिषेके पूर्वोक्तास्त्रय एव मन्त्राः ॥ सर्वैश्चतुर्थमिति विज्ञानेश्वरोक्तलिङ्गात् ॥

किञ्च—

स्नातस्य सार्षपं तैलं स्रुवेणौदुम्बरेण तु ।
जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान् सव्येन परिगृह्य च ॥१॥

सव्यपाणिगृहीतकुशां तर्हि ते सार्षपं तैलमुदुम्बरनिर्मितेन स्रुवेण यजमानमूर्द्धनि जुहुयादाचार्यः ॥

मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालकटङ्कटौ ।
कूष्माण्डो राजपुत्रश्चेत्यं ते स्वाहा समन्वितैः ॥१॥
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः ।

"नमः स्वस्ति स्वाहे"ति चतुर्थी । एतानि षट् विनायकनामानि इति विज्ञानेश्वरः ॥ अपरार्कस्तु शालकटंकट इत्येकवचनान्तं पपाठ ॥ तेन तन्मते पञ्चैवाहुतयो भवन्ति ॥ अत्र लौकिकाग्नौ स्थालीपाकविधिना चरुं कृत्वा तेभ्य एवाहुतिषट्कं हुत्वेन्द्रादिदशलोकपालेभ्यस्तन्नाम्ना बलिं दद्यात् । इति मिताक्षरायाम् ॥

तत्र चरुहोमे इन्द्रादिभ्यो बलिदाने च मूलं चिन्त्यम् । अन्ते स्वाहा समन्वितैर्नामभिर्जुहुयात् । नमस्कारसमन्वितैश्चेत्यादिभ्य एव बलिं दद्यादिति वक्ष्यमाणेन सम्बध्यत इति तु युक्तम् ।

दद्याच्चतुष्पथे सूर्ये कुशानास्तीर्य सर्वशः ।
कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पलकौदनमेव च ॥१॥
मत्स्यान्पक्वांस्तथैवामान्मांसमेतावदेव तु ।
पुष्पं चित्रं सुगन्धि च सुरां च त्रिविधामपि ॥२॥

मूलकं पूरिकापूपास्तथैवोण्डिरकस्रजः ।
दध्यन्नं पायसं चैव गुडपिष्टं समोदकम् ॥३॥
एतान्सर्वान्समाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः ।
कृताकृतान्सकृदवहतान् पललौदनः ॥४॥

तिलपिष्टमिष्ट ओदन इति मिताक्षरायाम् ॥ अपक्वमांसं मिश्र ओदन इति तु युक्तम् ॥ पललं क्रव्यमामिष' मिति कोशात् । आमान् पक्वान् मांसमेतावदेव तु । पक्वमपक्वमांसमन्यदित्यर्थः ॥ त्रिविधा सुरा गौडी पैष्टी माध्वी च । मूलकं कन्दाकारो भक्ष्यविशेष इति मिताक्षरायाम् ॥ स्वरूपत एव ग्राह्यमिति तु युक्तम् । उभयमपि ग्राह्यमिति महार्णवे । अपूपाःस्रे हपक्वा गोधूमविकारा इति विज्ञानेश्वरः । उण्डेरकाः पिष्टविकारा नानाविधास्ते स्रज इत्युच्यन्ते । गुडपिष्टं गुडमिश्रं शाल्यादिपिष्टं अत्र सुरामांसं चाऽब्राह्मणविषयम् ॥ ब्राह्मणैस्तु मांससुरास्थाने तु सलवणं पायसं दुग्धं च ग्राह्यम् ।

पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत् ।
दुग्धं लवणसंमिश्रं सुरास्थाने प्रकल्पयेत् ॥१॥

स्मरणादिति महार्णवादिषु विनायकाम्बिकागायत्रीभ्यां विनायकमम्बिकां च नमस्कृत्य पूर्वोक्तद्रव्यजातं तयोरग्रत उपहृत्य तच्छेषं शूर्पे निधाय चतुष्पथे शूर्पं संस्थाप्य बलिं दद्यादेतैर्मन्त्रैः ।

बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा ।
मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥१॥
असुरा यातुधानाश्च पिशाचा मातरोरगाः ।
शाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतना शिवाः॥२॥
जम्भकाः सिद्धगन्धर्वा नागा विद्याधरा नगाः।
दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥३॥
जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ।
मा विघ्नं मा च पापं मा संतु परिपंथिनः ॥४॥

सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ।

दद्यादित्यपि देहलीदीपवदन्वेति । विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकाम् । दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्वार्घं पूर्णमञ्जलिम् । अनन्तरं विनायकमम्बिकां च दूर्वाद्यञ्जलिमर्घं च दत्वोपतिष्ठेत ।

उपस्थानमन्त्रमाह—रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ।
पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामाँश्च देहि मे ॥१॥

भगवन्नित्यूह्य विनायकमप्युपतिष्ठेतेति विज्ञानेश्वरः । अत्र मदनः । विनायकोपस्थानं कृत्वाऽम्बिकोपस्थानं कार्य्यमित्याह । किञ्च—

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
ब्राह्मणान्भोजयेद्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥१॥

गुरोराचार्याय । अपि शब्दाद्दक्षिणामपि ॥ एवंविधं कर्म कुर्वतः ।

एवं विनायकं पूज्य ग्रहांश्चैव विधानतः ।
कर्मणां फलमाप्नोति श्रियमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥१॥

अस्याः कर्माङ्गत्वेन पौष्टिकत्वेन च वर्णचतुष्टयस्याप्यत्राधिकारः ॥ शूद्रस्य तु मन्त्रवर्जं तान्प्रक्रम्य ॥

मन्त्रवर्जं न दुष्यन्ति कुर्वाणाः पौष्टिकीं क्रियामिति मोक्षधर्मश्रवणादिति वदन्ति ॥ महार्णवोऽपि ॥ यजमानस्तु शूद्रश्चेदिति वदन् तस्याधिकारमभिप्रैति ॥ इति विनायकशान्तिनिर्णयः समाप्तः ॥

---

## अथ प्रयोगः ॥

कर्ता देशकालौ सङ्कीर्त्याऽमुककर्मणो निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थमुपसर्गनिवृत्यर्थं वा विनायकस्नपनं करिष्य इति सङ्कल्पयेत् ॥ ततः पुण्याहवाचननान्दीश्राद्धान्तं यथोक्तं कुर्यात् । अपरे पुण्याहवाचनं नेच्छन्ति ॥ अग्रे तस्य कर्त्तव्यत्वात् ॥ अथाचार्य्यं ऋत्विक् चतुष्टयं वृणुयात् ॥ ऋत्विजो न सन्तीति केचित् । तदाचार्य एव वक्ष्यमाणमभिषेकं कुर्यात् ॥ यजमानः प्रतिमास्वक्षतपुञ्जेषु वा । शिवं, पार्वतीं, गणेशं, वसुदेवं केतुं, अर्कं, भौमं, शुक्रं, गुरुं, बुधं, शनिं, चन्द्रं, राहुं, स्कन्दं, कृष्णं,

चावाह्य पूजयेत् ॥ तथाऽऽचार्यः पञ्चवर्णैः पूर्वादिचतुर्दिक्षु चत्वारि-मध्यस्थवेद्यां चैकमिति स्वस्तिकपञ्चकमालिख्य मध्यस्थस्वस्तिकोपरि आनडुहं रक्तं चर्म प्राचीनग्रीवमूर्ध्वलोम संस्थाप्य तस्योपरि श्रीपर्णीपीठं संस्थाप्य सितेन वाससा संछादयेत् ॥ एतद्भद्रासनमिति । अथ चतुर्षु स्वस्तिकेषु पूर्वादिदिक्षु चत्वारोऽपि ऋत्विजः कलशान्संस्थापयेयुः ॥ आचार्यो वा ॥ तत्राऽयं प्रकारः ॥ ॐ महीद्यौः पृथिवी च नेति भूमिं स्पृशन् ॥ सम्प्रार्थ्य ॐ ओषधयः समिति यवान् क्षिप्त्वा ॐ आजिघ्रकलशेष्वितितेषु कलशं संस्थाप्य ॥ ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसीति उदकेनापूर्य्य ॥ त्वां गन्धर्वेति गन्धं क्षिपेत् ( केचित्तु चन्दनागरुकस्तूरी-कर्पूर-गोरोचनादीन् गुग्गुलुं च निक्षिपन्ति) ॐ या ओषधीरिति सर्वौषधीः क्षिपेत् ॥ ॐ काण्डात्काण्डादिति दूर्वाः ॥ ॐ अश्वत्थेव इति पञ्चपल्लवान् ॥ ओं स्योना पृथिवीत्यनेन मृत्तिकां क्षिपेत् ॥ ( अथवा उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतमित्यनेन मन्त्रेण पञ्च मृदः क्षिपेत् ) याः फलिनीरिति फलम् । ॐ परिवाजयतीति पञ्चरत्नानि क्षिपेत् ॥ ओं हिरण्यगर्भेति हिरण्यं क्षिपेत् ॥ ओ युवा सुवासेति वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ ॐ पूर्णा दर्वी परेति कलशोपरि धान्यपूर्णं पूर्णपात्रं निदध्यात् ॥ अत्र वरुणावाहने पूजने ऽपि केचिदाहुः ॥ ततः कलशे सर्वे समुद्रा इति गङ्गाद्यावाहनम् । ततः कुम्भाभिमन्त्रणम् ॥ कलशस्य मुखे विष्णुरित्यादिना इति ॥ ततः कुम्भप्रार्थना ॥ देवदानवसंवादे···सर्वदेति ॥ ततो ऋत्विज आनो भद्रेति शान्तिसूक्तं पठेयुरिति केचित् ॥ आनो भद्रेति शान्तिसूक्तस्य राहुगणो विश्वेदेवास्त्रिष्टुप् आद्या सप्तमी च जगत्यः षष्ठी विराट् शेषास्त्रिष्टुभः शान्तिसूक्तजपे विनियोगः ॥ ॐ आनो भद्राः १२ मंत्राः ॥ शन्नो वातः पवतामित्यादिकां वा ३ मंत्राः ॥ तस्मिन्नेव समये आचार्यो भद्रासनस्योत्तरईशान्यां वा वस्त्राच्छादितपीठादौ विनायकप्रतिमामम्बिकाप्रतिमां चाग्न्युत्तारणपूर्वकं प्रतिष्ठाप्य षोडशोपचारैः पूजयेदिति निबन्धकृतः ॥ तत्र विनायकमन्त्रः ॥ ॐ गणानान्त्वा० ॥ ॐ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि ॥ तन्नो दन्तिः प्रचोदयादिति वा ॥ गौर्यास्तु । ॐ आयं गौः । अम्बेऽअम्बिके० वा ॥ सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि ॥ तन्नो गौरी प्रचोदयादिति ॥ अत्र मिताक्षरायां

चरुहोमोप्युक्तः ॥ शिष्टाश्च कुर्वन्ति तस्मिन्पक्षे आचार्यो गृह्योक्तविधिना कुण्डे स्थण्डिले वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य प्रादेशमात्रं समिद्द्वयमादायास्मिन्होमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्य इति सङ्कल्प्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा अत्र प्रधानं मितं सम्मितं शालंकटं कूष्माडं राजपुत्रमेताः प्रधानदेवता एकैकया चर्वाहुत्वा यक्ष्ये ॥ शेषेण स्विष्टकृतमित्याद्युक्त्वाग्नावादध्यात् ॥ अपरार्कमते तु पञ्चैवाहुतयस्तन्मते त्वाधाने होमद्वये च तथैवानुसन्धेयम् ॥ ततः परिसमूहनादिचरुश्रपणान्तं कृत्वा गोघृतलोलीकृतेन गौरसर्षपकल्केनोद्वर्त्तिताङ्गं सर्वौषधिचूर्णैः कस्तूरिकागरु-चन्दनादिभिर्विलिप्तशिरसं यजमानमाचार्यो भद्रासने उपवेशयेत् ॥ ततो यजमानः स्वस्तिवाचनं कुर्यात् ॥ अनन्तरं रूपगुणशालिनीभिः सुवासिनीभिर्नीराजनं कारयेत् । ततो भद्रासनात्पूर्वदेशावस्थितं कलशमादायाभिषिञ्चेदाचार्यः ।

मन्त्रश्च—सहस्राक्षं शतं धारमृषिभिः पावनं कृतम् ।
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमानीः पुनन्तु ते ॥१॥

ततो दक्षिणदेशावस्थितं कलशमादायाभिषिञ्चेदाचार्यः ।

मन्त्रः—भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः ।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥२॥

ततः पश्चिमदिगवस्थितं कलशमादायाभिषिञ्चेदाचार्यः ।

मन्त्रः—यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।
ललाटे केशवो रक्षणोरापस्तं घ्नन्तु ते सदा ॥३॥

तत उदकदेशावस्थितकलशमादाय पूर्वोक्तैस्त्रिभिर्मन्त्रैरभिषिञ्चेत् ॥ बृहत्पराशरेणाऽन्येऽपि मन्त्रा उक्ताः ।

मन्त्रः—एतद्वै पावनं स्नानं सहस्राक्षमृषिस्मृतम् ।
तेन त्वा शतधारेण पावमान्यः पुनन्तु माम् ॥१॥
शक्रादिदशदिक्पालाः ब्रह्माद्या केशवादयः ।
आपस्तं घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा॥२॥

वेदमन्त्रः-ॐ सुमित्रिया नऽ आपऽ ओषधयः सन्तु ।

दुर्मित्रि .स्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥

मन्त्रः- समुद्रा गिरयो नद्यो मुनयश्च पतिव्रताः ।
दौर्भाग्यं घ्नन्तु ते सर्वं शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ॥४॥
पादगुल्फोरुजङ्घादौ नितम्बोदरनाभिषु ।
स्तनोरुबाहुहस्ताग्रग्रीवा अंसाघ्रिसन्धिषु ॥५॥
नासाललाटकर्णभ्रूकेशान्तेषु च यत्स्थितम् ।
तदापो घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्तिं यच्छन्तु सर्वदा ॥६॥

इत्यौतैरप्यभिषिञ्चेदिति केचित् । चतुर्थकलशाभिषेचन एवैते पठनीयाः ॥ अथाचार्यो यजमानस्य पश्चिमत तिष्ठन् सव्यपाणिगृहीत-कुशां तर्हि ते यजमानशिरसि औदुम्बरेण स्रुवेण सार्षपतैलं जुहुयात् ।

मन्त्राः-ॐ मिताय स्वाहा । यजमानः-इदं मिताय न मम ॥१॥
ॐ सम्मिताय स्वाहा । इदं सम्मिताय न मम ॥२॥
ॐ शालाय स्वाहा । इदं शालाय न मम ॥३॥
ॐ कटंकटाय स्वाहा । इदं कटंकटाय न मम ॥४॥
ॐ कूष्माण्डाय स्वाहा । इदं कूष्माण्डाय न मम ॥५॥
ॐ राजपुत्राय स्वाहा । इदं राजपुत्राय न मम ॥६॥

अथाचार्योग्न्यर्चनाद्याज्यभागान्तं कृत्वा चरुणा मिता-दिभ्य एव जुहुयाद्यजमानस्तु पूर्ववत्त्यजेत् ॥ आचार्य्यः स्विष्टकृदादिप्रणीताविमोकान्तं कर्मशेषं समापयेत् ॥ यजमा-नस्तु अभिषेकशालायामिन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नाम्ना दिक्ष विदिक्ष च बलीन् दद्यात् ॥ एतानि अग्निस्थापन-चरुहोम-दिक्पाल-बलिदानानि मिताक्षरामनुरुध्योक्तानि ॥ ततो मिताय एष बलिर्न ममेति पायसेन माषभक्तेन वा बलिं दत्वा विनायकाम्बिकयो-रग्रतः सकृदवहततण्डुलानां मांसेन तिलपिष्टेन वा मिश्रमोदनमत्स्य-मांसं पक्वमपक्वं गौडी पैष्टी माध्वीति त्रिविधां सुरां च ॥ ब्राह्मणस्य मांसस्थाने सलवणं पायसं सुरास्थाने सलवणं दुग्धं चित्र पुष्पं सुगन्धिद्रव्यं मूलकं पूरिकाः अपूपाः उंडेरकसृजः ॥ दध्यन्नं पायसं

गुडमिश्रतण्डुलादिपिष्टं मोदकांश्च पात्रे संस्थाप्य तत्पुरुषाय विद्महेति मन्त्रेण विनायकाय ॥ सुभगायै विद्महेति मन्त्रेण चाम्बिकायै निवेदयेत् । अथाचार्यो नूतनशूर्पं सर्वमुपहारशेषं संस्थाप्य चतुष्पथं गत्वा तत्र गोमयेनोपलिप्य कुशानास्तीर्य तत्र शूर्पं प्राङ्मुखं संस्थापयेत् ॥ यजमानस्त्वेतैर्मन्त्रैर्बलिं दद्यात् ॥

मन्त्रः—बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा ।
मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ॥१॥
असुरा यातुधानाश्च पिशाचा मातरोरगाः ।
शाकिन्यो यक्षवेताला योगिन्यः पूतनाः शिवाः ॥२॥
जृम्भकाः सिद्धगन्धर्वा नागा विद्याधरा नगाः ।
दिक्पालाः लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥३॥
जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ।
मा विघ्नं मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ॥४॥
सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥इति॥

अनेन बलिदानेन देवादित्य-वसु-मरुदश्वि-रुद्र-सुपर्ण-पन्नग-ग्रहासुर-यातुधान-पिशाच-मातृरग-शाकिनी-यक्ष-वेताल-योगिनी-पूतना-शिवजृम्भकसिद्ध-गन्धर्व-नाग-विद्याधर-नग-दिक्पाल-लोकपाल-विघ्नविनायक-जगच्छान्तिकर्तृब्रह्मादिमहर्षि-भूत-प्रेतेभ्य इदं न ममेति त्यागः ॥ ततः शिरसा भूमिं गत्वा पुष्पयुतमर्घं तत्पुरुषायेति मन्त्रेण विनायकाय सुभगायै इत्यम्बिकायै च दद्यात् ॥ ततो दूर्वासर्षपपुष्पाणां पूर्वोक्तविनायकमन्त्रेण गणानाञ्चेति वा विनायकायाञ्जलिं दद्यात् ॥ अम्बिकायै पूर्वोक्तमन्त्रेण अम्बेऽअम्बिके० अञ्जलिं दद्यात् ॥ ततो विनायकमम्बिकां चोपतिष्ठेत् ॥

मन्त्रस्तु-रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ।
पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥१॥

अस्मिन्मन्त्रे भगं भगवन्देहि म इत्यूह्य विनायकमुपतिष्ठेत् ॥ अनन्तरं यजमानः प्राङ्मुखोपविष्ट उदङ्मुखानाचार्यादीन्पूजयित्वा

दक्षिणां दद्यात् । तत उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इत्यनेन यान्तु देवगणा इत्यनेन च विनायकमम्बिकां चोत्थाप्य विसृज्य प्रतिमादिसर्वां सामग्रीमाचार्याय दद्यात् । ततो यथाशक्ति भूयसीं दक्षिणां दीनानाथेभ्यो दत्वा यथाशक्ति विनायकप्रीत्यर्थमम्बिकाप्रीतये च ब्राह्मणान्भोजयित्वा सङ्कल्प्य ॥ वा यस्य स्मृत्येत्याद्युक्त्वा न्यूनातिरिक्तं सर्वं सम्पूर्णमस्त्विति तान्सम्प्रार्थ्य तैरनुज्ञातः सुहृद्युतो भुञ्जीत ॥

इति श्रीमच्छङ्करभट्टसूरिसूनुभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे शान्तिमयूखे विनायकशान्तिपद्धतिः समाप्ता ॥

---

## अथ ग्रहयज्ञः ।

स्कान्दे—देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः ।
पीड्यन्ते ग्रहपीडाभिः किं पुनर्भुवि मानवाः ॥१॥
शनैश्चरेण सौदासो नरमांसे नियोजितः ।
राहुणा पीडितो राजा नलो भ्रान्तो महीतले ॥२॥
अङ्गारकविरोधेन रामो राष्ट्रान्निवासितः ।
अष्टमेन शशाङ्केन हिरण्यकशिपुर्हतः ॥३॥
रविणा सप्तमस्थेन रावणो विनिपातितः ।
गुरुणा जन्मसंस्थेन हतो राजा सुयोधनः ॥४॥
पाण्डवा बुधपीडायां विकर्मणि नियोजिताः ।
षष्ठेनोशनसा युद्धे हिरण्याक्षो निपातितः ॥५॥
एते चान्ये च बहवो ग्रहदोषैस्तु पीडिताः ।

याज्ञवल्क्यः—ग्रहाधीना नरेन्द्राणामुच्छ्रायाः पततानि च ।
भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥१॥

प्रयोगपारिजाते उत्पलपरिमले—

कार्यारम्भेषु सर्वेषु प्रतिष्ठास्वध्वरेषु च ।
नव-वेश्मप्रवेशे च गर्भाधानादिकर्मसु ॥१॥

आरोग्यस्नानसमये संक्रान्तौ रोगसम्भवे ।
अभिचारे च यः कुर्याद्ग्रहपूजां विधानतः ॥२॥
सोऽभीष्टफलमाप्नोति निर्विघ्नेन न संशयः ।
श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ॥३॥
वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्नपि ॥इति॥

मात्स्ये—ग्रहयज्ञास्त्रिधा प्रोक्ताः पुराणश्रुतिकोविदैः ।
प्रथमोऽयुतहोमश्च लक्षहोमस्ततः परम् ॥१॥
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः ।
ग्रहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद्बुधः ॥२॥
रुद्रायतनभूमौ वा चतुरस्रमुदक्प्लवम् ।
दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान्कुर्याद्विधानतः ॥३॥
तस्य द्वाराणि चत्वारि कर्त्तव्यानि विचक्षणैः ॥इति॥

स्कान्दे—नवग्रहमखे कुण्डं हस्तमात्रं समं भवेत् ।
चतुरस्रमधो हस्तं योनिवक्त्रं समे खलम् ॥१॥

योनिरेव वक्त्रं यस्य तत् । पुत्रादिकामनया तु योन्याद्याकारा अपि भवन्ति । चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छ्रिता । अत्र विशेषोपदेशादेकैव मेखला ।

मात्स्ये—वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता ।
कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चांगुलोच्छ्रिता ॥
गजोष्ठसदृशी तद्वदायता च्छिद्रसंयुता ।
मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसन्निभा ॥२॥

एकं कुण्डं च मण्डपेशानभागे उदीच्या वेति हेमाद्रिः । अयुतादि होमं प्रकृत्य वशिष्ठस्तु—

कुण्डं तन्मध्यभागे तु कारयेच्चतुरस्रकम् ।
कुण्डस्येशानभागे तु पूजावेदिं प्रकल्पयेदित्याह ॥१॥

अत्र चतुरस्रमित्यनेन क्षत्रियादिपुरस्कारेण विहितानामाकार-विशेषाणां स्त्रीपुरस्कारेण विहितस्य योन्याकारस्य निवृत्तिर्योनौ पुत्राः शुभं दलेन्द्वाभ इत्याद्याः काम्यास्त्वाकारा भवन्त्येव ॥वेद्यां विशेषमाह—

गोभिलः—कुण्डस्य प्रागुदीच्यां वा प्राच्यामुत्तरतोऽपि वा ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारं कर्त्तव्यं ग्रहपीठकम् ॥१॥
श्रीकामः पूर्वतः कुर्यात्पुष्ट्यर्थं दक्षिणेन तु ।
पश्चाद्द्विजन्मसिद्ध्यर्थं शान्त्यर्थं चोत्तरेण तु ॥२॥
ऐशान्यां सर्वकामाय त्वाग्नेय्यां त्वभिचारके ।
नैर्ऋत्यां पुत्रलाभाय पुष्ट्यर्थं वायवेन त्विति ॥३॥

ग्रहवेदी तु स्थण्डिलपक्षेऽपि कार्या ।

वशिष्ठः—लिखेदष्टदलं पद्मं वेदिकोपरि तण्डुलैः ।

अत्रैकाग्निब्रह्माचार्यपक्षमुक्त्वा तेषां नवसंख्या कुण्डेषु तत्तद्ग्रहाकारांश्चाह—

प्रयोगपारिजाते भगवान्—

मनोरमे शुचौ देशे होमशालामलङ्कृताम् ।
कृत्वा तु संवृतां प्राज्ञो ग्रहस्थानं प्रकल्पयेत् ॥१॥
तन्मध्ये भास्करस्थानं भवेत्पूर्वोत्तरे बुधः ।
पूर्वस्मिन्भार्गवस्थानं सोमो दक्षिणपूर्वके ॥२॥
दक्षिणस्यां कुजस्थानं राहोर्दक्षिणपश्चिमे ।
शनेस्तु पश्चिमस्थानं केतोरुत्तरपश्चिमे ॥३॥
उत्तरस्यां गुरोः स्थानमेवं च स्थण्डिलं भवेत् ।

स्थण्डिलमग्न्यर्थम् ।

भास्करस्य च वृत्तं स्याच्चन्द्रस्य चतुरस्रकम् ।
कुजस्य तु त्रिकोणं स्याद्बाणाकारं बुधस्य तु ॥१॥
गुरोर्दीर्घचतुष्कोणं पञ्चकोणं सितस्य तु ।

चापाकारं शने राहोः सूर्पकेतोर्ध्वजाकृतिम् ॥२॥
नवधा विभजेदग्निं श्रौतकर्मविधानतः ।
ऋत्विजश्च यथायोगं कुण्डेषु ब्राह्मणाः पृथक्॥३॥
अथ स्रुवेण जुहुयात्सूर्य्यपावकदारुकान् ।
ऋत्विजो जुहुयुः सर्वे स्रुवेणैवं पृथक् पृथक्॥४॥
अष्टौ तु शकलान् गृह्य समारोपणमग्निषु ।
प्रधानाग्नौ निधायेमानित्थं होमं समाचरेदिति ॥५॥

अत्रैव च स्थण्डिलं भवेदित्यनेन स्थण्डिलानां कुण्डानां च स स आकारस्तत्तद्दिक्षु निवेशश्चोक्तः । ब्राह्मणाः पृथगित्यनेन नवाऽऽचार्या ब्राह्मणाश्च नवेत्युक्तं । अत्रार्थसंक्षेपः प्रयोगपारिजाते । मध्यकुण्डे स्मार्त्ताग्निं प्रणीय ततो नवाचार्या अष्टसु कुण्डेष्वग्निं प्रणीयाऽऽज्यभागान्तेऽर्कादिसमिद्भिर्गुडोदनादिहविर्भिराज्येन च ग्रहादिमन्त्रैर्हुत्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिश्च तिलान् हुत्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं कृत्वा पूर्णाहुतीर्जुहुयुरिति ॥

कुण्डमुक्त्वा स्कान्दे—

तस्य चोत्तरपूर्वेण स्थण्डिलं हस्तमात्रकम् ।
त्रिवप्रं चतुरस्रं च वितस्त्युच्छ्रायसम्मितम् ॥१॥

स्थण्डिलं वेदिः । वप्रो मेखला ।

मात्स्ये—द्विरङ्गुलोच्छ्रितो वप्रः प्रथमः समुदाहृतः ।
त्र्यङ्गुलोच्छ्रायसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि ॥१॥
द्व्यङ्गुलस्तत्र विस्तारः सर्वेषां कथितो बुधैः ।

तत्र ग्रहानाऽऽह याज्ञवल्क्यः—

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः ।
शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः ॥१॥

स्कान्दे—नवग्रहमखे कुर्याद्दत्विजश्चतुरः शुभान् ।
अथवा चैकमभ्यर्च्य विधिना ब्रह्मणा सह ॥१॥

त्रिविधमपि नवग्रहमुपक्रम्य वसिष्ठस्तु—

षोडश ब्राह्मणान् शुद्धान् दम्भानृतविवर्जितान् ।
तेषां मध्ये श्रेष्ठतममाचार्यं तं प्रकल्पयेदिति ॥१॥

अत्र पारिजाते नवाचार्या एको ब्रह्मा षड्ऋत्विजः । आचार्येभ्यो नवभ्यश्च ग्रहार्चनफलं तत इत्युक्तेः । आचार्यः कर्म एव कुर्यात् ॥ परे त्वारम्भमात्रम् । धेन्वाद्या ग्रहदक्षिणा अपि तेभ्य एव देया इत्याद्युक्तम्, तदयुक्तम् । उपक्रमे एकाचार्यस्य संस्कार्य त्वेनैकत्वमविवक्षितम् । तथाप्याचार्यस्य भूतभाव्युपयोगाभावात्संस्कार्यत्वानुपपत्तेर्वृत आचार्यः स्वकर्म कुर्यादिति कल्पिते वाक्ये उपादेयत्वादाचार्यस्य भवत्येकत्वं विवक्षितम् । उपपादितं चेदमध्वर्युं वृणीते होतारं वृणीते पुरोहितं वृणीत इत्यत्र मिश्रैः ।

जन्मभूर्गोत्रमग्निश्च वर्णस्थानमुखानि च ।
योऽज्ञात्वा कुरुते शान्तिं ग्रहास्तेनाऽवमानिताः॥१॥

तत्र वर्णजन्मनि आह दामोदरीये वृद्धपराशरः—

रक्तः कश्यपजो भानुः शुक्लो ब्रह्मसुतः शशी ।
रक्तो रुद्रसुतो भौमः पीतः सोमसुतो बुधः ॥१॥
पीतो ब्राह्मसुराचार्यः शुक्लः शुक्रो भृगूद्वहः ।
कृष्णः शनी रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतेः ॥२॥
कृष्णः केतुः कृशनूत्थः कृष्णाः पापास्त्रयोऽप्यमी ॥

स्कान्दे—उत्पन्नोऽर्कः कलिङ्गेषु यमुनायां च चन्द्रमाः ।
अङ्गारकस्त्ववन्त्यायां मगधायां हिमांशुजः ॥१॥
सैन्धवेषु गुरुर्जातः शुक्रो भोजकटे तथा ।
शनैश्चरस्तु सौराष्ट्रे राहुर्वैराटिनापुरे ॥२॥
अन्तर्वेद्यां तथा केतुरित्येता ग्रहभूमयः ।
यस्य यस्य च यद्गोत्रं तत्ते वक्ष्याम्यतः परम् ॥

आदित्यः कश्यपे गोत्रे आत्रेयश्चन्द्रमा भवेत् ।
भरद्वाजोद्भवो भौमस्तथाऽऽत्रेयश्च सोमजः ॥४॥
शक्रपूज्योऽङ्गिरो गोत्रः शुक्रो वै भार्गवस्तथा ।
शनिः काश्यप एवाढ्य राहुः पैठीनसिस्तथा ॥५॥
केतवो जैमिनेयाश्च ग्रहाश्चिस्तदनन्तरम् ।
आदित्यः कपिलो नाम पिङ्गलः सोम उच्यते ।
धूमकेतुस्तथा भौमो जाठराग्निर्बुधः स्मृतः ॥
गुरोश्चैव शिखानाम शुक्रो भवति हाटकः ।
शनैश्चारो महातेजा राहुकेत्वोर्हुताशनः ।

एतानि ग्रहविशेषतोऽग्निनामानि । कर्मविशेषतोऽपि देवीपुराणे-

शुभो ग्रहविधौ ह्यग्निर्लक्षहोमे पराजितः ।
कोटिहोमे शिवो वह्निः सर्वकामप्रदायकः ॥१॥

क्वचित्तु–लक्षहोमे तु वह्निः स्यात्कोटिहोमे हुताशनः ।

स्कान्दे–भास्कराङ्गारकौ रक्तौ श्वेतौ शुक्र-निशाकरौ ।
सोमपुत्रो गुरुश्चैव तावुभौ पीतकौ स्मृतौ ॥
कृष्णं शनैश्चरं विन्द्याद्राहुं चित्राश्च केतवः ।
मध्ये तु भास्करं विद्याच्छशिनं पूर्वदक्षिणे ॥२॥
दक्षिणे लोहितं विन्द्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु ।
उत्तरेण गुरुं विन्द्यात्पूर्वेणैव तु भार्गवम् ॥३॥
पश्चिमेन शनिं विन्द्याद्राहुं पश्चिमदक्षिणे ।
पश्चिमोत्तरतः केतुः स्थाप्यो वै शुक्लतण्डुलैः ॥४॥
अथवा वर्णकैः कार्याः कार्याः स्वर्णादिधातुभिः ।

याज्ञवल्क्यः–ताम्रकात्स्फटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णजादुभौ ॥
रजतादयसः सीसात्कांस्यात्कार्या ग्रहास्तथा ।

वशिष्ठः-यथारुचिप्रमाणेन प्रतिमाः कल्पयेत्सुधीः ॥

अत्र सर्वत्र ग्रहाणां सूर्यादिः स्पष्टः। बौधायनस्तु सूर्याङ्गारक-शुक्र-चन्द्र-बुध-गुरु-शनय इत्याह—

स्कान्दे-भानुं तु मण्डलाकारं सोमं तु चतुरस्रकम्।
अङ्गारकं त्रिकोणं च बुधं बाणाकृतिं तथा ॥१॥
दीर्घचतुरस्रं गुरुं पञ्चास्रं भार्गवं तथा।
धनुस्तुल्यं शनिं विन्द्याद्राहुं सूर्पाकृतिं तथा ॥२॥
ध्वजाकाराः केतवश्च गणेशं तत्र रूपिणम्।

रूपिणं हस्तपादाद्यवयवयुक्तम्। स्थापयेच्छुल्कतण्डुलैर्वर्णकैर्लेख्या इत्येतत्पक्षयोर्मण्डलाद्याकारतेति हेमाद्रिः।

तत्रैव-शुक्रार्कौ प्राङ्मुखौ ज्ञेयौ गुरु-सौम्यावुदङ्मुखौ।
प्रत्यङ्मुखौ शनि-सोमौ शेषा दक्षिणतो मुखाः ॥१॥

इदं च शुक्रादीनां प्राङ्मुखत्वादि आदित्याभिमुखाः सर्वे इति मात्स्योक्तादित्याभिमुखत्वेन विकल्पते। यत्तु हेमाद्रिर्विकल्पपरिजिहीर्षया प्राङ्मुखावूर्ध्वदृष्टी उदङ्मुखौ वामदृष्टी प्रत्यङ्मुखोऽधोदृष्टिर्दक्षिणतो मुखाः दक्षिणदृष्ट्य इति व्याचष्ट तत्र मूलं चिन्त्यम्। विरोधतादवस्थं च। वर्णरूपगुणैर्युक्तान् व्याहृत्यावाहयेत्तु तान्।

मात्स्ये-पुण्येहि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
अग्निप्रणयनं कृत्वा वेद्यामावाहयेत्सुरान् ॥१॥
देवानां तत्र संस्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका।
आदित्याभिमुखाः सर्वे साधिप्रत्यधिदेवताः ॥२॥

विष्णुधर्मोत्तरे—

अतः परं प्रवक्ष्यामि यो देवो यो ग्रहः स्मृतः।
अग्निरर्कः स्मृतः सोमो वरुणः परिकीर्त्तितः ॥१॥
अङ्गारकः कुमारश्च बुधश्च भगवान् हरिः।
बृहस्पतिः स्मृतः शक्रः शुक्रो देवी च पार्वती ॥२॥

प्रजापतिः शनिश्चैव राहुर्ज्ञेयो गणाधिपः ।
विश्वकर्मा स्मृतः केतुर्ये ग्रहास्ते सुराः स्मृताः ॥३॥

अत एवाग्न्यादिलिङ्गका मन्त्राः सूर्यादिस्थापने उक्ताः ।

स्कान्दे–अग्निं दूतं दिनेशाय चान्द्रायाप्स्वन्त इत्यपि ।
स्योना पृथिवि भौमाय इदं विष्णुर्बुधाय च ॥१॥
इन्द्र आसां सुरेज्याय शुक्रज्योतिः सिताय च ।
प्रजापतेति सौराय आयं गौरिति राहवे ॥२॥
केतवे ब्रह्मयज्ञानं स्वैस्वैर्मन्त्रैः प्रतिष्ठिताः ।

एतेषां च मन्त्राणां व्याहृत्याऽऽवाहयेत्तु तानित्युक्त्वाभिर्व्याहृतिभिरावाहने विकल्पः ॥ मदनस्त्वावाहन-स्थापनयोर्भेदाद् व्याहृतिभिरावाहनम् । एतैर्मन्त्रैः स्थापनमित्यूचे पारिजाते वामनस्तु–

प्रणवं त्वादितः कृत्वा भूर्भुवः स्वस्ततः परम् ।
चातुर्थ्या नामसंयुक्तं नमस्कारान्तयोजितम् ॥१॥
एष मन्त्रः समाख्यातो ग्रहपूजाविधायकः ।
अनेनाऽऽवाहनं कुर्यादनेनैव विसर्जनमित्यूचे ॥२॥

अत्रावाहनवाक्येषु विशेषमाह बौधायनः । किरीटिनं पद्मासनं पद्मकरं पद्मगर्भसमद्युतिं सप्ताश्वं सप्तखड्गं कलिङ्गदेशजं काश्यपगोत्रं विश्वामित्रार्षं त्रिष्टुप्छन्दसं रक्ताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितं रक्तगन्धानुलेपनं रक्तछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताग्निसहितं प्रत्यधिदेवतेश्वरसहितं रक्तवृत्तमण्डले पूर्वमुखमादित्यमावाहयामि॥१॥

किरीटिनं श्वेताम्बरधरं दशाश्वं श्वेताभूषणं पाशपाणिं द्विबाहुं वनायुदेशजमत्रिगोत्रमात्रेयार्षगनुष्टुप्छन्दसं श्वेताम्बरधरं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेतछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताऽपसहितं प्रत्यधिदेवतोमासहितं चतुरस्रमण्डले प्रत्यङ्मुखं सोममावाहयामि ॥२॥

किरीटिनं रक्तमाल्यं रक्तशूलगदाधरं चतुर्भुजं मेषगमनमवन्तिदेशजं वाशिष्ठगोत्रजं जमदग्न्यार्षं जगतीछन्दसं रक्ताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितं रक्तगन्धानुलेपनं रक्तछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताभूमिसहितं प्रत्यधिदेवतास्कन्दसहितं त्रिकोणरक्तमण्डले दक्षिणमुखमङ्गारकमावाहयामि ॥३॥

किरीटिनं पीतमाल्यं पीतवर्णं कर्णिकारसमद्युतिं खड्गचर्मगदापाणिं सिंहस्थं वरदं मगधदेशजमत्रिगोत्रजं भारद्वाजार्षं बृहतीछन्दसं पीताम्बरधरं पीताभरणभूषितं पीतगन्धानुलेपनं पीतछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिभूषितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताविष्णुसहितं प्रत्यधिदेवताविष्णुसहितं पीतवर्णमण्डले उदङ्मुखं बुधमावाहयामि ॥४॥

किरीटिनं पीतवर्णं चतुर्भुजं दण्डिवरदं साक्षसूत्रकमण्डलुं सिन्धुदेशजमाङ्गिरसगोत्रं वासिष्ठार्षमनुष्टुप्छन्दसं पीताम्बरधरं पीताभरणभूषितं पीतगन्धानुलेपनं पीतछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिभूषितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टं अधिदेवतेन्द्रसहितं प्रत्यधिदेवताब्रह्मसहितं पीतदीर्घचतुरस्रमण्डले उदङ्मुखं गुरुमावाहयामि ॥५॥

किरीटिनं श्वेतवर्णं चतुर्भुजं दण्डिनं वरदं काव्यं साक्षसूत्रकमण्डलुं कीकटदेशजं भार्गवगोत्रजं शौनकार्षं पंक्ति छन्दसं श्वेताम्बरधरं श्वेताभरणभूषितं श्वेतगन्धानुलेपनं श्वेतछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवतेन्द्राणीसहितं प्रत्यधिदेवेन्द्रसहितं शुक्रपञ्चकोणमण्डले प्राङ्मुखं भगवन्तं शुक्रमावाहयामि ॥ ६ ॥

किरीटिनमिन्द्रनीलसमद्युतिं शूलधरं वरदं गृध्रवाहनं सबाणशरधरं सौराष्ट्रदेशजं काश्यपगोत्रजं भृग्वार्षं गायत्रीछन्दसं कृष्णाम्बरधरं कृष्णाभरणभूषितं कृष्णगन्धानुलेपनं कृष्णछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं

ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवताप्रजापतिसहितं प्रत्यधिदेवतायमसहितं कृष्णधनुर्मण्डले प्रत्यङ्मुखं शनैश्चरमावाहयामि ॥७॥

किरीटिनं करालवदनं खड्गचर्मशूलधरं सिंहासनस्थं पूर्वदेशजं पाटलिगोत्रमाङ्गिरसार्षमनुष्टुप्छन्दसं कृष्णाम्बरधरं कृष्णाभरणभूषितं कृष्णगन्धानुलेपनं कृष्णछत्रध्वजपताकिनं मुकुटकेयूरमणिशोभितमारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणं ग्रहमण्डले प्रविष्टमधिदेवतासर्पसहितं प्रत्यधिदेवताकालसहितं कृष्णशूर्पमण्डले दक्षिणामुखं राहुमावाहयामि ॥८॥

धूम्रान् द्विबाहून् पाशधरान् विकृताननान् गृध्रवाहनान् किरीटिनो मध्यदेशजान् जैमिनिगोत्रजान् गौतमार्षान् नानाछन्दश्चित्राम्बरधरांश्चित्राभरणभूषितांश्चित्रगन्धानुलेपनान् कृष्णपिङ्गलध्वजपताकिनो मुकुटकेयूरमणिशोभितानारुह्य रथं दिव्यं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वाणान् ग्रहमण्डले प्रविष्टानधिदेवताब्रह्मसहितान् प्रत्यधिदेवताचित्रगुप्तसहितान् कृष्णपिङ्गलध्वजमण्डले दक्षिणामुखान् केतूनावाहयामि ॥९॥

स्कान्दे—ईश्वरं भास्करे विन्द्यादुमां विद्यान्निशाकरे ।
स्कन्दमङ्गारके विन्द्याद्बुधे नारायणं विदुः ॥१॥
गुरौ वेदनिधिं विन्द्यात् शुक्रे शक्रो विधीयते ।
शनैश्चरे यमं विन्द्याद्राहौ कालस्तथैव च ॥२॥
चित्रगुप्तोधिपः केतोरित्येता ग्रहदेवताः ।

वेदनिधिर्ब्रह्मा ।

तत्रैव—वक्ष्ये स्थानानि देवानामीश्वरादि यथाक्रमम् ।
सूर्यस्य चोत्तरे शम्भुमुमां सोमस्य दक्षिणे ॥१॥
स्कन्दमङ्गारकस्यैव दक्षिणस्यां निवेशयेत् ।
सौम्यात्पश्चिमतो विष्णुं ब्रह्मा जीवस्य पूर्वतः ॥२॥
इन्द्रमैन्द्र्यां सितादिद्धि मन्दादाग्नेयतो यमम् ।
राहोः पूर्वोत्तरे कालं सर्वभूतभयावहम् ॥३॥
केतोर्नैर्ऋतदिग्भागे चित्रगुप्तं निधापयेत् ।

स्कान्दे–अतः स्थापनमन्त्रांश्च कथयाम्यनुपूर्वशः ।
ईश्वरं त्र्यम्बकश्चेति श्रीश्च ते चेति पार्वतीम् ॥१॥
यदक्रन्देति च स्कन्दं विष्णुं विष्णो रराडिति ।
आ ब्रह्मन्निति ब्रह्माणं सजोषेन्द्रेति वासवम्॥२॥
यमाय त्वेति च यमं कालं कार्षिरसीति च ।
चित्रावस्विति मन्त्रेण चित्रगुप्तं निधापयेत् ॥३॥
अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्रश्चैन्द्री प्रजापतिः ।
सर्पो ब्रह्मा च निर्दिष्टा अधिदेवा यथाक्रमम् ॥४॥
अग्निन्दूतमिति त्वग्नेर्वरुणस्य उदुत्तमम् ।
स्योना पृथिवि मेदिन्या इदं विष्णुस्तु विष्णवे॥५॥
इन्द्र ऽआसान्नेतेतीन्द्रादित्यै रास्ना शचीस्थितौ ।
प्रजापते प्रजेशस्य एष ब्रह्मेति वै विधेः ॥६॥
मन्त्रो नमोऽस्तु सर्पेभ्यः सर्पाणां स्थापने मतः ।
ग्रहदेवाधिदेवानां नैवेद्यं कुसुमानि च ॥ ७ ॥
ग्रहवच्चासनं दानं स्थापनं चानुपूर्वशः ।

सूर्यादयो ग्रहा ईश्वरादयो देवाः अग्न्यादयोऽधिदेवाः । तत्रेश्वरादिदेवानां सूर्यस्यैवोत्तरे शम्भुमित्यादिना पूर्वं स्थलान्युक्तानि । अग्न्यादयोऽधिदेवास्तु ग्रहदेवयोर्मध्ये स्थाप्याः । तथा च मदनरत्ने गोभिल–वशिष्ठौ–

ग्रहदेवतयोर्मध्ये अधिदेवान्निधापयेत् ।

तत्रैव संग्रहे तु–ईश्वरादयो देवा अधिदेवतात्वेन व्यवहृता॥

अग्न्यादयस्तु प्रत्यधिदेवतात्वेन । तेषां स्थानान्तरं चोक्तम्—

अधिदेवा दक्षिणतो वामे प्रत्यधिदेवताः ।
स्थापनीयाः प्रयत्नेन व्याहृतिभिः पृथक् पृथक् ॥१॥

तत्रैव वासिष्ठीये तु देवतानां स्थानान्तरं चोक्तम्-

रुद्रं त्र्यम्बकमन्त्रेण रवेरुत्तरतो न्यसेत् ।
सोमस्याग्नेयदिग्भागे श्रीश्च ते येनकात्मजाम् ॥१॥
यदक्रन्देति भौमस्य स्कन्दं याम्ये प्रदापयेत् ।
विष्णुं विष्णो रराटेति यजेत्पूर्वे बुधस्य च ॥२॥
गुरोरुत्तरतोऽभ्यर्च्यो ब्रह्मा ब्रह्मेतिमन्त्रतः ।
सजोषेन्द्रेति शुक्रस्य प्राच्यां शक्रं निधापयेत् ॥३॥
शनेः पश्चिमतः स्थाप्यो यमाय त्वेत्यृचा यमः ।
कार्षिरसीति मन्त्रेण राहो कालं तथोत्तरे ॥४॥
चित्रगुप्तं तु केतूनां चित्रायस्वेति नैर्ऋते ।
ग्रहाश्च देवताः ख्याताः शृणुष्वातोऽधिदेवताः ॥
अग्निरापो धरा विष्णुरिन्द्रेन्द्राणी प्रजापतिः ।
सर्पो ब्रह्मा च निर्दिष्टा अधिदेवा यथाक्रमम् ॥६॥
ग्रहदेवतयोर्मध्ये अधिदेवान्निवेशयेत् ।

एतानि च वाशिष्ठीयवचांसि कैश्चिन्नाद्रियन्ते—

पारिजाते-पद्म प्राग्दलमारभ्य दलाग्रेषु क्रमान्न्यसेत् ।
इन्द्रादि लोकपालांश्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥१॥
विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च ।
आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥२॥

एतेऽत्र विनायकाद्याः पञ्चग्रहेभ्य उत्तरतः स्थाप्या इति साम्प्रदायिकाः । दक्षिणपश्चिम-वायव्योत्तर-पूर्वेषु यथाक्रममित्यन्ये ।

राहुमन्ददिनेशानामुत्तरस्यां यथाक्रमम् ।
गणेशो दुर्गा वायुश्च राहुकेत्वोश्च दक्षिणे ॥१॥
आकाशमश्विनौ चेति पञ्चैतान्स्थापयेद्बुधः ।

इति संग्रहवचनानुसारेणेति पितामहचरणा रूपनारायणश्च-

स्कान्दे-उत्तरे शनिसूर्याभ्यां गुरुकेत्वोश्च दक्षिणे ।
गणाधिपं प्रतिष्ठाप्य सर्वदेवनमस्कृतम् ॥१॥

रवि-शनि-केतु-गुरूणां मध्य इति फलितोऽर्थः । विनायकपद-मुपलक्षणम् । तेन दुर्गादयोऽप्यत्रैव स्थाप्या इति केचित् । चन्दनादि नियमस्तत्रैव ।

दिवाकर-कुजाभ्यां हि दापयेद्रक्तचन्दनम् ।
चन्द्रे च भार्गवे चैव सितवर्णं प्रदापयेत् ॥४॥
कुङ्कुमेन तु संयुक्तं चन्दनं जीव-सौम्ययोः ।
अगुरुं चन्दनं दद्याद्राहुकेत्वर्कजेषु च ॥२॥
ग्रहवर्णानि पुष्पाणि गायत्र्या धूपमादहेत् ।
रवेः कुन्दुरुकं धूपं शशिनस्तु घृताक्षताः ॥३॥
भौमे सर्ज्जरसं चैव अगुरुं च बुधे स्मृतम् ।
सिह्लकं गुरवे दद्याच्छुक्रे बिल्वागुरुं तथा ॥४॥
गुग्गुलं मन्दवारे तु लाक्षा राहोश्च केतवे ।

कुन्दुरुकः = सल्लकीनिर्यासः । सिह्लकं = सिह्ला इति मध्यदेशे प्रसिद्धम् । बिल्वागुरुं = बिल्वफलनिर्यासस्हितमगुरुं । मन्दवारः = शनिः । अग्निर्ज्योतीति मन्त्रेण दीपं दद्यादतन्द्रितः । विहितधूपदीपगन्धादीनामसम्भवे तु—

याज्ञवल्क्यः-यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ।
गन्धाश्च वलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलः ॥१॥

स्कान्दे-गुडोदनं रवेर्दद्यात्सोमाय घृतपायसम् ।
लोहिताय हविष्यान्नं बुधाय क्षीरषाष्टिकम् ॥१॥
दध्योदनं गुरोर्दद्याच्छुक्राय च घृतोदनम् ।
मिश्रितं तिलमाषैश्च नैवेद्यं तु शनैश्चरे ॥२॥

राहोर्माषोदनं दद्यात्केतोश्चित्रोदनं तथा ।

चित्रोदनम्-तिलतण्डुलमिश्रं स्यादजाक्षीरं च शोणितम् ।
कर्णनासागृहीतं स्यादेतच्चित्रोदनं स्मृतम् । इति दामोदरः

एतैरेव द्रव्यैर्ब्राह्मणा भोज्याः । तथा च याज्ञवल्क्यः—

गुडोदनं पायसं च हविष्यं क्षीरषाष्ठिकम् ।
दध्योदनं हविश्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव च ॥१॥
दद्याद्ग्रहक्रमादेतद् द्विजेभ्यो भोजनं बुधः ।
शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥२॥

वशिष्ठः—उपचाराणि सर्वेषामपि शुक्लाक्षतैः सदा ।
गन्धाभावे शुक्लगन्धं पुष्पाभावे सुगन्धकम् ॥२॥
धूपाभावे गुग्गुलः स्याद्द्रव्याभावे तु मिश्रकम् ।
पञ्चामृतं गवामेव मिश्रकं न कदाचनेति ॥३॥

मात्स्ये—प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम् ।
चूतपल्लवसंयुक्तं फलवस्त्रयुगान्वितम् ॥१॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गयुतं तथा ।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत् ॥२॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च ।
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ॥३॥
मृदमानीय विप्रेन्द्र ! सर्वौषधिसमन्विताम् ।
स्नानार्थं विन्यसेत्तत्र यजमानस्य धर्मवित् ॥४॥

याज्ञवल्क्यः—अर्कः पलासः खदिर अपामार्गोऽथ पिप्पलः ।
उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥१॥
ईश्वरादिदेवानां स्व-स्व-ग्रहसमिद्भिरेव होमः ।

हेमाद्रौ देवीपुराणे—

गणाधिपतये देया प्रथमा तु वराहुतिः ।
अन्यथा विफलं विप्र! भवतीह न संशय इति ॥

आश्वलायनः—

जुहुयात्समिदन्नाज्येनाभिर्ऋग्भिर्यथाक्रममिति ।

समित्सु विशेषमाह याज्ञवल्क्यः—

होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा युता ।

इति चात्र सम्प्रति यत्र देवताकानेकद्रव्याणामेकैवाहुतिः साज्ञाज्यवत्तदिति वाच्यम् ।

आदौ तु समिदन्नाज्यैः पृथगष्टोत्तरं शतमिति वाशिष्ठात् ।

अन्यत्रापि सम्प्रतिपन्नदेवताके स्मार्ते कर्मण्यनेकद्रव्यके पृथगेव होम इति साम्प्रदायिकाः । बहुषु कर्मसु प्रायो वचनान्यप्येवम् ।

स्कान्दे—आकृष्णेन सहस्रांसोरिमं देवा तथेन्दवे ।
अग्निर्मूर्द्धेति भौमाय उद्बुध्यस्व बुधाय च ॥१॥
बृहस्पतेति च गुरोः शुक्रायाऽन्नात्परिश्रुतः ।
शनैश्चरस्य मन्त्रोऽयं शन्नोदेवीरुदाहृतः ॥२॥
कयान इति राहोश्च केतुं कृण्वंस्तु केतवे ।

मात्स्ये—आवोराजेति रुद्रस्य बलिं होमं समाचरेत् ॥३॥
आपो हिष्ठेत्युमायास्तु स्योनेति स्वामिनस्तथा ।
विष्णोरिदं विष्णुरिति त्वमित्सेति स्वयम्भुवः॥४॥
इन्द्रमिद्देवतातय इतोन्द्रस्य प्रकीर्तितः ।
तथा यमस्य चायङ्गौरिति होमः प्रकीर्त्तितः ॥५॥
कालस्य ब्रह्मजज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते ।
चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति पौराणिका विदुः ॥६॥

अग्निं दूतं वृणीमह इति विष्णोरुदाहृतः ।
इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते ॥७॥
उत्तानपर्णिसुभगे इति शच्याः समाचरेत् ।
प्रजापतेः पुनर्होमं प्रजापत इति स्मृतः ॥८॥
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते ।
पूषं ब्रह्माय ऋत्विज इति ब्रह्मण्युदाहृत ॥९॥
विनायकस्य चातून इति मन्त्रो बुधैः स्मृतः ।
जातवेदसे सुनवाम दुर्गामन्त्रोऽत्र उच्यते ॥१०॥
पूर्णाहुतिं च मूर्द्धानं दिव इत्यभिमातयेत् ।

स्कान्दे—नैवेद्यशेषं हुत्वा च होममन्त्रादनन्तरम् ।
अथ व्याहृतिभिर्हुत्वा एकैकस्य यथाक्रमम् ॥१॥
अष्टोत्तरं च साहस्रं शतमष्टादिकं तथा ।
अष्टाविंशतिरष्टौ वा एकैकस्य तु होमयेत् ॥२॥
होतव्यं च घृतं तत्र चरुलक्षादिकं पुनः ।
मन्त्रैर्दशाहुतीर्हुत्वा होमो व्याहृतिभिः स्मृतः ॥३॥

अथेति अथवेत्यर्थः । गृहीत्वा तामथाम्बिकामितिवत् । मदनस्त्वथवेत्येव पपाठ तत्तन्मन्त्राणां व्याहृतीनां च परस्परं विकल्पः । अथाऽष्टोत्तरसहस्रादिसंख्यादि तु पक्षद्वयेऽपि नैवेद्यशेषहोमस्तु शाखाविशेषपर इत्यपि स एव लक्षादिकः पुनर्व्याहृतिभिर्होमो मन्त्रैर्दशाहुती हुत्वा स्मृत इत्यन्वयः । मन्त्रैर्ग्रहमन्त्रैः । व्याहृतिभिर्व्यस्ताभिः समस्ताभिश्च । तातचरणास्तु । अथ व्याहृतिभिर्हुत्वेति पृथग्वाक्यं एकैकस्येति तु प्रतिदैवतमष्टादिसंख्यान्वयार्थम् । एकैकस्य तु होमयेदित्वेकैकपदं तु चर्वादिद्रव्यपरम्, न देवतापरं । अस्मिन्नेव होमे घृतचरुद्रव्यविधिरग्रे लक्षादिक इत्येतत्तु । अथ व्याहृतिविहिते होमे लक्षादि संख्याविध्यर्थं । मन्त्रैरित्यादि तु चरुहोमोत्तरं सोमं राजानमिति मन्त्रेण यथाप्रकृतिस्विष्टकृदधुत्वा सूर्यादिमन्त्रैर्दशदशाहुतीः प्रतिदैवतं लक्षहोमादिद्रव्येण हुत्वा व्याहृतिभिर्लक्षादि

होमः कार्य इत्याहुः । यवाद्यन्यतमद्रव्येण ग्रहादिभिः प्रत्येकं दशाहुती-स्तत्तन्मन्त्रैर्हुत्वा तेनैव द्रव्येण व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिरयुतलक्ष-कोटयन्यतमसंख्यया जुहुयादिति हेमाद्रिमदनौ । तानि च द्रव्याणि

देवीपुराणे—यवव्रीहि-घृत-क्षीर-तिल-कंगु-प्रसारिकाः ।
पङ्कजोशीर-बिल्वार्क-दला होमे प्रकीर्त्तिताः ॥१॥
उदङ्मुखाः प्राङ्मुखा वा कुर्युर्ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
मन्त्रवन्तश्च कर्त्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम् ॥२॥
हुत्वा च तांश्चरून् सम्यक् कृतो होमं समारभेत् ।

चर्वादिकं च घृताद्यक्तं होतव्यम्—

होतव्यं च घृताद्यक्तं चरु भक्ष्यादिकं पुनः । इति—मात्स्यात्

भक्ष्यं द्राक्षादि । चरुर्नैवेद्यशिष्टो गुडोदनादिः । तानि द्रव्याण्यु-क्त्वा इत्येतानि हवींषि स्युः समित्संख्यासमाहुतीरित्याश्वलायनोक्तेः अधिदेवताभ्योऽपि होमः—

हेमाद्रौ—चरुणा च समिद्भिश्च सर्पिषा च तिलैः क्रमात् ।
तत्तन्मन्त्रैश्च होतव्याः क्रमादत्राधिदेवताः ॥१॥

गृह्यपरिशिष्टे—प्रधानदशांशेन पार्श्वदेवतयोरिति अधिदेवतादि-होमे संख्या वाशिष्टे द्वित्राश्चैवाधिदेवताः पञ्चानां चैव पञ्चधेति । द्वित्राः पञ्च । पञ्चानां गणेशादीनां पञ्चधा प्रत्येकमित्यर्थः । केचित्तु द्वौ त्रयो वा द्वित्राः । विनायकादीनां पञ्चधा एकैकामिति केचित् ।

प्रयोगपारिजाते—

इन्द्रादिलोकपालांश्च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ।
तत्तन्मन्त्रैर्जपं कुर्यात्ततो होमं समारभेत् ॥१॥

नृसिंहपुराणे—

ततो व्याहृतिभिः पश्चाज्जुहुयाच्च तिलादिकम् ।
यावत्प्रपूज्यते संख्या लक्षं वा कोटिरेव वा ॥१॥

वा शब्दादयुतमपि ग्रहयज्ञश्च न नियतकालीनः स्वेच्छायज्ञः स उच्यते इति भविष्योत्तरात्—

ततो व्याहृतिभिः कुर्यात्तिलहोमं प्रयत्नतः ।
प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमो द्वितीयकः ॥ १ ॥
तृतीयः कोटिहोमः स्यात्त्रिविधो ग्रहयज्ञकः ।
एकरात्रं त्रिरात्रं वा पञ्चरात्रमथाऽपि वा ॥ २ ॥
शिवगाथां विष्णुगाथां शान्तिं ब्राह्मणभोजनम् ।
समापयेत्प्रतिदिनमेवं भक्तिसमन्वितम् ॥ ३ ॥

इति वाशिष्ठेऽप्येकरात्रादि ग्रहणं नियमानादरार्थम् । अत्र सूक्तादिजपोऽपि तुलादानवदिति केचित् ।

वाशिष्ठे—अथाभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः ।
पूर्णकुम्भेन तेनैव होमान्ते प्राग्उदङ्मुखैः॥ १ ॥
अव्यङ्गावयवै र्ब्रह्मन् हैमस्रग्दामभूषितैः ।
यजमानस्य कर्त्तव्यं चतुर्भिः स्नपनं द्विजैः॥ २ ॥

अभिषेकमन्त्राः प्रयोगे वक्ष्यन्ते—

वशिष्ठः—स्वस्तिकं कल्पयेत्पश्चात्कुण्डस्येशानभागतः ।
यजमानाभिषेकार्थं तत्र भद्रासनं न्यसेत् ॥ १ ॥
प्राङ्मुखस्योपविष्टस्य यजमानस्य तत्र च ।
अभिषेकं ततः कुर्युः साचार्याः षोडशर्त्विजः ॥ २ ॥
विविधैर्मङ्गलैर्घोषैः सूतमागधजैः सह ।
ततस्तस्याभिषिक्तस्य रक्षार्थं बलिमुत्क्षिपेत् ॥ ३ ॥
दिग्विदिक्षु विचित्रान्नैर्दीपैर्नीराजयेत्ततः ।
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ॥ ४ ॥
ततो मण्डपमागत्य ध्यायेदग्निं सुरान्ग्रहान् ।
प्रत्येकं प्रतिमन्त्रैश्च दद्यात्पुष्पाञ्जलिं तत इति ॥ ५ ॥

वामनः--आचार्यप्रभृतिभ्यश्च ग्रहार्चनफलं ततः ।
समिदाज्यचरूणां च तिलहोमफलं च यत् ॥ १ ॥
ब्रह्मत्वे कुम्भपूजायां चाऽर्चनस्य फलं च यत् ।
गणपक्षेत्रपाश्वीशदुर्गादेव्यङ्गदेवताः ॥ २ ॥
तासां जपफलं सम्यग्गृह्णीयाज्जलपूर्वकम् ।

एतानि च वामनवचांसि निर्मूलानीति पितामहचरणाः । वाशिष्ठगोभिलवचसामपि केचिदाहुः ।

वशिष्ठः-ततो जपादीन् जुहुयात्पूर्णाहुतिमथाऽऽचरेत् ।

तत्रैव-मन्त्रेण सप्त ते ऽअग्ने इति पूर्णाहुतिं चरेत् ॥१॥

अग्निपुराणे-मूर्द्धानं दिव मन्त्रेण संस्रवेण च धारया ।
दद्यादुत्थाय पूर्णां वै नोपविश्य कदा च नेति ॥२॥

मात्स्ये पूर्णाहुतेरेकत्वान्मन्त्राणां विकल्पः । उपांशु याज इव शाखाभेदभिन्नानां याज्यानुवाक्यानां समुच्चयेन तु पठन्ति वसोर्द्धारा त्वयुतहोमे नास्ति प्रमाणाभावात् ।

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः ।
सर्वौषधैः सर्वगन्धैः स्नापितो वेदपुङ्गवैः ॥१॥
यजमानः सपत्नीक ऋत्विजस्तान्समाहितः ।
दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद्गतविस्मयः ॥२॥
सूर्याय कपिलां धेनुं दद्याच्छङ्खं तथेन्दवे ।
रक्तं धुरन्धरं दद्याद्भौमाय ककुदाधिकम् ॥३॥
बुधाय जातरूपं तु गुरवे पीतवाससी ।
श्वेताश्वं दैत्यगुरवे कृष्णां गामर्कसूनवे ॥४॥
आयसं राहवे दद्यात्केतवे छागमुत्तमम् ।
सुवर्णेन समाः कार्या यजमानेन दक्षिणाः ॥५॥

बुधप्रीत्यर्थं देयं हेम्ना सह सर्वा मूल्यतः समा इति केचित् । अस्मिन्पक्षे षोडशमाषविशिष्टहेमवाचि सुवर्णपदाऽसमंजसस्यापत्तेस्तादृशसुवर्णमूल्यं प्रत्येकमिति परे बह्वल्पमूल्येषु तथा हेमाऽपि देयं यथा सर्वाः प्रत्येकं दशमाषसुवर्णेन समा भवन्तीति तु सम्यक् ।

सर्वेषामथवा गावो गुरुर्वा येन तुष्यति ।
स्वमन्त्रेण प्रदातव्याः सर्वाः सर्वत्र दक्षिणाः ॥१॥

स्कान्दे-केतवे छागमांसानि सर्वेषामेव काञ्चनमिति ।

तत्रैव-यस्तु पीडाकरो नित्यं स्वल्पवित्तस्य वा ग्रहः ।
तमेव पूजयेद्भक्त्या दक्षिणाभिः स्वशक्तितः ।

दानोद्योते आश्वलायनः-

यथाशक्ति ततो विप्रानृत्विजश्चेतरानपि ।
एकमेकाहुतौ विप्रं होमे त्वन्नेन भोजयेत् ॥१॥
अत्यर्थो मध्यमश्चापि विप्रमेकं शताहुतौ ।
सहस्रस्य हुतैर्वैकं जघन्योऽपि प्रभोजयेत् ।

तत्रैव-तस्माद्दातुमशक्तोऽपि दक्षिणां चान्नमेव वा ।
जपैः प्रणामैः स्तोत्रैश्च तोषयेत्तर्पयेद्गुरुम् ॥३॥

स्कान्दे-यथा ग्रहो द्विजस्तद्वद्विज्ञेयो वेदपारगः ।
तोषयन् मृदुवस्त्राद्यैस्तुष्टमेनं विसर्ज्जयेत् ॥१॥
अन्नहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनश्च ऋत्विजः ।
यजमानमदक्षिण्यो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥२॥

तत्रैव-यथा समन्वितं मन्त्रं मन्त्रेण प्रतिहन्यते ।
एवं समुच्छ्रितं घोरं शीघ्रं शान्त्या विनश्यति ॥३॥
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च ।
नित्यं च नियमस्थस्य सदा सानुग्रहा ग्रहाः ॥४॥

ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।
पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥५॥
ग्रहाणामिदमातिथ्यं कुर्यात्संवत्सरादपि ।
आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेच्च शरदां शतम् ॥६॥

मात्स्ये–एवं समग्रान्निष्पाद्य सर्वान्देवान्विसर्जयेत् ।

तत्र मन्त्रः–यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् ।
इष्टकामप्रदानार्थं पुनरागमनाय च ॥१॥

भविष्योत्तरे–ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्तु महोत्सवम् ।
शंखतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषरवेण च ॥ १ ॥

मात्स्ये–अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समारभेत् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥१॥
स दैवायुतहोमोऽयं नवग्रहमखः स्मृतः ।
विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्म्मसु ॥२॥
निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ ! तथोद्वेगाद्भुतेषु च ।
वश्यकर्माभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम् ॥३॥
नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समारभेत् ।
अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित् ॥४॥
तस्मादयुतहोमस्य विधानं तु समाचरेत् ।

विवाहेत्यादिना च विवाहादिषु काम्येषु कर्मस्वङ्गत्वमुक्तम् । अत्र ग्रहस्वरूपवर्णदेशगोत्राग्निस्थानमुखाकारस्थापनहोममन्त्रचन्दनधूपदीपनैवेद्यसमिद्दक्षिणाधिदेवताप्रत्यधिदेवतोपदेशकवाक्येषु ग्रहाणां स्वरूपनिर्देशस्थापनहोममन्त्रोपदेशवाक्येषु वाधिदेवताप्रत्यधिदेवताविनायकादिपञ्चलोकपालानामनेकस्मृतिपुराणभेदेन भूयो विसंवादिभिरनेकैः पर्यायशब्दैरुपस्थितेर्नात्रैकवैधशब्दनियमः । नापि मन्त्रवर्णैनैकशब्दोपस्थितिः । शब्दविशेषैर्देवता अनूद्य-

तत्स्मारकतया मन्त्रविनियोगेन मन्त्राणां देवताप्रायकत्वायोगात्। तेषां बाहुल्येनास्पष्टलिङ्गत्वाच्च। अतो द्रव्यत्यागादिषु स्वरूपातिनिर्देशकस्मृतिमन्त्रवर्णोपस्थितशब्दानामन्यतमेन शब्देनोद्देशो ग्रहादीनामिति शिष्टाचारोऽप्येवम्। अत्र व्याहृति-करणके युतहोमेऽग्निवायुसूर्यप्रजापतय एव देवताः। न नवग्रहाः। ऐन्द्र्यादिवत्तत्प्रकाशकत्वेन विनियोगाभावात्। अत एव पारिजाते—ॐ भूर्भुवः सुवश्चेति तिस्रो व्याहृतयो जपेत्। आभिश्च होमे तिसृभिश्चतुर्थी स्यात्समासत इति समस्ताभिरेव होमः स चाग्नि-वायु-सूर्य-दैवत्य इति तु मदनः। सर्वथा व्याहृतिहोमेन ग्रहा देवता इति। प्रधानं चात्र ग्रहपूजा तद्धोमोयुत होमादिश्च। श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेदित्यादिना तत्पूजा तद्धोमयोः फलसम्बन्धात्। ग्रहयज्ञस्त्रिधेत्युक्त्वा प्रथमोऽयुतहोम इत्यादिनाऽयुतलक्षकोटिहोमानां ग्रहयज्ञविशेषकत्वेनोपक्रमात्। तस्मादयुतहोमस्य विधानं तु समाचरेदित्युपसंहाराच्च। ग्रहाग्रहदेवत्यकर्मसमूहे प्राणभृत उपदधातीति वल्लिंगसमवायेन ग्रहयज्ञशब्दः। तातचरणास्त्वयुतहोमादीनामेव प्राधान्यं ग्रहहोमस्त्वङ्गमित्याहुः। तदाशयं न जाने यो हि कामशब्देन फलसम्बन्धः। श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेदित्यादिः स तावद्ग्रहपूजाहोमयोरेवोचितः। ग्रहसम्बन्धप्राप्ते ग्रहयज्ञशब्दस्य तन्नामत्वात्। न चायुतहोमादीनां फलसम्बन्धे तत्प्रकरणपाठाद्ग्रहपूजाहोमयोरङ्गतेति वाच्यं वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात्। अयुतहोमादिशब्दानां ग्रहयज्ञसामानाधिकरण्येन ग्रहयज्ञनामत्वं तु लिङ्गसमवायेन आर्थवादिकः फलसम्बन्धस्तु।

अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत्।
सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते॥१॥

इत्यत्र यज्ञदेवपूजासंगतिकरणदानेष्वित्यनुशिष्टयोः पूजाहोमयोः सदैवायुतहोमोयमित्याद्युपक्रम्य निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ इत्यादिना त्वयुतहोमादिनामपि स्मृतिषु प्राय आर्थवादिकमेव फलम्। अत्र कामशब्दोपनीते फले सत्पार्थिवादिकं सम्बध्यते न वेति तु विचारान्तरम्। किं च याज्ञवल्क्यादिस्मृतिषु न तावदयुतहोमादीनां विधिर्नाप्यनुवादः। अतो ग्रहपूजाहोमयोः प्राधान्याभावे तत्रत्येतिकर्त्तव्यता-

सम्बन्धो न स्यात् । अतो ग्रहपूजाहोमयोरपि प्राधान्यं भाति । अत एव क्वचित्केवलग्रहमखेषु तदङ्गकेषु च शान्तिकादिकर्मस्वेकस्मृत्युक्ताङ्गप्रधानादरेण स्मृत्यन्तरोक्तप्रधानभूतायुतादिहोमं विनाऽपि शाखान्तरोक्तग्रहयागाभ्यासं विनैकशाखीयग्रहयागाभ्यासमात्राणामिव पूजा ग्रहदेवत्यहोमयोरेवानुष्ठानं कथञ्चित् शिष्टानां सङ्गच्छते । ग्रहपूजाहोमयोरङ्गत्वे त्वङ्गमात्रानुष्ठानमेव स्यात् ।

## अथ ग्रहादीनां लक्षणानि ।

मात्स्ये—पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः ।
सप्ताश्वरथसंस्थश्च द्विभुजः स्यात्सदा रविः ॥१॥
श्वेतः श्वेताम्बरधरो दशाश्वः श्वेतभूषणः ।
गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥२॥
रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः ।
चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरासुतः ॥३॥
पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः ।
खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥४॥
देव-दैत्यगुरू तद्वत्पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ ।
दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू ॥५॥
इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः ।
बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतः सदा ॥६॥
करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः ।
नीलः सिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥७॥
धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः ।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥८॥
सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहलोका हितावहाः ।
अङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतषष्ट्युत्तरं सदेति ॥९॥

## अथाधिदेवताप्रत्यधिदेवतालक्षणानि—

विष्णुधर्मोत्तरे—

पञ्चवक्त्रो वृषारूढः प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनः ।
कपाली शूलखट्वाङ्गी चन्द्रमौलिः सदाशिवः ॥१॥
अक्षसूत्रं च कमलं दर्पणं च कमण्डलुम् ।
उमा बिभर्ति हस्तेषु पूजिता त्रिदशैरपि ॥२॥
कुमारः षण्मुखः कार्यः शिखण्डकविभूषणः ।
रक्ताम्बरधरो देवो मयूरवरवाहनः ॥३॥
कुक्कुटश्च तथा घण्टास्तस्य दक्षिणहस्तयोः ।
पताका वैजयन्ती स्याच्छक्तिः कार्या च वामयोः ॥४॥
विष्णुः कौमोदकी-पद्म-शङ्ख-चक्रधरः क्रमात् ।
प्रदक्षिणं दक्षिणाधः करादारभ्य नित्यशः ॥५॥
पद्मासनस्थो जटिलो ब्रह्मा कार्यश्चतुर्भुजः ।
अक्षमालां स्रुवं बिभ्रत्पुस्तकं च कमण्डलुम् ॥६॥
चतुर्दन्तगजारूढो वज्री कुलिशभृत्करः ।
शचीपतिः प्रकर्त्तव्यो नानाभरणभूषितः ॥७॥
ईषन्नीलोपमः कार्यो दण्डहस्ते विजानता ।
रक्तदृक्पाशहस्तश्च महामहिषवाहनः ॥८॥
कालः करालवदनो नीलाङ्गश्च विभीषणः ।
पाशहस्तो दण्डहस्तः कार्यो वृश्चिकरोमवान् ॥९॥
अपीच्यवेषस्वाकारं द्विभुजं सौम्यदर्शनम् ।
दक्षिणे लेखनीं चित्रगुप्तं वामे तु पात्रकम् ॥१०॥
पिङ्गलश्मश्रुकेशाक्षः पीनाङ्गजठरोऽरुणः ।
छागस्थः साक्षसूत्रोऽग्निः सप्तार्चिः शक्तिधारकः ॥११॥

चिह्नितं चमरेणास्य करमन्यं प्रकल्पयेत् ।
आपः स्त्रीरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः ॥१२॥
दधानाः पाशकलशौ मुक्ताभरणभूषिताः ।
शुक्लवर्णा मही कार्या दिव्याभरणभूषिता ॥१३॥
चतुर्भुजा सौम्यवपुश्चण्डांशुसदृशाम्बरा ।
रत्नपात्रं सस्यपात्रं पात्रमोषधिसंयुतम् ॥१४॥
पद्मं करे च कर्त्तव्यं भुवो यादवनन्दन ! ।
दिङ्नागानां चतुर्णां सा कार्या पृष्ठगता तथा ॥१५॥

विष्णोरिन्द्रस्य चोक्तम्—

वामे शच्याः करे कार्या सौम्या सन्तानमञ्जरी ।
वरदा मण्डिता कार्या द्विभुजा च तथा शची ॥१॥
यज्ञोपवीती हंसस्थ एकवक्त्रश्चतुर्भुजः ।
अक्षं स्रुवं स्रुचं बिभ्रत्कुण्डिकां च प्रजापतिः ॥२॥

अक्षं अक्षमालाम् । कुण्डिकां कमण्डलुम् ।

अक्षसूत्रधराः सर्पाः कुण्डिकापुच्छभूषणाः ।
एकभोगास्त्रिभोगा वा सर्वे कार्याश्च भोषणाः ॥३॥

ग्रहलक्षणमुक्तम्—

ग्रहाणां दक्षिणे पार्श्वे स्थापयेदधिदेवताः ।
ग्रहाणामुत्तरे पार्श्वे न्यसेत्प्रत्यधिदेवताः ॥४॥

## अथ विनायकादिलक्षणानि ।

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च कर्त्तव्योऽत्र गजाननः ।
नागयज्ञोपवीतश्च शशाङ्ककृतशेखरः ॥५॥
दक्षे दन्तं करे दद्याद् द्वितीये चाक्षसूत्रकम् ।
तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थे मोदकं तथा ॥६॥

शक्तिं बाणं तथा शूलं खड्गं चक्रं च दक्षिणे ।
चन्द्रबिम्बमधो वामे खेटमूर्ध्वे कपालकम् ॥७॥
सुकं कटं च बिभ्राणा सिंहारूढा तु दिग्भुजा ।
एषा देवी समुद्दिष्टा दुर्गा दुर्गाऽर्तिहारिणी ॥८॥
धावद्धरिणपृष्ठस्थो ध्वजधारी समीरणः ।
वरदानकरो धूम्रवर्णः कार्यो विजानता ॥९॥
नीलोत्पलाभं गगनं तद्वर्णाम्बरधारि च ।
चन्द्रार्कहस्तं कर्त्तव्यं द्विभुजं सौम्यखण्डवत् ॥१०॥
द्विभुजौ देवभिषजौ कर्त्तव्यौ रूपसंस्थितौ ।
तयोरोषधयः कार्या दिव्या दक्षिणहस्तयोः ॥११॥
वामयोः पुस्तकौ कार्यौ दर्शनीयौ तथा द्विजाः ।
एकस्य दक्षिणे पार्श्वे वामे चान्यस्य यादव ! ॥१२॥
नारीयुगं प्रकर्त्तव्यं सुरूपं चारुदर्शनम् ।
रत्नभाण्डकरे कार्ये चन्द्रशुक्लाम्बरे तथा ॥१३॥

---

## अथ लोकपाल रूपाणि ।

तत्रेन्द्राग्नियमरूपाण्यधिप्रत्याधिदेवोक्तानि—

खड्गचर्मधरो बालो निर्ऋतिर्नरवाहनः ॥
ऊर्ध्वकेशो विरूपाक्षः करालः कालिकाप्रियः ॥१॥
नागपाशधरो रक्तभूषणः पद्मिनीप्रियः ।
वरुणोऽम्बुपतिः स्वर्णवर्णो मकरवाहनः ॥ २ ॥

वायुर्विनायकादिपञ्चके उक्तः । सोमो ग्रहेषु । अनन्तः सर्पः सप्रत्यधिदेवतासु । इत्ययुतहोमः ।

---

## अथ लक्षहोमः ।

तत्र ग्रहपीडादीनि निमित्तान्युक्तान्ययुतहोमारम्भो देवीपुराणे—

लक्षहोमं प्रवक्ष्यामि यथाप्रोक्तं तु शम्भुना ।
भूमिकम्पे दिशादाहे ग्रहयुद्ध उपस्थिते ॥ १ ॥
केतुसन्दर्शने चैव आदित्यस्य च कम्पने ।
कृष्णवर्णेऽथवा सूर्ये तथा छिद्रसमन्विते ॥२॥
रक्तवृष्टिस्तथा नद्यो विपरीतां वहन्ति च ।
निर्गतं गगनाद्धूमं वारिमध्ये च यत्स्थितम् ॥ ३ ॥
उपसर्गास्तथा लोके रक्षन्तु क्षयकारकाः ।
यस्य राशौ ग्रहाः पञ्च अथ सप्त सुराधिप ॥४॥
ग्रहणं चन्द्रसूर्यसग्रहैर्वाष्ट संस्थितैरित्यपि ।

तथा—कम्पनं स्वेदनं गात्रे अम्बुपानार्थजल्पनम् ।
देवतानां सुराध्यक्ष उत्पाताः क्षयकारकाः ॥१॥
लक्षहोमं प्रकुर्वीत कोटिहोममथापि वा । इति ।

मात्स्ये—अस्माद्दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमः स्वयम्भुवा ।
आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च ॥१॥
द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायुतं पुनः ।
लक्षहोमे भवेत्कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥२॥

व्यासतो द्विहस्तं फलतश्चतुर्हस्तायतं भवतीत्यर्थः ।

तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसम्मितम् ।
प्राग्गुदक् प्रवणं तद्वच्चतुरस्रं समं ततः ॥३॥
विष्कम्भार्द्धोच्छ्रितं प्रोक्तं स्थण्डिलं विश्वकर्मणा ।
संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् ॥४॥
तस्मिंस्त्वावाहयेद्देवान्पूर्ववत्पुष्पतण्डुलैः ।

गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता ॥५॥
सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ।
विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥६॥

अथ गरुडावाहनमन्त्रः—

पूर्ववत्कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत् ।
सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्यादिकं पुनः ॥१॥

पूर्ववदेव समिदाज्यं चरुहोमं पूर्वोक्तैरेव मन्त्रैः कुर्यात् । गरुत्मतः सुपर्णोसि गरुत्मानिति इन्द्रं मित्रमिति वा मन्त्रः ।

घृतकुम्भवसोर्द्धारां पातयेदनलोपरि ।
उदुम्बरीमथार्द्धां च ऋज्वीं कोटरवर्जिताम् ॥१॥
बाहुमात्रां स्रुचं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि ।
घृतधारां तथा सम्यगग्नेरुपरि पातयेत् ॥२॥
श्रावयेत्सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम् ।
महावैश्वानरं सम्यग्ज्येष्ठसाम च पाठयेत् ॥३॥
स्नानं च यजमानस्य पूर्ववत्स्वस्तिवाचनम् ।
दातव्या यजमानेन पूर्ववद्दक्षिणा पृथक् ॥४॥
कामक्रोधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा ।
तद्वद्द्वादश चाष्टौ वा लक्षहोमेऽपि ऋत्विजः ॥५॥
कर्त्तव्याः शक्तितस्तद्वच्चतुरो वा विमत्सराः ।

ब्रह्माचार्यसहिता नामेवेयं संख्येति केचित्—

नवग्रहमखात्सर्वं लक्षहोमे दशोत्तरम् ।
दद्याच्च मुनिशार्दूल ! भूषणान्यपि शक्तितः ॥१॥
शयनानि च वस्त्राणि हैमानि कटकानि च ।
कर्णाङ्गुलीपवित्राणि कण्ठसूत्राणि शक्तितः ॥२॥

न कुर्याद्दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन मानवः ।
अदत्वा होमलोपाद्वा कुलक्षयमवाप्नुयात् ॥३॥
अन्नदानं यथाशक्त्या कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ।
मन्त्रहीनं कृतो यस्माद्दुर्भिक्षफलदो भवेत् ॥४॥

तथा—तस्मात्पीडाकरोतीव य एव भवति ग्रहः ।
तमेव पूजयेद्भक्त्या द्वौ वा त्रीन्वा यथाविधि ॥५॥

तथा—पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः ।
यावत्कल्पशतान्यष्टौ अथ मोक्षमवाप्नुयात् ॥६॥

तथा—पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
भार्यार्थी लभते भार्यां कुमारी च शुभं पतिम् ॥७॥
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात् ।
यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥८॥
निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्म स गच्छति ।

॥ इति लक्षहोमः ॥

---

## अथ कोटिहोमः ।

तत्राप्ययुतलक्षहोमप्रकरण एव निमित्तान्युक्तानि ।

भविष्योत्तरेऽपि । संवरण उवाच—

भगवन् ! महदुत्पातसम्भवे भूमिकम्पने ।
निर्घाते पांशुवर्षे च ग्रहभङ्गे तथैव च ॥१॥
जन्मनक्षत्रपीडासु अनावृष्टिभयेषु च ।
क्रूरासु ग्रहपीडासु दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ॥२॥
व्याधीनां सम्भवे जाते शरीरे वेति पीडिते ।
क्लेशे महति चोत्पन्ने किं कर्त्तव्यं नरोत्तमैः ॥३॥

स्वर्गस्य साधनं यत्तत्कीर्तिदं धनदं तथा ।
प्रब्रूहि मनुजश्रेष्ठ ! तथाऽऽरोग्यप्रदं नृणाम् ॥४॥

सनत्कुमार उवाच—

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि शान्तिकर्मण्यनुत्तमम् ।
कोटिहोमाख्यमतुलं सर्वकामफलप्रदम् ॥१॥
ब्रह्महत्यादिपापानि येन नश्यन्ति तत्क्षणात् ।
उत्पाताः प्रशमं यान्ति महत्सम्पद्यते शुभम् ॥२॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि शृणु ह्येकमना भव ।
देवागारे च भवने तीर्थे वा शिवसन्निधौ ॥३॥
पर्वते वाऽथ कुर्वीत इच्छेत्क्षेममात्मनः ।
शुभनक्षत्रयोगे च वारे सर्वगुणान्विते ॥४॥
यजमानस्यानुकूले कोटिहोमं समाचरेत् ।
पूजयित्वा प्रयत्नेन ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥५॥
वस्त्रैर्विभूषणैश्चैव गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
प्रणम्य विधिवत्तस्मै चात्मानं निवेदयेत् ॥६॥
त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणम् ।
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे ! सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ॥७॥
आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् ।
कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम् ॥८॥
पुरोहितस्ततः प्राज्ञः शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।
ब्राह्मणैः संवृतः पुण्यैः संयुतः सुसमाहितैः ॥९॥
भूमिभागे समे शुद्धे प्रागुदक्प्रवणे तथा ।
पुण्याह वाचयेत्पूर्वं कृत्वा विप्रांस्तु पूजयेत् ॥१०॥
ततः समाहितो विप्रः सूत्रयेन्मण्डपं शुभम् ।
उत्तमं शतहस्तं तु तदर्द्धेन तु मध्यमम् ॥११॥

अधमं तु तदर्द्धेन शक्तिकालाद्यपेक्षया ।
मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्याद्विचक्षणः ॥१२॥
अष्टहस्तप्रमाणेन आयामेन तथैव च ।
मेखलात्रितयं तस्य द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् ॥१३॥
तत्प्रमाणां तथा योनिं कुर्वीत सुसमाहितः ।
कुण्डस्य पूर्वभागे तु वेदिं कुर्याद्विचक्षणः ॥१४॥
चतुर्हस्तां समां चैव हस्तमात्रोच्छ्रितां नृप ।
स्थापनं च सदेवानां कुर्याद्यत्नेन बुद्धिमान् ॥१५॥
उपलिप्य ततो भूमिं मण्डपस्य प्रकल्पयेत् ।
स्थापयेद्दिक्षु सर्वासु तोरणानि विचक्षणः ॥१६॥
एवं सम्भृतसम्भारः पुरोधाः सुसमाहितः ।
पुण्याहजयघोषेण होमकर्म समाचरेत् ॥१७॥
स्थापयित्वा सुरान्वेद्यां वक्ष्यमाणानरिंदम !
ब्रह्माणं पूर्वभागे तु मध्ये देवं जनार्दनम् ॥१८॥
पश्चिमे तु तथा रुद्रं वसूनुत्तरतस्तथा ।
ईशान्यां च ग्रहान्सर्वानाग्नेय्यां मरुतस्तथा ॥१९॥
वायुं भूम्यां तथैशान्यां लोकपालान्क्रमेण तु ।
एवं संस्थाप्य विबुधान्यथास्थानं नृपोत्तम ! ॥२०॥
पूजयेद्विधिवद्वस्त्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
वेदोक्तमन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुराणोक्तैः पृथक् पृथक्॥२१॥
आदित्या वसवो रुद्रा लोकपालास्तथैव च ।
ब्रह्मा जनार्दनश्चैव शूलपाणिर्महेश्वरः ॥२२॥
अत्र सन्निहिताः सर्वे भवन्तु सुखभागिनः ।
पूजां गृह्णन्तु सर्वत्र मया भक्त्योपपादिताम् ॥२३॥
प्रकुर्वन्तु शुभं सर्वे यज्ञकर्तुः समाहिताः ।

एवं तु पूजयित्वा तान्देवान्यत्नेन शुद्धधीः ॥२४॥
नैवेद्यैर्विविधैर्भक्ष्यैः फलैश्चैव सुशोभितैः ।
ततस्तु तैर्द्विजैः सर्वैः कुण्डस्य विधिपूर्वकम् ॥२५॥
कुर्यात्संस्कारकरणं यथोक्तं वेदवित्तमैः ।
ततः समाह्वयेद्वह्निनाम्नाख्यातं घृतार्चितम् ॥२६॥
नियोजयेद्द्विजांस्तत्र शतसंख्यान्नृपोत्तम ।
अलाभे च बहूनां च यथालाभं नियोजयेत् ॥२७॥
विद्यावित्तवयोवृद्धान् गृहस्थान् संयतेन्द्रियान् ।
स्वकर्मनिरतान् बुद्ध्वा ज्ञानशीलान्प्रयत्नतः ॥२८॥
चिन्तयेत्तत्र देवेशं पश्चास्यं नृप ! पावकम् ।
मुखानि तस्य चत्वारि सप्तजिह्वानि पार्थिव ! ॥२९॥
एकजिह्वमथैकं तु तत्स्मृतं सार्वकामिकम् ।
धूमायमानेन वृथा होतव्यं ज्वलितेन ते ॥३०॥
ऋग्भिः पूर्वमुखैः कार्यो यजुर्भिश्चोत्तरामुखैः ।
सामभिः पश्चिमे कार्यः पूर्ववद्दक्षिणामुखैः ॥३१॥
आघारावाज्यभागौ तु पूर्वं हुत्वा विचक्षणाः ।
परितश्च परिस्तीर्णे कल्पिते च तथाऽऽसने ॥३२॥
ब्राह्मणाः पूर्वमेवात्र सर्वं पश्चात्समाचरेत् ।
होमो व्याहृतिभिश्चैव सर्वस्तत्र विधीयते ॥३३॥
प्रणवादिभिश्च तल्लिङ्गैः स्वाहाकारान्तयोजितैः ।
जुहुयात्सर्वदेवानां वेद्यां ये चावकल्पिताः ॥३४॥
एवं प्रकल्पयेद्यज्ञं कोटिहोमाख्यमुत्तमम् ।
तिलाः कृष्णा घृताभ्यक्ताः किञ्चिद्व्रीहिसमन्विताः ॥३५॥

किञ्चिद्यव समायुक्ता इति क्वचित्पाठः ।

होतव्याः कोटिहोमे तु समिधः सुपलाशजाः ।

पूर्णे पूर्णे सहस्रे तु दद्यात्पूर्णाहुतिं शुभाम् ॥३६॥
पञ्चमे तन्मुखे राजन्! सर्वकामार्थसिद्धये ।
पूर्णाहुत्यः समाख्याताः कोटिहोमे नराधिप ! ॥३७॥
सहस्राणि नृपश्रेष्ठ ! दशशास्त्रविशारदैः ।
प्रारम्भदिनमारभ्य ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥३८॥
होतव्यं यजमानैश्च अथवा सुपुरोहितैः ।
क्रोधलोभादयो दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥३९॥
यजमानेन राजेन्द्र सर्वकामानभीप्सता ।

मात्स्ये—अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा ।
आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च ॥ १ ॥
पूर्ववद्ग्रहदेवानामावाहनविसर्ज्जनम् ।
होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नानदाने तथैव च ॥ २ ॥
कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे ।
कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं च सर्वशः ॥ ३ ॥
योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम् ॥

सर्वशः चतुर्हस्तमिति विस्तारायामखातेष्वित्यर्थः । योनिवक्त्रद्वयोपेतमित्येका योनिः पश्चिमतोऽन्या दक्षिणत इति हेमाद्रिः । वक्त्रं=कण्ठः । योनिकण्ठयुतमिति पितामहचरणाः ।

वेदिश्च कोटिहोमे स्याद्वितस्तीनां चतुष्टयम् ।
चतुरस्रा समाहूता त्रिभिर्वप्रैः समावृता ॥ १ ॥
वप्रमानं मया प्रोक्तं वेदिकायास्तथोच्छ्रयः ।

उक्तमयुतहोमे—
तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ॥ २ ॥
पूर्वद्वारे च संस्थाप्य वह्वृचं वेदपारगम् ।
याजुर्वेदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम् ॥ ३ ॥

अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद्बुधः ।
अष्टौ तु होमकाः कार्या वेदवेदाङ्गवेदिनः ॥ ४ ॥
एवं द्वादश तान् विमान् वस्त्रमाल्यानुलेपनैः ।
पूर्ववत्पूजयेद्भक्त्या सर्वाभरणभूषितैः ॥ ५ ॥
रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम् ।
पूर्वतो बह्वृचः शान्तिं पठन्नास्त उदङ्मुखः ॥ ६ ॥
शाक्रं रौद्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं शान्तिमेव च ।
पठेत्तु दक्षिणे द्वारि याजुर्वैदिकमुत्तमम् ॥ ७ ॥
सौपर्णमथ वैराजमाग्नेयं रौद्रसंहिताम् ।
ज्येष्ठसाम तथा शान्तिं छन्दोगः पश्चिमे पठेत् ॥ ८ ॥
शान्तिसूक्तं च तथा तथा शाकुनकं शुभम् ।
पौष्टिकं च महाराजन्नुत्तरेणाऽप्यथर्ववित् ॥ ९ ॥
पञ्चभि सप्तभिर्वाऽथ होमः कार्योऽत्र पूर्ववत् ।
स्नाने दाने च मन्त्राः स्युस्त एव मुनिसत्तम ! ॥१०॥
वसोर्द्धाराविधानं तु लक्षहोमवदिष्यते ।
अनेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत् ॥११॥
सर्वान्कामानवाप्नोति ततो विष्णुपदं व्रजेत् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि ग्रहशान्तित्रयं नरः ॥१२॥
सर्वपापविशुद्धात्मा पदमिन्द्रस्य गच्छति ।
अश्वमेधसहस्राणि दश वाऽष्टौ च धर्मवित् ॥१३॥
कृत्वा यत्फलमाप्नोति कोटिहोमात्तदश्नुते ।
ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्याऽर्बुदानि च ॥१४॥
नश्यन्ति कोटिहोमेन यथावदेवभाषितम् ।

इति कोटिहोमः ।

## अथ शतमुखकोटिहोमः ।

संवरण उवाच—

बहुत्वात्कर्मणो ब्रह्मन् ! कोटिहोमः सुदुष्करः ।
कालेन महता चैव कर्तुं शक्यः कथञ्चन ॥ १ ॥
नियमा ब्रह्मचर्याद्या दुष्करा इति मे मतिः ।
निरोधो ब्राह्मणानां च भूशय्यादि सुदुष्करम् ॥ २ ॥
कार्याणामलघीयत्वात्पूर्वकालाद्यपेक्षया ।
एतद्विज्ञाय तं ब्रह्मन् ! सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥ ३ ॥
कोटिहोमस्य संक्षेपं वद मे ब्रह्मसम्भव ! ।

सनत्कुमार उवाच—

शताननो दशमुखो द्विमुखैकमुखस्तथा ।
चतुर्विधो महाराज ! कोटिहोमो विधीयते ॥ १ ॥
कार्यस्य गुरुतां ज्ञात्वा नैकट्यमथ पर्वणः ।
यथा संक्षेपतः कार्यः कोटिहोमस्तथा शृणु ॥ २ ॥
कृत्वा कुण्डशतं दिव्यं यथोक्तं मानसम्मितम् ।
एकैकस्मिंस्तथा कुण्डे दश विप्रान्नियोजयेत् ॥ ३ ॥
सद्यः पक्षे तु विप्राणां सहस्रं परिकीर्तितम् ।
एकस्थानप्रणीतेऽग्नौ सर्वतः परिभाविते ॥ ४ ॥

एकस्थानात्सर्वतः सर्वतः सर्वस्मिन्कुण्डे परिभाविते संस्कृतेऽग्नौ प्रणीत इत्यर्थः ।

होमं कुर्युर्द्विजाः सर्वे कुण्डे कुण्डे यथोदितम् ।
यथा कुण्डबहुत्वेऽपि राजसूये महाक्रतौ ॥ ५ ॥
न चाप्यग्निबहुत्वं स्यान्न च यज्ञादि भिद्यते ।
तथा कुण्डशतेऽप्यत्र घृतार्चिषि नियोजिते ॥ ६ ॥

5356

एक एव भवेद्यज्ञः कोटिहोमो न संशयः ।
एवं यैः क्रियते क्षिप्रं व्याकुलैः कार्यगौरवात् ॥ ७ ॥
शताननः स विज्ञेयः कोटिहोमो न संशय ।
स्वल्पैरहोभिः कार्यं स्यादीर्घकालादिकेऽपि वा ॥ ८ ॥
तदा दशमुखः कार्यः कोटिहोमः शुभे मते ।
विप्राणां द्विशते तत्र प्रविभज्य नियोजयेत् ॥ ९ ॥
तेऽपि विज्ञातशीलाः स्युर्वृत्तवन्तो जितेन्द्रियाः ।
यत्र कुण्डद्वयं कृत्वा विभज्य च विभावसुम् ॥१०॥
होमं कुर्युर्द्विजा भूयः संस्कृत्य विधिपूर्वकम् ।
शतं तत्र नियोज्यं च विप्राणां प्रविभज्य वै ॥११॥
मासेऽथवाऽर्द्धमासे वा कार्य्यः काले ह्युपस्थिते ।
तदापि द्विमुखः कार्यः कोटिहोमो विचक्षणैः ॥१२॥
तदनु स्वेच्छया यज्ञं यजमानः समापयेत् ।
कालेन बहुना राजंस्तदा चैकमुखो भवेत् ॥१३॥
एककुण्डस्थितो वह्निरेकचित्तैः समाहितैः ।
यथालाभस्थितैर्विप्रैर्ज्ञानशीलैर्विचक्षणैः ॥१४॥
न संख्यानियमश्चाऽत्र ब्राह्मणानां नरोत्तम !
न कालनियमश्चैकस्वेच्छायज्ञः स उच्यते ॥१५॥
आवृत्या कर्तुकामस्य चातुर्मास्यादि कर्मवत् ।
तदा प्रसक्तः कर्त्तव्यो यज्ञोऽयं सर्वकामिकः ॥१६॥
अयमेकमुखो राजन् ! कालेन बहुना भवेत् ।
बहुविघ्नश्च कालो वै तस्मात्संक्षेपमाचरेत् ॥१७॥
यतो वै वित्तमायुश्च वित्तं चैवाऽस्थिरं सदा ।
अतः संक्षेपतः कार्यं धर्मकार्य्यं प्रशस्यते ॥१८॥
ततः समाप्ते यज्ञे तु कारयेत्सुमहोत्सवम् ।

शंखतूर्य्यनिनादेन ब्रह्मघोषरवेण च ॥१९॥
ततस्तु दक्षयेद्विप्रान् ऋत्विजः श्रद्धयान्वितः ।
एकैकं कनकैश्चैव कुण्डलैर्विविधैर्नृप ! ॥२०॥
गोशतं चैव दातव्यमश्वानां च शतं तथा ।
सहस्रं तु सुवर्णस्य सर्वेषामपि दापयेत् ॥२१॥
ग्रामैर्गजै रथैरश्वैः पूजयेच्च पुरोहितम् ।
दीनान्धकृपणान्सर्वान्वस्त्रान्नैश्चाऽपि पूजयेत् ॥२२॥
ततश्चावभृथे स्नायात्तैर्घटैः पूर्वकल्पितैः ।
लक्षहोमोक्तमन्त्रेण सदाविजयकारिणा ॥२३॥
एवं समापयेद्यस्तु कोटिहोममखं शुभम् ।
तस्यारोग्यं प्रियाः पुत्रा आयुर्वृद्धिस्तथैव च ॥२४॥
सर्वपापक्षयश्चैव जायते नृपसत्तम ! ।
अनावृष्टिभयं चैव उत्पातभयमेव च ॥२५॥
दुर्भिक्षग्रहपीडाश्च प्रशमं यान्ति भूतले ।
एतत्पुण्यं पापहरं सर्वकामफलप्रदम् ॥२६॥
सनत्कुमारमुनिना पार्थिवाय निवेदितम् ।
सर्वोपसर्गशमनं भवनाशनं वा
ये कारयन्ति मनुना नृपकोटिहोमम् ।
भोगानवाप्य मनसोऽभिमतान् प्रकामं
ते यान्ति शक्रसदनं भुवि शुद्धसत्त्वाः ॥२७॥

अथ यथैते साहस्राः साद्यस्क्रा इत्येकसंज्ञयोपक्रांतेषु क्रमाम्नातेषु च निकायिसंज्ञकेषु यागेषु प्रथमस्याम्नातधर्मकस्य धर्मा उत्तरेष्वनाम्नातधर्मकेषु निकायित्वाऽवान्तरासामान्यात्साहस्रं साद्यस्क्राद्येकनामकत्वाच्च प्रवर्तेत इत्यष्टमे निकायिनां तु पूर्वस्योत्तरेषु प्रवृत्तिः स्यादित्यत्र निरणायि । तथेह चतुर्विधो महाराजकोटिहोम इति चतुर्णां कोटिहोमनामत्वावान्तरसामान्येन सधर्मकस्यैकमुखस्य

धर्मा अनाम्नातधर्मकेषु द्विमुखादिषु प्रवर्त्तन्ते तेन तेषां विकृतित्वम् । तत्र द्विमुखे तावत्कुण्डद्वयं प्रकृतिप्राप्तेषु शतपञ्चाशत्पञ्चविंशतिहस्तमण्डपेषु मध्यमनवमांशे कार्यं तस्यैव मध्यमे नवमांशे तु कुण्डं कुर्याद्विचक्षण इति प्रकृतौ वचनेनात्रापि तथा प्राप्तेः । तच्च कुण्डद्वयं षट्हस्तम् । दशलक्षमिते होमे षट्करं संप्रचक्षत इति भविष्यत्पुराणात् । पञ्चहस्तं वा । कुण्डं पञ्चकरं प्रोक्तं दशलक्षाहुतौ क्रमादिति तत्वान्तराच्च । दशलक्षोत्तरमेकोनकोटिपर्य्यन्तं पञ्चषट्करे इत्यर्थः । अयुतहोमतः प्राप्तं एकहस्तत्वं प्राकृतं परिमाणं त्वाद्वृद्धार्थत्वापत्याऽप्राकृतकार्यत्वाद्बाध्यते । अर्थात्परिमाणमिति कात्यायनोक्तेश्च । तत्र पञ्चविंशतिहस्ते मण्डपे मध्यनवांशे दक्षिणोत्तरयोः कुण्डद्वयं निविशतेः ॥ कथञ्चित् प्रकृतितो द्वादशाङ्गुलमेखलाप्राप्तेः । इतरयोस्तु मण्डपयोः सुगम एव निवेशः । एवं दशमुखेऽपि प्राकृतैकहस्तत्वबाधेन पञ्चकराणि षट्कराणि वा दशकुण्डानि । तेषु प्रत्येकं दशलक्ष आहुतयः । तत्र पञ्चविंशतिहस्ते मण्डपे मध्यमांशेषु पूर्वादिषु चतुर्षु दिक्षु मध्ये संलग्नानि चत्वारि कुण्डानि । प्राकृतमध्यमांशाधिकरणत्वस्य यावत्सम्भवमनुग्रहस्य न्याय्यत्वात् । प्राचि नवमांशे तु प्राकृता चतुःकरा वेदी । सप्तस्वंशेषु षट्कुण्डानि यः कश्चिदेकोंशस्तु रिक्त एव । कुंडद्वयं मध्यमांशे । अष्टस्वंशेष्वष्टाविति केचित् । शतमुखेऽपि पञ्चविंशतिहस्ते तावन्मण्डपे शतकुण्डो निवेशो बाधित एव । पंचाशद्धस्ते यद्यपि सम्भवति तथापि सहस्रविप्राणां सुखेन निवेशो बाधितः । अतः शतहस्त एव निवेश उच्यते । तत्र मध्यमांशे प्राग्भागे उदक्संस्था पञ्चानामेका पंक्तिः । तेषां च कुण्डानां प्रत्येकमन्तरं सार्द्धसप्तहस्ताः सप्तांगुलानि च । ततः प्रतीच्यामेतादृशमेवान्यत्पंक्तित्रयं कार्यम् । पंक्तीनामन्तरंवाष्टौ हस्ताः । सप्तांगुलानि च । एवं विंशतिकुण्डानि मध्यभागे अन्येष्वष्टसु भागेषु मध्ये द्वे द्वेऽष्टसु दिक्ष्वष्टावष्टाविति । प्रत्येकं दश दशेति । नन्वु शतकुण्डेषु प्रत्येकं लक्षाहुतिप्राप्तिः । न चैतत्सद्यः कोटिहोमपक्षे सम्भवति । कृत्वा कुण्डशतं दिव्यं यथोक्तं हस्तसम्मितमिति शतमुखप्रकरणे कुण्डानां हस्तपरिमाणोक्तेरिति चेत्तत्र केचित् हस्तसम्मितमित्यत्र हस्ताभ्यां हस्तैर्वा सम्मितमिति विग्रहेण त्रिचतुर्हस्तताऽपि युज्यते । द्विहस्तेऽपि तु लक्षमाहुतयः सम्भान्त्येव ॥ अत एव —

हेमाद्रौ—अयुते लक्ष होतव्ये कुण्डं स्याद्धस्तमात्रकम् ।
द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणमिति ॥१॥

यद्यप्यौत्सर्गिक एकवचनान्तेनैव विग्रहस्तथाऽप्यनुपपत्त्या द्विबहुवचनान्तेनापि क्रियते । यथा सप्तदश प्राजापत्यान्पशूनालभत इत्यत्र चोदकप्राप्तैकपशुनिष्पन्नहृदयाद्येकादशावदानगणानुरोधेन प्रजापतिर्देवता यस्यासौ प्राजापत्यः प्राजापत्यश्च प्राजापत्यश्च प्राजापत्य इति कृत्तद्धितानामेकशेष एव यागो न तु अयं वा पञ्चैक इत्येकशेषोत्तरं तद्धितं चोदकबाधापत्तेरित्युक्तम् । एवं द्विचतुर्हस्तकुण्डं सम्पत्त्या युज्यन्त एकैकस्मिन्कुण्डे लक्षमाहुतय इत्याहुः । तातचरणास्तु-व्यासतुल्यखातेन षट्पञ्चचतुस्त्रिशद्धस्तांगुलानां पञ्चमेखलानां विंशत्यंगुलोच्चतया च मध्यावकाशविवृध्या एकैकहस्तेष्वपि शक्या एव लक्षमाहुतयः कर्तुम् । अनारभ्यान्नातपञ्चमेखलापक्षेण प्राकृतमेखला त्रयबाधस्तूपदिष्टैकहस्तत्वानुरोधेनेति युक्तमाहुः । अत्रैकस्मिन्कुण्डे आज्यभागान्तं कृत्वाऽन्यकुण्डेष्वग्निप्रणयनमिति केचित्, तन्न वरुणप्रघासि कदक्षिणोत्तरवेद्योरनुष्ठीयमानायामाहुत्यामाग्नेयाद्यष्टहविष्णुबाघाराज्यभागप्रयाजाद्यङ्गानां पृथगनुष्ठानवदाज्यभागांतं स्विष्टकृदाद्यङ्गानुष्ठानवदिहापि तिस्र आहुतीतिवत्संख्यया भिन्नेषु कोटिसंख्याकेषु होमेषु लक्षशः शतकुण्डेष्वनुष्ठीयमानेष्वाज्यभागातिस्विष्टकृदाद्यङ्गानुष्ठानभेदस्यैव न्याय्यत्वात् । किं च अप्रमादार्थेन दीक्षाकालीनजागरणेन दीक्षोपयुक्तसम्भारसंरक्षणेऽपि प्रायणीयाद्यर्थसम्भारसंरक्षणार्थातिदेशिकजागरणावृत्तिवदिहाप्यग्निसमिन्धनार्थेध्माधानावृत्तिः कथमप्यनिवार्यैव । न हि आचार्यकुण्डस्थेऽग्नौ समिद्धे कुण्डान्तरस्थानां समिन्धनं भवति । अत एवायुतहोमे पूर्वलिखितं तत्तद्ग्रहाकारवच्च कुण्डीपक्षे प्रधानायतनादग्निं विभज्य आचार्यकुण्डेषु प्रणीय नवाचार्या आज्यभागान्तं कृत्वेत्यादिना होमशेषं समाप्य पूर्णाहुतीर्हुत्वेत्यन्तेनाज्यभागांतानां स्विष्टकृदादीनां चाङ्गानामावृत्तिलिखनं प्रयोगपारिजातीयं संगच्छते तदेव च कोटिहोमे चोदकात्प्राप्तम् । प्राकृताष्टसंख्याबाधेन नवतिसंख्यामात्रं विधीयते । यद्यपि प्रणयनांतरं तथापि तद्धर्मकमेवं सर्वथाङ्गानामावृत्तिरेव एतावानविशेषः शतसंख्यया कुण्डेषु नवसंख्या ग्रहाद्याकारास्थलविशेषाश्च निवर्त्तन्ते । अतोऽग्निस्थापनोत्तर-

मेव प्रणयनम्। यत्तु पारिजाते मध्यकुण्डात्प्रणयनमुक्तं तन्न प्रागुदगपवर्गप्रचारबाधात् । तेन तत्संरक्षणार्थं नैऋत्यकुण्डादेव प्रणयनं कार्य्यम् । अस्तु वा कथञ्चिदयुतहोमे मध्यकुण्डसद्भावात्तस्य च सर्वप्रधानभूतसूर्यदेवत्यत्वात्कथञ्चित्ततः प्रणयनं शतमुखे तु मध्ये कुण्डनिवेशाभावान्न ततोऽग्निप्रणयनं मध्यस्थलसमीपवर्त्तिष्वनेककुण्डेषु तु विनिगमनाविरहः । सर्वोऽप्ययं कोटिहोमविचारस्तातचरणैर्द्वैतनिर्णये सुविवृत इति नेह विस्तरः ॥

अथ प्रायो मात्स्यानुसारिणीं भट्टकृतां पद्धतिमनुस्मृत्य

## ग्रहमखप्रयोगः ।

कर्ता प्रारम्भदिनात्पूर्वं सुदिने दानमयूखीयास्मदुक्तप्रकाराणामन्यतमप्रकारेण प्राचीं संसाध्य तत्र वितस्त्युच्छ्रायं मण्डपनिवेशयोग्यं चतुरस्रं चत्वरं कृत्वा पूर्वाह्णे देशकालौ स्मृत्वाऽमुककर्म कर्तुं मण्डपं करिष्य इति संकल्प्य गणेशं कूर्मं शेषं वासुकिं द्विजांश्च सम्पूज्य—

आगच्छ सर्वकल्याणि वसुधे लोकधारिणि ।
उद्धृतासि वराहेण सशैलवनकानना ॥ १ ॥
मण्डपं कारयाम्यद्य त्वदूर्ध्वं शुभलक्षणम् ।
गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं प्रसन्ना शुभदा भव ॥ २ ॥

इति वसुधाया अर्घ्यं दत्वा स्योना पृथिवीति तां प्रार्थ्य मण्डपं तदुत्तरीच्यां मध्ये वा कुण्डं वेदिं च कुर्यात् । मण्डपश्चायुतहोमेष्टहस्तो दशहस्तो वा कुण्डं हस्तमितं चतुरंगुलैकमेखलं वेदीमण्डपोत्तरभागे हस्तविस्तृता वितस्त्युच्छ्रिता वप्रत्रयवती कार्या। तत्र प्रथमो वप्रस्त्र्यंगुलोच्छ्रायः । तदुपरितनौ प्रत्येकं द्व्यङ्गुलोच्छ्रितौ । विस्तारस्तु सर्वेषामपि प्रत्येकं त्र्यंगुलः । लक्षहोमे तु मण्डपो द्वादश चतुर्दशषोडशहस्तोऽपि कुण्डं क्षेत्रफलतश्चतुःकरम् । तदेव व्यासतो द्विकरम् । द्वित्रिचतुरंगुलोच्चत्रिमेखलम् । तत्रोपरितनी चतुरंगुलविस्तारा अधोगते द्वे अपि प्रत्येकं द्व्यंगुलविस्तारे । कुण्डादीशान्यां सार्द्धहस्तविस्तृता तदर्द्धोच्छ्रितेशानप्रवणा पूर्वपवित्रवप्रा वेदी ॥

कोटिहोम तु शततदर्द्धतदर्द्धषोडशान्यतमहस्तो मण्डपः कुण्डं तु अष्टहस्तं दशहस्तं षोडशहस्तं वा फलतः। तच्च व्याससमन्वातं मण्डपमध्ये तस्य दक्षिणपश्चिमयोर्योनिद्वयम्। वेदी च प्राच्यां द्विहस्तविस्तृतेति विशेषः। द्विमुखदशमुखशतमुखेषु तु निर्णयावसरे सन्निवेश उक्तः कर्ता सुदिने मासपक्षादि संकीर्त्य श्रीकामादिर्ग्रहपीडानिवारणकामो वाऽयुतहोमं लक्षहोमं वा करिष्य इति संकल्प्य। गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृपूजा—( वसोर्द्धारा आयुष्यमंत्रजप- ) वृद्धिश्राद्धाचार्यादिवरणानि कुर्यात्। तत्रायुतहोमे चत्वार ऋत्विजो द्वौ वा। लक्षहोमे द्वादशाष्टौ चत्वारो वा। कोटिहोमेऽष्टौ होमार्थं चत्वारो द्वारजापका इति द्वादश। अयुतलक्षकोटिहोमेषु त्रिष्वपि षोडश वा। ब्रह्माचार्यावप्येतन्मध्य एव सर्वत्र।

वरणमन्त्रास्तु—

आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत॥ १॥
यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा स्वर्गलोके पितामहः।
तथाऽस्मिन्मम यज्ञे त्वं ब्रह्मा भव द्विजोत्तम॥ २॥
अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया।
सुप्रसन्नाः प्रकुर्वन्तु शान्तिकं विधिपूर्वकम्॥ ३॥

## ( कोटिहोमे तु गुरुप्रार्थना )

त्वं मे यतः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणम्।
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे! सर्वं मे स्यान्मनोगतम्॥ ४॥
आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम्।
कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकमिति॥ ५॥

ततः सर्वानाचार्यादीन् स्वशाखीयानामृत्विक्शाखीयानां च पदार्थानामनुसमयेन मधुपर्केण संपूज्य शुक्लमाल्याम्बरानुलेपनः सपत्नीक ऋत्विक्सहितो भद्रं कर्णेभिरिति वेदघोषेण मण्डपं प्रदक्षिणीकृत्य पश्चिमद्वारेण प्रविशेत्। तत आचार्यो—

यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा ।
स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु ॥ १ ॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥ २ ॥

इति सर्षपान्विकीर्य शुची वो हव्येति एतोन्विन्द्रमिति च तृचाभ्यां आपो हि ष्ठेत्यादिभिश्च भुवं प्रोक्ष्य स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमिति ऋग्द्वयं पठेत् । ततो मण्डपनिऋतिभागे हस्तमितां वेदिं कृत्वा तस्यां वस्त्रं प्रसार्य्य तत्र सुवर्णादिशलाकया नव रेखाः प्राक्पश्चिमायता नव च दक्षिणोत्तरायताः कृत्वा मध्यकोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य प्रतिकोणं त्रिषु पदेषु सूत्रं दद्यात् । तथा चतुर्विंशतिरर्द्धपदानि सम्पद्यन्ते । मण्डलस्याग्नेयादिषु कोणेषु शंकुचतुष्टयं निखनेयुः ।

तत्र मन्त्रः—

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः ।
मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा ॥

इति मन्त्रेण निखाय ॥ १ ॥

ततो बलिदानम्—

अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः ।
तेभ्यो बलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥ १ ॥
नैर्ऋत्याधिपतिश्चैव नैर्ऋत्यां ये च राक्षसाः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि सर्वे गृह्णन्तु मन्त्रितम् ॥ २ ॥
ॐ नमो वायुरक्षोभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम् ॥ ३ ॥
रुद्रेभ्यश्चैव सर्पेभ्यो ये चान्ये तान्समाश्रिताः ।
बलिं तेभ्यः प्रयच्छामि गृह्णन्तु सततोत्सुकाः ॥ ४ ॥

इति मन्त्रैः शंकुपार्श्वेषु यथाक्रमं प्रतिमन्त्रं माषभक्तबलीन्दत्वा । शान्तिर्यशोवती कान्तिर्विशाला प्रणवाहिनी सती सुमना नंदा सुभद्रा

इति नव प्रागायतरेखादेवताःपूजयित्वा हिरण्या सुप्रभा लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला प्रिया जया काला विशोका इति नवदक्षिणोत्तरायतरेखादेवताश्च सम्पूज्य । मध्ये व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्वास्तुपुरुषमावाह्य वास्तोष्पते प्रतीति सम्पूज्य । बलिं च दत्वा मध्यपदचतुष्टये वास्तोर्हृदये ब्रह्माणमावाह्य पूजयित्वा ॐ ब्रह्मणे नमो बलिं समर्पयामीति पायसबलिं दद्यात् ॥ १ ॥

ततः पूर्वपदद्वये दक्षिणस्तनेऽर्यम्णे नमः ॥ २ ॥
दक्षिणपदद्वये जठरदक्षिणभागे विवस्वते नमः॥ ३ ॥
पश्चिमपदद्वये वामभागे मित्राय नमः ॥ ४ ॥
वामस्तने पृथिवीधराय नम इत्युदकपदद्वये ॥ ५ ॥
अग्निकोणसूत्रद्विधाकृतपदद्वयोत्तरार्द्धद्वये दक्षिणहस्ते
सावित्राय नमः ॥ ६ ॥
दक्षिणार्द्धद्वये सवित्रे च ॥७॥
एवं नैऋत्यपदद्वयपूर्वार्द्धपदद्वये वृषणयोर्विबुधाधिपाय० ॥८॥
तत्पश्चिमार्द्धद्वये उरसि अद्भ्यः० ॥९॥
दक्षिणार्द्धद्वये मुखे आपवत्साय० ॥१०॥
ततोऽन्त्यपंक्तिगते ईशानपददक्षिणार्द्धे शिरसि शिखिने० ॥११॥
तद्दक्षिणबाहौ सूर्याय० ॥१२॥
तद्दक्षिणयोर्दक्षिणबाहावेव सत्याय० ॥१३॥

---

केषांमते एवं क्रमः—मध्यपदचतुष्टये वास्तोर्हृदये ब्रह्मणे० ॥१॥ तत्पूर्वपदद्वये दक्षिणस्तने अर्यम्णे० ॥२॥ तद्दक्षिणपदद्वये जठरदक्षिणभागे विवस्वते० ॥३॥ पश्चिमपदद्वये वामभागे मित्राय० ॥४॥ उदक्पदद्वये वामस्तने पृथिवीधराय० ॥५॥ अग्निकोणसूत्रद्विधाकृतपदद्वयोत्तरार्द्धे दक्षिणहस्ते सावित्राय० ॥६॥ तद्दक्षिणार्द्धे पदे सवित्रे० ॥७॥ एवं नैऋत्यपदद्वये पूर्वार्द्धे द्वये वृषणयोर्विबुधाधिपाय० ॥८॥ तत्पश्चिमार्द्धे जयन्ताय० ॥९॥ वायव्यपददक्षिणार्द्धे वामहस्ते राजयक्ष्मणे ॥१०॥ उत्तरार्द्धे रुद्राय० ॥११॥ ईशानपदोत्तरार्द्धे उरसि अद्भ्यः० ॥१२॥ दक्षिणार्द्धे मुखे आपवत्सायै० ॥१३॥ ततोऽन्त्यपंक्तिगते ईशानपददक्षि-

तद्दक्षिणे स्यार्द्धे दक्षिणकूर्परे भृशाय० ॥१४॥
तद्दक्षिणप्रवाहौ आकाशाय० ॥१५॥
तत्पश्चिमार्द्धे दक्षिणप्रवाहावेव वायवे० ॥१६॥
तत्पश्चिमद्वये दक्षिणोरौ यमाय० ॥१७॥
तत्पश्चिमयोर्दक्षिणजानौ गन्धर्वाय० ॥१८॥
तत्पश्चिमे सार्द्धे पदे दक्षिणजङ्घायां भृङ्गराजाय०॥१९॥
तत्पश्चिमे नैऋत्यपदार्द्धे दक्षिणस्फिचि मृगाय० ॥२०॥
तदुत्तरार्द्धे पादयोः पितृभ्यः० ॥२१॥
तदुत्तरे सार्द्धपदे वामस्फिचि दौवारिकाय० ॥२२॥
तदुत्तरयोर्वामजङ्घायां सुग्रीवाय० ॥२३॥
तदुत्तरयोर्वामजानौ पुष्पदन्ताय० ॥२४॥
तदुत्तरयोर्वामोरौ वरुणाय० ॥२५॥
तदुत्तरयोर्वामपार्श्वे सुराय० ॥२६॥
तदुत्तरे सार्द्धे पदे वामपार्श्वे शेषाय० ॥२७॥
तदुत्तरे वाचव्यार्द्धे वाममणिबन्धे पापाय० ॥२८॥
तत्पागर्द्धे वामप्रवाहौ रोगाय० ॥ २९ ॥
तत्प्राक्-सार्द्धे वामप्रवाहावेव वाहवे० ॥ ३० ॥

---

णार्द्धे शिरसि शिखिने० ॥१४॥ तद्दक्षिणे सार्द्धपदे दक्षिणनेत्रे पर्ज्जन्याय०॥१५॥ तद्दक्षिणपदयोर्दक्षिणश्रोत्रे जयन्ताय० ॥१६॥ तद्दक्षिणपदयोर्दक्षिणांसे कुलिशायुधाय० ॥१७॥ तद्दक्षिणबाहौ सूर्याय० ॥१८॥ तद्दक्षिणयोर्दक्षिणबाहावेव सत्याय० ॥१९॥ तद्दक्षिणे सार्द्धे दक्षिणकूर्परे भृशाय० ॥२०॥ तद्दक्षिणाऽग्रेयपदार्धे दक्षिणप्रवाहौ आकाशाय० ॥२१॥ तत्पश्चिमार्द्धे दक्षिणप्रवाहौ वायवे०॥२२॥ तत्पश्चिमसार्द्धे मणिबन्धे पूष्णे०॥२३॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणपार्श्वे वितथाय०॥२४॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणपार्श्वे गृहक्षते० ॥२५॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणोरौ यमाय० ॥२६॥ तत्पश्चिमयोर्दक्षिणजानौ गन्धर्वाय० ॥२७॥ तत्पश्चिमे सार्द्धे पदे दक्षिणजंघायां भृङ्गराजाय० ॥२८॥ तत्पश्चिमे नैऋत्यपदार्द्धे दक्षिणस्फिचि मृगाय० ॥२९॥ तदुत्तरार्द्धे पादयोः पितृभ्यः० ॥३०॥ तदुत्तरे सार्द्धपदे वामस्फिचि दौवारिकाय०

तत्प्राक्द्वये वामकूर्परे मुख्याय० ॥ ३१ ॥
तत्प्राक्द्वये वामबाहौ भल्लाटाय० ॥ ३२ ॥
तत्प्राक्द्वये वामबाहावेव सोमाय० ॥ ३३ ॥
तत्प्राक्द्वये वामांसे सर्पाय० ॥ ३४ ॥
तत्प्राक्सार्द्धे वामश्रोत्रे अदित्यै० ॥ ३५ ॥
तत्प्रागर्द्धे वामनेत्रे दित्यै० ॥३६॥ इति षट्त्रिंशद्देवताः॥
तत उत्तरे वास्तोष्पत इति वास्तोष्पतये० ॥

ततो मण्डलाद्बहिरीशानादिषु चरक्यै० विदार्य्यै० पूतनायै० पापराक्षस्यै० ॥ ततः पूर्वादिषु स्कन्दाय अर्य्यम्णे जृम्भकाय पिलिपिच्छाय ॥ पुनः पूर्वादिषु इन्द्रादीन् । ततो मण्डलादीशाने कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणं तत्वायामीत्यावाह्य पूजयेत् ।

यथा मेरुगिरेः शृङ्गं देवानामालयः सदा ।
तथा ब्रह्मादिदेवानां मम यज्ञे स्थिरो भव॥१॥ इति प्रार्थयेत्॥

---

॥३१॥ तदुत्तरयोर्वामजङ्घायां सुग्रीवाय० ॥३२॥ तदुत्तरयोर्वामजानौ पुष्पदन्ताय० ॥३३॥ तदुत्तरयोर्वामोरौ वरुणाय० ॥३४॥ तदुत्तरयोर्वामपार्श्वे असुराय० ॥३५॥ तदुत्तरे सार्द्धपदे वामपार्श्वे शोषाय० ॥३६॥ तदुत्तरे वायव्यार्द्धे वाममणिबन्धे पापाय० ॥ ३७ ॥ तत्प्रागर्द्धे वामप्रबाहौ रोगाय० ॥ ३८ ॥ तत्प्राक्सार्द्धे वामप्रबाहावेव अहये० ॥ ३९ ॥ तत्प्राक्द्वये वामकूर्परे मुख्याय० ॥ ४० ॥ तत्प्राक्द्वये वामबाहौ भल्लाटाय० ॥ ४१ ॥ तत्प्राक्द्वये वामबाहावेव सोमाय० ॥४२॥ तत्प्राक्द्वये वामांसे सर्पाय० ॥ ४३ ॥ तत्प्राक्सार्द्धे वामश्रोत्रे अदित्यै० ॥४४॥ तत्प्रागर्द्धे वामनेत्रे दित्यै० ॥ ४५ ॥ तदुत्तरे वास्तोष्पति मण्डलाद्बहिरीशानादिषु कोणेषु पूर्ववच्चरक्यादि पूर्वादिषु स्कन्दादिषु नः पूर्वादिषु इन्द्रादीन् । तद्यथा । इन्द्राय० अग्नये० यमाय० निर्ऋतये० वरुणाय० वायवे० सोमाय० ईशानाय० ब्रह्मणे० अनन्ताय० वा अनन्ताय० ब्रह्मणे० इति प्रणवादि-चतुर्थ्यन्तनमोऽन्तनाममन्त्रेणाभ्यर्चनम् । बलिं दत्वैवमपरं देवमित्येवं सर्वान् सुरान् षोडशोपचारैरर्चयेत् । ततो मण्डलादीशाने विधिना कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणं तत्वायामीति आवाह्य वरुणाय नम इति सम्पूज्य प्रार्थयेत् । यथा मेरुगिरेः शृङ्गं देवानामालयः सदा । तथा ब्रह्मादिदेवानां मम यज्ञे स्थिरो भव ॥ इति ।

तत उदुम्बरादि—समित्तिलाज्यैः स्वतन्त्रस्थण्डिलेऽष्टाविंशतिरष्टौ वा प्रत्येकं तत्तन्नाममन्त्रैर्हुत्वा वास्तोष्पत इति चतुर्भिश्च हुत्वा ॐ वास्तोष्पतये इति मन्त्रेण पञ्चबिल्वफलानि हुत्वा स्विष्टकृदादिपूर्णाहुत्यन्तं कुर्यात् । ततो मण्डलदेवताभ्यः पायसबलिं दत्वा कृणुष्वपाज इति त्रिसूक्तादिना मंडपं त्रिसूत्र्या वेष्टयित्वा वास्तुकलशेन यजमानमभिषिच्य पुनः सम्पूज्य यथाशक्ति दक्षिणां दत्वा ब्राह्मणान्भोजयेदिति ।

शारदातिलके तु होमो नोक्तः । तिलाज्याविद्रव्याणां विकल्प इति ग्रन्थान्तरे । इति वास्तुपूजा ॥

मात्स्ये—उपोषितास्ततः सर्वे कृत्वैवमधिवासनमिति ।
पाद्मे—उपवासी भवेदेवमशक्तौ नक्तमिष्यत इति ।
सद्योऽधिवासनं चाथ कुर्याद्यो विकलो नर इति तत्रैवोक्तम् ॥

---

ततो वास्तुमण्डलात्पश्चिमदिशि स्वतन्त्रकुण्डे स्थण्डिले वा पञ्चभूसंस्कारपूर्वकमग्निं प्रतिष्ठाप्य ब्रह्मोपवेशनादि—आज्यभागान्तं कृत्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वकैः स्वाहान्तैस्तत्तन्मन्त्रैः औदुम्बरादि—समित्तिलाज्यैर्मण्डलदेवताभ्यः प्रत्येकमष्टाविंशतिमष्टौ वाऽऽहुतीर्हुत्वा वास्तोष्पत इति चतुर्भिर्मन्त्रैश्च वा हुत्वा ॐ वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणामिति मन्त्रेण पञ्चबिल्वफलानि तद्बीजानि वा हुत्वा इदं वास्तोष्पतयेति त्यजेत् । ततो महाव्याहृतिहोमादिस्विष्टकृद्धोमान्तं विधाय पूर्णाहुतिं जुहुयात् । सा यथा । अन्यदाज्यमाज्यस्थाल्यां निरूप्यावधिश्रित्य स्रुक्स्रुवौ कुशैः सम्मार्ज्य आज्यमुद्वास्य वस्पूय अवेक्ष्य पालास्यां स्रुचि स्रुवेणाज्यं द्वादशगृहीतं गृहीत्वा समिधमादाय दक्षिणे बाहौ यजमानेनान्वाऽरब्धः । सस ते अग्ने समिध इति पूर्णाहुतिं हुत्वा इदमग्नये न मम इति त्यागं विधाय संस्रवप्राशनादि तन्त्र विधाय समापयेत् । शारदातिलके तु होमो नोक्तः । तिलाज्याविद्रव्याणां विकल्प इति ग्रन्थान्तरे । ततो मण्डलदेवताभ्यः पायसबलिं दत्वा कृणुष्वपाज इति सूक्तादिना मण्डपं त्रिसूत्र्या वेष्टयित्वा वास्तुकलशेन यजमानमभिषिच्य पुनः सम्पूज्य यथाशक्तिदक्षिणां दत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत् । इति वास्तुपूजा समाप्ता ।

अथ मण्डपपूजा ॥ तत्राऽऽदौ मण्डपषोडशस्तम्भपूजनम् । मध्ये ईशानस्तम्भे ।
पुरोहि विप्रेन्द्र० ॥ १ ॥ हंसपृष्ठसमारूढ० ॥२॥ आवाहयाम्यहं देवं० ॥३॥ विश्वरूपं निराधारं० ॥४॥

अधिवासनं चैवं तत्र द्वारपूजा । पूर्वद्वारे द्वारश्रियै नमः । ऊर्ध्वे देहल्यै नमः अधः वामदक्षिणस्तम्भयोर्गणेशाय स्कन्दाय नमः । द्वारस्थितकलशद्वये गंगायै यमुनायै । दक्षिणद्वारे द्वारश्रियै नमः । ऊर्ध्वे देहल्यै अधः स्तम्भयोः पुष्पदन्ताय० कपर्दिने०कलशद्वये गोदावर्य्यै० कृष्णायै इति । पश्चिमे द्वारश्रियै० ऊर्ध्वे देहल्यै० अधः स्तम्भयोः नन्दिने चण्डाय नमः । कलशद्वये रेवायै० ताप्यै नमः । उत्तरे द्वारश्रियै० ऊर्ध्वे देहल्यै० अधः स्तम्भयोः महाकालाय नमः । भृङ्गिणे नमः । कलशद्वये वाण्यै० वेण्यै नमः । इति द्वारपूजा ॥

---

ॐ ब्रह्मयज्ञानं० ॐ भूः० ब्रह्मणे नमः इति गन्धादिभिः पूजयेत् । प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना—वेदाधाराय यज्ञाय० ॥१॥ कृष्णाजिनाम्बरधर० ॥२॥ इति प्रार्थना ।

ॐ सावित्र्यै नमः । वास्तुदेवतायै० । ब्राह्मयै० । गङ्गायै० । स्तम्भमालभ्य ।

ॐ ऊर्ध्वं ऊषुण इति जपः । स्तम्भशिरसि नागमात्रे नमः ।

ॐ आयं गौरिति शाखाबन्धनाद्यनुमन्त्रेण । यतो यतः इति मन्त्रजपः ॥१॥

एवं सर्वत्र स्तम्भमालभ्य ऊर्ध्वं उषुण इति जपादिकं कुर्यात् ।

अथाग्नेयस्तम्भे—आवाहये तं० ॥ १ ॥ पद्मनाभ हृषीकेश० ॥२॥ ॐ इदं विष्णु० ॐ भूः० विष्णवे नमः । इति गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना—नमस्ते पुण्डरीकाक्ष० ॥१॥ देवदेव जगन्नाथ० ॥२॥ इति सम्प्रार्थ्य ।

ॐ लक्ष्म्यै० । ॐ आदित्यायै० । ॐ वैष्णव्यै० । ॐ ऊर्ध्वं उषुण० स्तम्भालम्भादि पूर्ववत् ॥ २ ॥

अथ नैऋतिस्तम्भे०—एह्येहि गौरीश० ॥ १ ॥ गङ्गाधर महादेव० ॥ २ ॥

ॐ नमः शम्भवाय च० ॥ ३ ॥

ॐ भूः० शङ्कराय नमः । इति गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना—वृषवाहनदेवाय० ॥१॥ पञ्चवक्त्र वृषारूढ० ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥

ॐ गौर्यै नमः । ॐ माहेश्वर्यै० । ॐ शोभनायै० । ॐ ऊर्ध्वं उषुण० ॥

इति स्तम्भालम्भः ॥ ३ ॥

अथ वायव्यस्तम्भे—एह्येहि वृत्रघ्न० ॥ १ ॥ शचीपते महाबाहो० ॥ २ ॥

ॐ त्रातारमिन्द्रमविता० ॥

ॐ भूः० इन्द्राय नमः । गन्धादिभिः सम्पूज्य । प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना—पुरन्दर नमस्ते तु० ॥१॥ देवराज गजारूढ० ॥२॥ इति सम्प्रार्थ्य ।

ॐ इन्द्राण्यै० । ॐ आदन्तायै० । ॐ विभूत्यै० । ॐ ऊर्ध्वं उषुण० ॥

इति स्तम्भालम्भः ॥ ४ ॥

अथ तोरणपूजा—तत्र पूर्वे बहिर्हस्तमात्रे वटतोरणमाश्वत्थं वा सुदृढनामकं सुशोभननामकं वा शंखाङ्कितमग्निमीले इति मन्त्रेण न्यस्य सम्पूज्य राहुबृहस्पती तत्र न्यसेत् पूजयेच्च। तत्रैकः कलशः स्थाप्यः। तत्र मही द्यौरिति भूप्रार्थना। ओषधयः समिति यवप्रक्षेपः। आकलशेष्विति कलशनिधानं। इमं मे गङ्गा इति जलपूरणम्। गन्धद्वारामितिगन्धं प्रक्षिपेत्। या ओषधीरिति सर्वौषधीः। ओषधयः समिति

---

एवं मध्यस्थान् ईशानादिकोणस्थान् चतुरः स्तम्भानभ्यर्च्य पुनर्वाह्ये ईशानकोणादारभ्य द्वादशस्तम्भान्पूजयेत्।

तद्यथा—अथ वाह्येशानकोणे आवाहयेत्तं द्विभुजं दिनेशं०॥१॥पद्महस्तमहावाहो०।२।

ॐ आकृष्णेन०। ॐ भू० सूर्याय नमः। इति गन्धादिभिः सम्पूज्य। प्रार्थयेत्।

प्रार्थना—नमः सवित्रे०॥१॥ पद्महस्त रथारूढ०॥२॥ इति सम्प्रार्थ्य।

ॐ सूर्य्यै०। ॐ भूर्य्यै०। ॐ सावित्र्यै०। ॐ मङ्गलायै०। ॐ ऊर्ध्वं उषुण०। इति स्तम्भालम्भः॥५॥

ईशानपूर्वयोरन्तरालस्तम्भे—आवाहयेत्तं गणराजदेवं०॥१॥

लम्बोदरं महाकाय०॥ २॥

ॐ गणानान्त्वा०॥ ॐ भू० गणपतये०॥

इति गन्धादिभिः सम्पूज्य। प्रार्थयेत्।

प्रार्थना—नमस्ते ब्रह्मरूपाय०॥१॥ लम्बोदरमहाकायं०॥ २॥ इति संप्रार्थ्य॥

ॐ सरस्वत्यै०। ॐ विघ्नहरायै०।

ॐ ऊर्ध्वं उषुण०॥ इति स्तम्भालम्भः॥ ३॥

पूर्वाग्नेयोरन्तरालस्तम्भे—एह्येहि दण्डायुध०॥१॥

चित्रगुप्तादिसंयुक्त०॥ २॥ ॐ यमाय० त्वाङ्गिरस्वते०॥

ॐ भू० यमाय० नमः॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य॥ प्रार्थयेत्॥

प्रार्थना—ईषत्पीतनमस्तेऽस्तु०॥ १॥

धर्मराज महाकाय०॥ २॥ इति सम्प्रार्थ्य।

ॐ पूर्वसन्ध्यायै०॥ अक्षुन्यै०॥ क्रूरायै०॥

नियन्त्रै०॥ ॐ ऊर्ध्वं उषुण०॥ स्तम्भा०॥ ७॥

वाह्याग्नेयकोणस्तम्भे—एह्येहि नागेन्द्र०॥

आशीविष-समोपेत०॥ ॐ आयं गौ०॥ ॐ भू० नागराजाय०॥

यवान्। काण्डात्काण्डादिति दूर्वा। अश्वत्थेव इति पञ्चपल्लवान्। स्योनापृथिवीति पञ्चमृदः। याःफलिनीरिति फलम्। सहिरत्नानीति पञ्चरत्नानि। हिरण्यरूप इति हिरण्यम्। युवा सुवासा इति वस्त्रादिना वेष्टयेत्। पूर्णादर्वीरिति पूर्णपात्रमुपरि निदध्यात्। तत्र ध्रुवावाहनं पूजनं च। ततो दक्षिणे औदुम्बरं प्लाक्षं वा सुभद्रं विकटं वा चक्राङ्कितं तोरणमिषेत्वोर्ज्जेत्वेति निधाय। चन्दनादिचर्चितं कृत्वा सूर्यमङ्गारकं च तत्र न्यसेत्। ततः पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा तत्र धरामावाह्य पूजयेत्। ततः पश्चिमे प्लाक्षमौदुम्बरं वा सुकर्मसुभीमं

---

इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत्।

प्रार्थना— नमः खेटकहस्तेभ्य०॥ खड्गखेटधराः सर्वे०॥ इति सम्प्रार्थ्य॥
ॐ मध्यमसन्ध्यायै०॥ ॐ धरायै०॥ ॐ पद्मायै०॥ ॐ महापद्मायै०॥ ॐ ऊर्ध्व ऊषुण० स्तम्भा०॥८॥

अथाग्नेयदक्षिणयोरन्तराले॥ आवाहयामि देवेशं०॥१॥ मयूरवाहनं शक्ति०॥२॥ ॐ यदकन्दः प्रथमं०॥
ॐ भू० स्कन्दाय नमः इति गन्धादिभिः सम्पूज्य॥ प्रार्थयेत्॥

प्रार्थना—नमः स्कन्दाय शैवाय०॥ मयूरवाहनस्कन्द०॥ इति सम्प्रार्थ्य॥
ॐ पश्चिमसन्ध्यायै नमः॥ ऊर्ध्व ऊषुण० इति स्तम्भालम्भः॥९॥

अथ दक्षिणनैऋत्यान्तरालस्तम्भे॥ आवाहयामि देवेशं०॥१॥ खड्गहस्तमहावेगं०॥२॥ ॐ वायो येते०॥
ॐ भू० वायवे नमः॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत्॥

प्रार्थना—नमो धरणिपृष्ठस्थ०॥ धावन्धरणिपृष्ठस्थ०॥ इति सम्प्रार्थ्य॥
ॐवायव्यै०॥ ॐगाङ्गायै०॥ ॐगायत्र्यै०॥ ॐमध्यमसन्ध्यायै०॥
ॐ ऊर्ध्व ऊषुण०॥१०॥

अथ नैऋत्यस्तम्भे—आवाहयामि देवेशं०॥१॥ सुधाकरं द्विजाधीशं०॥२॥
ॐ आप्यायस्व०॥
ॐ भू० सोमाय नमः॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य॥ प्रार्थयेत्॥

प्रार्थना—अत्रिपुत्र नमस्तेऽस्तु०॥ अत्रिपुत्र निशानाथ०॥ इति सम्प्रार्थ्य॥
ॐ सावित्र्यै०॥ ॐ अमृतकलायै०॥ ॐ विजयायै०॥ ॐ पश्चिमसन्ध्यायै०॥
ॐ ऊर्ध्व ऊषुण०॥ इति स्तम्भालम्भनम्॥११॥

वा गदाङ्कितं तोरणमग्न आयाहीति न्यस्य सम्पूज्य चन्दनादिचर्चितं कृत्वा शुक्रं बुधं च तत्र न्यसेत् । ततः पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा तत्र वाक्पत्यावाहनपूजनादि । तत उत्तरे न्यग्रोधमाश्वत्थं पालाशं वा सुहोत्रं सुप्रभं वा पद्माङ्कितं तोरणं शन्नो देवीरिति निधाय पूजितं कृत्वा सोमं केतुं शनिं च तत्र न्यसेत् । ततः कलशं स्थापयित्वा तत्र विघ्नेशावाहनपूजनादि । ततः पूर्वद्वारशाखाद्वये कलशद्वयं दध्यक्षतादियुक्तं पूर्ववत्स्थापयेत् । ऐरावतं कलशद्वये न्यस्यार्चयेत् । तत्र पूर्वस्मिन् ऋग्वेदिनावृत्विजौ द्वौ एकं वा शान्तिसूक्तजपार्थत्वेन त्वामहं वृणे इति प्रत्येकमृग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्रः सोमदैवतः ।

---

अथ नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्यस्तम्भे—आवाहयामि देवेशं० ॥१॥ गम्भीरथसमारूढं० ॥२॥ ॐ इमं मे वरुण० ॥ ॐ भू० वरुणाय नमः ॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना—वरुणाय नमस्तेऽस्तु० । नमः स्फटिकवर्णाभ० ॥२॥ इति सम्प्रार्थ्य । ॐ वारुण्यै० । ॐ पाशधारिण्यै० । ॐ वृहत्यै० । ॐ ऊर्ध्व ऊषुण० इति स्तम्भालम्भः ॥ १२ ॥

अथ पश्चिमवायव्यान्तरालस्तम्भे—आवाहयामि देवेशान्० ॥१॥ शुद्धस्फटिक० ॥२॥ ॐ वसोः पवित्र० ॥ ॐ भू० अष्टवसुभ्यो नमः ॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।

प्रार्थना—नमस्करोमि देवेशान्० । दिव्यवस्त्रा दिव्यदेहा० ॥ इति सम्प्रार्थ्य ॥ ॐ विनतायै० ॥ ॐ अणिमायै० ॥ ॐ भूत्यै० ॥ ॐ गरिमायै० ॥ ॐ ऊर्ध्व ऊषुण० ॥ इति स्तम्भालम्भः ॥ १३ ॥

अथ वायव्यस्तम्भे—आवाहयामि देवेशं० ॥१॥ दिव्यमालाम्बरधरं० ॥२॥ ॐ सोमो धेनुं० ॥ ॐ भू० धनदाय नमः ॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ॥

प्रार्थना—यक्षराज नमस्तेऽस्तु० ॥ दिव्यदेहधराध्यक्ष० । इति सम्प्रार्थ्य । ॐ लघिमायै० ॥ ॐ सिनीवाल्यै० ॥ ॐ ऊर्ध्व ऊषुण० ॥ इति स्तम्भालम्भः ॥ १४ ॥

अथोत्तरवायव्यान्तरालस्तम्भे—आवाहयामि देवेशं० ॥१॥ शङ्खं च कलशं चैव० ॥२॥ ॐ वृहस्पतेऽअति० ॥ ॐ भू० गुरवे नमः ॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य प्रार्थयेत् ।

अत्रिगोत्रस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भवेति वृत्वाऽग्निमील इति पूजयेत्।

एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ।
संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते ॥

भो इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठेतीन्द्रं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकं द्वारकलशे आवाह्य त्रातारमिन्द्रमिति पूजयित्वाऽऽशुः शिशान इति पताकां पीतं ध्वजं चोच्छ्रयेत्। तत ऐरावतस्थं पीतवर्णं सहस्राक्षं दक्षिणवामहस्तस्थवज्रोत्पलमिन्द्रं ध्यात्वा।

इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः।
शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥

इति नत्वा इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात्। तत आचम्याऽऽग्नेयकोणे पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा तत्र पुण्डरीकममृतं च सम्पूज्य—

एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवर्य्यैरभितोभिजुष्ट ।
तेजोवता लोकगणेन सार्द्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते॥

भो अग्ने इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिकमग्निं कलशे आवाह्य त्वन्नो अग्नेत्यग्निं सम्पूज्याग्निं दूतमिति रक्तां पताकां रक्तं ध्वजं चोच्छ्रयेत्। तत छागस्थं रक्तं दक्षिणवामकरधृतशक्तिकमण्डलुं यज्ञोपवीतिनं अग्निं ध्यात्वा—

---

प्रार्थना—ब्रह्मन्नमस्तेऽस्तु०। पूजितोऽसि यथाशक्त्या०॥ इति सम्प्रार्थ्य॥ ॐ पूर्णिमायै नमः॥ ॐ सावित्र्यै नमः। ॐ ऊर्ध्वं ऊषुण०। इति स्तम्भालम्भ०॥ १५॥

अथोत्तरेशान्यान्तरालस्तम्भे—आवाहयामि देवेशं० ॥१॥ त्रैलोक्यसूत्रकर्तारं० ॥२॥ ॐ विश्वकर्मन् हविषा०॥ ॐ भू० विश्वकर्मण०॥ इति गन्धादिभिः सम्पूज्य। प्रार्थयेत्।

प्रार्थना—नमामि विश्वकर्माणं०॥ प्रसीद विश्वकर्मस्त्वं०॥ इति सम्प्रार्थ्य। ॐसिनीवाल्यै०॥ ॐवास्तुदेवतायै०॥ ॐसावित्र्यै०॥ ॐऊर्ध्वं ऊषुण०॥ स्तम्भा०॥ इति स्तम्भपूजा॥ १६॥

आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयोऽव्ययः।
धूम्रकेतु रजोध्यक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः॥ इति नत्वा।

अग्नये साङ्गाय० एतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात्। ततः कृताचमनो दक्षिणे गत्वा। प्रतिद्वारशाखं पूर्ववत्कलशद्वयं स्थापयित्वा वामनं दिग्गजं तत्रार्चयेत्। ततो यजुर्वेदिनो द्वावेकं वा दक्षिणद्वारे शान्तिसूक्तजपार्थत्वेन त्वामहं वृण इत्युक्त्वा—

कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णुदैवतः।
काश्यपेयस्तु विप्रेन्द्र ऋत्विक् त्वं मे मखे भव॥

इति प्रत्येकं सम्प्रार्थ्य इषे त्वोर्ज्जे त्वेति पूजयेत्—

ततः—एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चित धर्ममूर्ते।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते॥

भो यम इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गादिं यममावाह्य यमाय सोममिति सम्पूज्य कृष्णां पताकां कृष्णं ध्वजं चायं गौरित्युच्छ्रयेत्। ततो महिषारूढं धृतदण्डपाशं दक्षिणवामकरमञ्जनपर्वततुल्यरूपमग्निसमलोचनं यमं ध्यात्वा—

महामहिषमारूढं दण्डहस्तं महाबलम्।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥ इति नत्वा।

साङ्गाय यमायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात्। तत आचम्य नैऋत्यां पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा कुमुदगजं तुर्ज्जयं च सम्पूज्य—

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः।
ममाध्वरं पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते॥

भो निऋते इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गमावाह्यासुन्वन्तमिति सम्पूज्य नीलां पताकां नीलध्वजं च मोषुणमन्त्रेणेति उच्छ्रयेत्। ततो नरारूढं खड्गहस्तं नीलवर्णं महाबलं महाकायं बहुराक्षसंयुतं निऋतिं ध्यात्वा—

निर्ऋतिं खड्गहस्तं च सर्वलोकैकपावनम्।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥ इति नत्वा।

साङ्गाय निर्ऋतये एतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात्। तत आचम्य पश्चिमे गत्वा प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं निधायाञ्जनदिग्गजं न्यस्यार्चयेत्। ततः सामगावृत्विजावृत्विजं वा वृत्वा।

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जागतः शक्रदैवतः।
भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र! शान्तिपाठं मखे कुरु॥ इति प्रार्थ्य।

अग्न आयाहीति पूजयित्वा।

ततः—एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान प्राहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते॥

इत्युक्त्वा भो वरुणेहागच्छेह तिष्ठेति वरुणमावाह्य तत्वायामीति सम्पूज्य श्वेतां पताकां श्वेतां ध्वजं चेमं मे वरुणेत्युच्छ्रित्य मकरस्थं पाशहस्तं किरीटिनं श्वेतवर्णं वरुणं ध्यात्वा।

पाशहस्तं च वरुणमर्णसां पतिमीश्वरम्।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्वरुणाय नमो नमः॥ इति नत्वा।

साङ्गाय वरुणायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात्। ततोपस्पृश्य वायव्यां पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा पुष्पदन्तं सिद्धार्थं च तत्र पूजयित्वा॥

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सह सिद्धसङ्घैः।
प्राणाधिपः कालकवेः सहाय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥

भो वायो इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गं वायुमावाह्य तव वायवृतस्य त इति सम्पूज्य वायो शतमिति धूम्रां पताकां धूम्रध्वजं चोच्छ्रित्य मृगारूढं चित्राम्बरधरं युवानं वरध्वजधरं दक्षिणवामहस्तं वायुं ध्यात्वा॥

वायुमाकाशगं चैव पवनं वेगवद्गतिम्।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥

अनाकारो महौजाश्च यश्चादृष्टगतिर्दिवि ।
तस्मै पूज्याय जगतो वायवेऽहं नमामि ते ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय वायवे एतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात् । तत आचम्योत्तरे गत्वा प्रतिद्वारशाखं कलशद्वयं स्थापयित्वा सार्वभौमं दिग्गजं न्यस्य पूजयित्वाऽथर्वविदावृत्विजावुत्तरद्वारे शान्तिसूक्तजपार्थत्वेनाऽहं वृण इत्युक्त्वा ।

बृहन्नेत्रोऽथर्ववेदोऽनुष्टुभो रुद्रदैवतः ।
वैशम्पायन विप्रेन्द्र शान्तिपाठं मखे कुरु ॥ इति प्रार्थ्य ।

शन्नो देवीरिति पूजयेत् ।

एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्द्धम् ।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

भो सोम इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गं सोममावाह्य वयं सोमेति सम्पूज्य हरितां पताकां हरितध्वजं चाप्यायस्वेति न्यस्य । नरपुष्पकविमानस्थं कुण्डलहारकेयूरसंशोभितं वरदगदाधरदक्षिणवामहस्तं मुकुटिनं महोदरं स्थूलकायं ह्रस्वं पिङ्गलनेत्रं पीतविग्रहं शवसखायं सोमं ध्यात्वा ।

सर्वनक्षत्रमध्ये तु सोमो राजा व्यवस्थितः ।
तस्मै सोमाय देवाय नक्षत्रपतये नमः ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय सोमायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात् । तत ईशान्यां गत्वाऽऽचम्य पूर्ववत्कलशं स्थापयित्वा सुप्रतीकनामानं दिग्गजं मङ्गलं च तत्र पूजयित्वा ।

एह्येहि विश्वेश्वर नन्त्रिशूलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्द्धम् ।
लोकेन यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

ईशानेहागच्छेह तिष्ठेति तमावाह्य तमीशानमिति सम्पूज्य श्वेतां सर्ववर्णां वा पताकां ध्वजं चाभित्वा देवसवितरित्युच्छ्रित्य । वृषारूढं वरदत्रिशूलयुतदक्षिणवामहस्तद्वयं त्रिनेत्रं स्फटिकवर्णमीशानं ध्यात्वा—

वृषस्कन्धसमारूढं शूलहस्तं त्रिलोचनम् ।
आवाहयामि यज्ञेऽस्मिन्पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥
सर्वाधिपो महादेव ईशानः शुक्र ईश्वरः ।
शूलपाणिर्विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नत्वा—

साङ्गायेशानायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात् । तत आचम्य ईशानपूर्वयोर्मध्ये गत्वा पूर्ववत्कलशं संस्थाप्य अनन्तं पूजयेत् ।

एह्येहि पातालधरामरेन्द्रनागाङ्गनाकिन्नरगीयमान ।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसङ्घैरनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥

भो अनन्त इहागच्छेह तिष्ठेति साङ्गमनन्तमावाह्याथं गौरितिस्योना सम्पूज्य पृथिवीति मेघवर्णां श्वेतां वा पताकां ध्वजं चायं गौरित्युच्छ्रित्य । अनन्तशयनासीनं फणासप्तकमण्डितं । पद्मशङ्खधरोर्ध्वाधोदक्षिणकरद्वयं चक्रगदाधरोर्ध्वाधो वामकरद्वयं नीलवर्णमनन्तं ध्यात्वा—

योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम् ।
पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नत्वा—

साङ्गाय सपरिवारायानन्तायैतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात् । तत आचम्य । रूपनारायणमते तु नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये गत्वा पूर्ववत्कलशस्थापनं कृत्वा ।

एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्द्धं पितृदेवताभिः ।
सर्वस्य धाताऽस्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय ॥

भो ब्रह्मन्निहागच्छेह तिष्ठेति ब्रह्माणमावाह्य ब्रह्मजज्ञानमिति सम्पूज्य । रक्तां पताकां ध्वजं च ब्रह्मजज्ञानमित्युच्छ्रित्य । चतुर्मुखं हंसारूढमक्षमालाकुशमुष्टिधरोर्ध्वाधो दक्षिणकरद्वयं स्रुवकमण्डलुधरोर्ध्वाधोवामकरद्वयं श्मश्रुलं जटिलं लम्बोदरं रक्तवर्णं ब्रह्माणं ध्यात्वा—

पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदावासः पितामहः ।
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति नत्वा ।

साङ्गाय सपरिवाराय ब्रह्मणे एतं माषभक्तबलिं समर्पयामीति बलिं दद्यात् । रूपनारायणमते नैर्ऋत्यपश्चिमान्तरालेऽनन्तबलिदानमीशानपूर्वान्तराले ब्रह्मपूजाबलिदानं चेति । तत आचम्य मण्डपमध्येऽत्युच्चदण्डो दशहस्तदीर्घस्त्रिहस्तविस्तृतः पञ्चहस्तविस्तारो वा महाध्वजः किङ्किण्यादियुक्तस्स इन्द्रस्य वृक्ष इति स्थाप्यः । तत्रैव ब्रह्मपूजनं च । ततो मण्डपषोडशस्तम्भेषु सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । वंशेषु किन्नरेभ्यो नमः । पृष्ठे पन्नगेभ्यो नम इत्यर्चयेत् । ततः पूर्वभागे उपलिप्तभूमावुपविश्य—

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥१॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ।
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥२॥
सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च क्षेत्रपालगणैः सह ॥३॥
रक्षन्तु मण्डपं सर्वे घ्नन्तु रक्षांसि सर्वतः । इति पठित्वा ।

त्रैलोक्यस्थेभ्यः स्थावरेभ्यो भूतेभ्यो नमस्त्रैलोक्यस्थेभ्यश्चरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । ब्रह्मणे विष्णवे शिवाय देवेभ्यो दानवेभ्यो गन्धर्वेभ्यो राक्षसेभ्यः पन्नगेभ्य ऋषिभ्यो मनुष्येभ्यो गोभ्यो देवमातृभ्यो नमः । इति प्रत्येकं सम्पूज्य भूमौ माषभक्तबलिं दद्यात् । ततो यजमानः सर्वैर्ऋत्विभिः सह प्राग्द्वारेण मण्डपं प्रविश्य दक्षिणद्वारपश्चिमदेशे उपविश्य गुर्वादयो यथाविहितं कर्म कुरुध्वमिति वदेत् । प्रतिकुण्डमेकैकः कलश ऋत्विग्भिः स्थाप्य इति केचित् । गुरुणा स्थाप्य इत्यन्ये । ततो ऋग्वेदादिक्रमात्प्रागादिकुण्डेषु ऋत्विजोऽग्निं स्थापयेयुः । ततो गुरुर्यजमानान्वितो ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्रे मण्डलदेवताः स्थापयेदिति पितामहचरणाः ।

यथा—अद्येहेत्यादि मण्डलदेवतास्थापनं करिष्य इति सङ्कल्प्य स्थापयेत् ॥ तत्र मध्ये ब्रह्माणं ॥ ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् स्थापने पूजने च विनियोगः ॥ एवमुत्तरत्र ॥ ॐ ब्रह्म यज्ञानं॥१॥ तत उदीचीमारभ्य वायव्यपर्यन्तं कुवेरादान्वाय्वन्तानष्टौ लोकपालान् तत्राप्यायस्व गौतमः सोमो गायत्री ॥ ॐ आप्यायस्व० ॥ २ ॥ अभित्वाजीर्गतः शुनःशेप ईशानो गायत्री० ॥ ॐ अभित्वा देवसवितः ॥ ३ ॥ इन्द्रं वो मधुछन्दो इन्द्रो गायत्री० ॥ ॐ इन्द्रो वो पश्यत ॥४॥ अग्निं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री० ॥ ॐ अग्निं दूतं वृणीमहे०॥५॥ यमाय सोमं यमो यमोऽनुष्टुप् ॥ ॐ यमाय सोमं० ॥ ६ ॥ मोषुणो घोरः कण्वो निऋतिर्गायत्री० ॥ ॐ मोषुणः ॥ ७ ॥ तत्त्वायामि शुनःशेपो वरुणस्त्रिष्टुप् ॥ ॐ तत्त्वायामि० ॥ ८ ॥ वायो शतं गौतमो वामदेवो वायुरनुष्टुप् ॥ ॐ वायो शतं० ॥ ९ ॥ वायुसोममध्येऽष्टौ

---

पूर्वमग्निस्थापनं तत्पश्चादत्र सर्वतोभद्रस्थापनम्। तदनन्तरमग्निस्थापनमिति क्रमः। यजुर्विदानां तु सर्वतोभद्रस्थापनम् ॥ ततो ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्रमण्डलं विलिख्य यजमानान्वितो आचार्यो ग्रहवेद्यां सर्वतोभद्रमण्डले देवताः स्थापयेत्। तद्यथा ॥ ब्रह्मयज्ञानमिति प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ ब्रह्मयज्ञानं० कर्णिकायां ब्रह्माणम् ॥१॥ वयठं सोमेत्यस्य बंधूक ऋषिर्गायत्री छन्दः सोमो देवता सोमस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वयठं सोमेति उत्तरे वाप्यां ॥२॥ तमीशानमित्यस्य गौतम ऋषिः जगती छन्दः ईशानो देवता ईशानस्थापने विनि०॥ ॐ तमीशानं० ईशान्यां खण्डेन्द्रौ ईशानं ॥३॥ त्रातारमिन्द्रमित्यस्य गर्ग ऋषि त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ त्रातारमिन्द्र० पूर्वे वाप्यां इन्द्रं० ॥ ४ ॥ त्वन्नो ऽअग्ने तव देवेत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः जगती छन्दः अग्निर्देवता अग्निस्थापने विनियोगः ॥ ॐ त्वन्नो ऽअग्ने तव० आग्नेयां खण्डेन्द्रौ अग्निं० ॥ ५ ॥ सुगन्नु पन्थामित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दो यमो देवता यमस्थापने विनियोगः ॥ ॐ सुगन्नु पन्था० दक्षिणे वाप्यां यमं० ॥ ६ ॥ असुन्वन्तम इत्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः निऋतिदेवता निऋतिस्थापने विनियोगः। ॐ असुन्वन्तम० नैऋत्यां खण्डेन्द्रौ निऋतिं० ॥ ७ ॥ तत्त्वायामीत्यस्य शुनःशेप ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः वरुणो देवता वरुणस्थापने विनियोगः ॥ ॐ तत्त्वायामि० पश्चिमे वाप्यां वरुणं० ॥ ८ ॥ आनो नियुद्भिरित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः वायुर्देवता वायुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ आनो नियुद्भिः वायव्यां खण्डेन्द्रौ वायुं० ॥ ९ ॥ वसोः पवित्रमसीत्यस्य

वसून् ज्मया अत्र मैत्रावरुणो वशिष्ठो वसवस्त्रिष्टुप् ॥ ॐ ज्मया अत्र० ॥ १० ॥ सोमेशानमध्ये एकादशरुद्रान् ॥ आरुद्रासः श्यावाश्व एकादशरुद्रा जगती० ॥ ॐ आ रुद्रा सः ॥ ११ ॥ ईशानेन्द्रमध्ये द्वादशादित्यान् ॥ त्यान्नुसां मदोमत्स्यो द्वादशादित्या गायत्री ॥ ॐ त्यान्नु क्षत्रियान् ॥ १२ ॥ इन्द्राग्निमध्येश्विना राहुगणो गौतमोश्विनावुष्णिक् ॥ ॐ अश्विनावर्त्तिः ॥ १३ ॥ अग्नियममध्ये विश्वेदेवान्सपितॄन् । ओमासोमभुछन्दांसि विश्वेदेवा गायत्री ॐ मासः ॥ १४ ॥ यमनिऋतिमध्ये सप्त यक्षान् । अभित्यं वामदेवः सप्त यक्षाः प्रकृतिः । अभित्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधाममिप्रियं मतिं कविम् । ऊर्ध्वा यस्या मतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥ १५ ॥ निऋतिवरुणयोर्मध्ये भूतनगान् ॥ आयं गौः सार्पराज्ञी सर्पा गायत्री । ॐ आयं गौः ॥ १६ ॥ वरुणवायुमध्ये गन्धर्वाप्सरसः । अप्सरसामैतस ऋष्यशृङ्गो गन्धर्वाप्सरसोऽनुष्टुप् । ॐ अप्सरसां गन्धर्वा-

---

गौतम ऋषिः जगती छन्दः वसवो देवता वसुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वसोः पवित्र० वायुसोमयोर्मध्ये भद्रे अष्टवसून् ॥ १० ॥ नमस्ते रुद्र इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः गायत्रीछन्दः रुद्रो देवता रुद्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ नमस्ते रुद्र० सोमेशानयोर्मध्ये भद्रे एकादशरुद्रान् ॥ ११ ॥ अदितिर्द्यौरित्यस्य प्रजापति ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः आदित्या देवता द्वादशादित्यस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अदितिर्द्यौ० ईशानेन्द्रयोर्मध्ये भद्रे द्वादशादित्यान् ॥ १२ ॥ अश्विना तेजसेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिरनुष्टुप्छन्दः अश्विनौ देवते अश्विनौ स्थापने विनियोगः॥ ॐ अश्विना तेजसा० इन्द्राग्न्योर्मध्ये भद्रे अश्विनौ० ॥ १३ ॥ विश्वेदेवास ऽआगत इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः गायत्रीछन्दः विश्वेदेवा देवता विश्वेदेवस्थापने विनियोगः। ॐ विश्वेदेवास ऽआगत० ॥ अग्नियमयोर्मध्ये भद्रे विश्वेदेवान्सपितॄन् ॥ १४ ॥ अभित्यं देवमित्यस्य प्रजापति ऋषिः अष्टीछन्दः सप्तयक्षो देवता सप्तयक्षस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अभित्यं देवꣳ० सविता० । यमनिऋतिमध्ये भद्रे सप्तयक्षान् ॥ १५ ॥ भूताय त्वेति पराशर ऋषिः विराट् छन्दः नारायणो देवता भूत० । वा नमोऽस्तु सर्पेभ्य इत्यस्य प्रजापति ऋषिरनुष्टुप् छन्दः सर्पो देवता सर्पस्थापने विनियोगः ॥ ॐ भूताय त्वा० ॥ वा ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० निऋतिवरुणयोर्मध्ये भद्रे भूतनागान् वा सर्पान् ॥ १६ ॥ गन्धर्वस्त्वेति गौतम ऋषिः द्विपदा विराट्छन्दः गन्धर्वो देवता गन्धर्वस्थापने विनियोगः ॥

णाम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मसोममध्ये स्कन्दनन्दीश्वरशूलमहाकालान् ॥ कुमारस्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥ ॐ कुमारं माता० ॥ १८ ॥ ऋषभमृषभो वैराजो ऋषभोऽनुष्टुप् । ॐ ऋषभं मा ॥ १९ ॥ ब्रह्मेशानमध्ये दक्षादीन् सप्त । अदितिर्द्यौर्ब्रह्मस्पतिर्दक्षोऽनुष्टुप् । ॐ अदितिऽर्द्यौ जनिष्टः ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्रह्मेन्द्रमध्ये दुर्गां विष्णुं च । तामग्नवर्ण्यां सौभरिर्दुर्गा त्रिष्टुप् । ॐ तामग्निवर्णां ॥ २२ ॥ इदं विष्णुः काण्वो मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री ॥ ॐ इदं विष्णुः ॥ २३ ॥ ब्रह्माग्नेयमध्ये स्वधाम् । उदीरतां शङ्खः स्वधा त्रिष्टुप् । ॐ उदीरतां सूनृताः ॥ २४ ॥ ब्रह्मयममध्ये मृत्युरोगान् । परं मृत्योः संकुसुको मृत्युरोगा-स्त्रिष्टुप् । ॐ परं मृत्यो अनु ॥ २५ ॥ ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये गणपतिं ॥ गणानान्त्वा गृत्समदो गणपतिर्जगती ॥ ॐ गणानान्त्वा० ॥२६॥ ब्रह्मवरुणमध्ये अपः ॥ शन्नो वरीषसिंधुद्वीप आपो गायत्री ॥ ॐ शन्नो देवीः ॥ २७ ॥ ब्रह्मवायुमध्ये मरुतः ॥

---

ॐ गन्धर्वस्त्वा० वरुणवायोर्मध्ये भद्रे गन्धर्वाप्सरसः ॥ १७ ॥ यदक्रन्देत्यस्य औतथ्यदीर्घतमास्कन्द ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः स्कन्दो देवता स्कन्दस्थापने विनियोगः ॥ ॐ यदक्रन्दः० ब्रह्मसोममध्ये वाप्यां स्कन्दं० ॥ १८ ॥ आशुः शिशानेत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता नन्दीश्वरस्थापने विनियोगः ॥ ॐ आशुः ॥ स्कन्दोत्तरे नन्दीश्वरं० ॥ १९ ॥ तत्रैव ॐ कार्षिरसीति शूलं तथा महाकालं०॥२०॥२१॥ अदिति र्द्यौरित्यस्य दक्ष ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः दक्षादिसप्तगणो देवता दक्षादि सप्तगणान्स्थापने विनियोगः । ॐ अदितिर्द्यौ० ब्रह्मेशानमध्ये शृङ्खलायां दक्षादिसप्तगणान् ॥ २२ ॥ अम्बेऽअम्ब इत्यस्य प्रजापति ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः दुर्गादेवता दुर्गास्थापने विनियोगः ॥ ॐ अम्बेऽअम्बिके० ॥ ब्रह्मेन्द्रमध्ये वाप्यां दुर्गां० ॥ २३ ॥ इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथि ऋषिः गायत्रीछन्दो विष्णुर्देवता विष्णुस्थापने विनियोगः । ॐ इदं विष्णु० अम्बिका पूर्वे विष्णुं० ॥ २४ ॥ उदीरता इत्यस्य शङ्ख ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः पित्रो देवता पित्रास्थापने विनियोगः । ॐ उदीरता० ब्रह्माग्निमध्ये शृङ्खलायां पितॄन् ॥ २५ ॥ परं मृत्यो इत्यस्य संकुशिकः ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः मृत्युर्देवता मृत्युस्थापने विनियोगः ॥ ॐ परं मृत्यो० ॥ ब्रह्मयममध्ये वाप्यां मृत्युरोगान् ॥ २६ ॥ गणानान्त्वा इत्यस्य शौनक ऋषिर्जगती छन्दो गणपतिर्देवता गणपत्यास्थापने विनियोगः ॥ ॐ गणानान्त्वा० ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये शृङ्खलायां गणपतिं ॥ २७ ॥ शन्नो देवीरित्यस्य दध्यथर्वण ऋषिः गायत्रीछन्दः आपो देवता अपां स्थापने

गोत्र भौम० ॥ ३ ॥ तत ईशान्ये वाणाकारे उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पाक्षतैरुद्बुध्यध्वं बुधः सौम्यो बुधस्त्रिष्टुप् मगधदेशोद्भव आत्रेयसगोत्र बुध ॥ ४ ॥ तत उत्तरतो दीर्घचतुरस्रे उदङ्मुखं बृहस्पतिं पीतपुष्पाक्षतैर्बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् सिंधुदेशोद्भव आंगिरसगोत्र बृहस्पते० ॥ ५ ॥ ततः पूर्वे पञ्चकोणे प्राङ्मुखं शुक्रं शुक्लपुष्पाक्षतैः शुक्रः पाराशरः शुक्रो द्विपदा विराट् ॥ भोजकटदेशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्र ॥ ६ ॥ ततः पश्चिमे धनुषि प्रत्यङ्मुख शनिं कृष्णपुष्पाक्षतैः शमग्निरिरिंविठिः शनिरुष्णिक् सौराष्ट्रज काश्यपगोत्र शनैश्चर ॥ ७ ॥ ततो नैऋत्ये सूर्पाकारे दक्षिणामुखं राहुं कृष्णपुष्पाक्षतैः कयानो वामदेवो राहुर्गायत्री राह्वावाहने० ॥ राठिनापुरोद्भव पैठीनसिसगोत्र राहो ॥ ८ ॥ ततो वायव्ये ध्वजा-

---

द्भव भारद्वाजसगोत्र रक्तवर्ण भौम इहागच्छेह तिष्ठ दक्षिणदले व्यङ्गुले रक्तमंडले दक्षिणमुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ३ ॥ ॐ उद्बुध्यस्वाग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः बुधो देवता बुधस्थापने विनियोगः ॥ ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने० ॐ भूर्भुवः स्वः मगधदेशोद्भव आत्रेयसगोत्र पीतवर्ण बुध इहागच्छेह तिष्ठ ईशानदले वाणाकृतौ पीते चतुरंगुले मंडले उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ४ ॥ बृहस्पते अतीत्यस्य गृत्समद ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः बृहस्पतिर्देवता बृहस्पतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ बृहस्पते० ॐ भूर्भुवः स्वः सिन्धुदेशोद्भव आङ्गिरसगोत्र पीतवर्ण गुरो इहागच्छेह तिष्ठ उत्तरदले दीर्घचतुरस्रे पीतवर्णषडङ्गुलमण्डले उदङ्मुखं बृहस्पतिं पीतपुष्पाक्षतैःपूजयेत् ॥५॥ अन्नात्परिस्रुतस्य अश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयः अतिजगतीछन्दः शुक्रो देवता शुक्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अन्नात्परिस्रुत० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः भोजकटदेशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्लवर्ण शुक्र इहागच्छेह तिष्ठ पूर्वदले पञ्चास्रे नवांगुले मण्डले प्राङ्मुखं शुक्रं शुक्लपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ६ ॥ शन्नो देवीरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः गायत्राछन्दः शनिर्देवता शनिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ शन्नो देवी० ॐ भूर्भुवः स्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव काश्यपगोत्र कृष्णवर्ण शनैश्चर इहागच्छेह तिष्ठ पश्चिमे द्वयङ्गुलमण्डले कृष्णवर्णे धनुषाकृतिमण्डले प्रत्यङ्मुखं शनिं कृष्णपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ७ ॥ कयानश्चित्र इत्यस्य वामदेव ऋषिः गायत्रीछन्दः राहुर्देवता राहुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ कयानश्चित्र० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः राठिनसदेशोद्भव पैठिनसगोत्र कृष्णवर्ण राहो इहागच्छेह तिष्ठ नैऋत्ये शूर्पाकारे कृष्णवर्णे द्वादशाङ्गुलमण्डले दक्षिणमुखं राहुं कृष्णपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ८ ॥ केतुं कृण्वं नित्यस्य

कारे दक्षिणामुखं केतुं धूम्रपुष्पाक्षतैः केतुं मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री अन्तर्वेदिसमुद्भवा जैमिनिसगोत्रा केतवो इहागच्छेह तिष्ठेति ॥ ६ ॥ सर्वे वा आदित्याभिमुखाः अथाधिदेवताः श्वेतपुष्पाक्षतैः क्रमात्सूर्यादीनां दक्षिणतः स्थाप्याः ॥ त्र्यम्बकं वशिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् विनियोगः सर्वत्र ज्ञेयः ॥ त्र्यम्बकं ॐ भूर्भुवः स्वः ईश्वरं० ॥ १ ॥ गौरीर्मिमाय दीर्घतमा उमा जगती सोमदक्षिणे ॥ २ ॥ यदक्रन्दो दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥ ३ ॥ विष्णोर्दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप् ॥ ४ ॥ ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् ॥ ५ ॥ इन्द्रे वो मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री ॥ ६ ॥ यमाय सोमं यमोऽनुष्टुप ॥ ७ ॥ मोषुणो घोरः कण्वः कालो गायत्री ॥ ८ ॥ उषो वाजं प्रस्कण्वश्चित्रगुप्तो बृहती ॥ ९ ॥ एवमेव शुक्लपुष्पाक्षतैर्ब्रह्माणां वामे मन्त्रान्ते व्याहृतीरिहागच्छेह तिष्ठेति चोक्त्वा प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत् ॥ अग्निं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री ॥ ॐ अग्निन्दूतं० ॥ १ ॥ अप्सु मे मेधातिथिरापोऽनुष्टुप् ॥ २ ॥ स्योना मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री ॥ ३ ॥ इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री ॥ ४ ॥ इन्द्रश्रेष्ठानि गृत्समद इन्द्रस्त्रि-

---

मधुच्छन्दा ऋषिः अनिरुक्ता गायत्री छन्दः केतुर्देवता केतुस्थापने विनियोगः ॐ केतुं कृण्वन्न० ॐभूर्भुवः स्वः अवन्तिदेशोद्भव जैमिनिसगोत्र चित्रवर्ण केतो इहागच्छेह तिष्ठ वायव्ये ध्वजाकारे चित्रवर्णे षडङ्गुलमण्डले दक्षिणमुखं केतुं धूम्रवर्णपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ९ ॥ केतूनां बहुत्वेऽपि पूजादौ बहुत्वविशिष्टमेकदेवतात्वम् ॥ सर्वान् आदित्याभिमुखान् स्थापयेदित्युक्तं मात्स्ये ॥ अथाधिदेवताः सर्वे श्वेतपुष्पाक्षतैः स्थापयेत्पूजयेच्च ॥ त्र्यम्बकमिति वशिष्ठ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः त्र्यम्बको रुद्रो देवता रुद्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० सूर्यादुत्तरतो रुद्र इहागच्छेह तिष्ठेति रुद्रं स्थापयेत् ॥१॥ श्रीश्च तेत्यस्य नारायण ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः उमादेवता उमास्थापने विनियोगः ॥ ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मी० उमेहागच्छेह तिष्ठ दक्षिणे उमाम् ॥ २ ॥ यदक्रन्देत्य भार्गवो जमदग्नि-दीर्घतमावृषी त्रिष्टुप्छन्दः स्कन्दो देवता स्कन्दस्थापने विनियोगः ॥ ॐ यदक्रन्दः स्कन्देहागच्छेह तिष्ठ भौमदक्षिणे स्कन्दम्० ॥ ३ ॥ विष्णोरराट् इत्यस्य प्रजापति ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः विष्णुर्देवता विष्णुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ विष्णोरराट् मसीत्यारभ्य विष्णवे त्वेत्यन्ते बुधपश्चिमे विष्णोरिहागच्छेह तिष्ठ विष्णुम् ॥ ४ ॥ आब्रह्मन्नित्यस्य प्रजापति ऋषिः यजुःछन्दः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ आब्रह्मन् गुरोः पूर्वभागे ब्रह्मन्निहागच्छेह तिष्ठ ब्रह्माणं० ॥ ५ ॥ सयोषा इन्द्रेत्यस्य

गोत्र भौम० ॥ ३ ॥ तत ईशान्ये वाणाकारे उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पाक्षतैरुद्बुध्यस्वं बुधः सौम्यो बुधस्त्रिष्टुप् मगधदेशोद्भव आत्रेयसगोत्र बुध ॥ ४ ॥ तत उत्तरतो दीर्घचतुरस्रे उदङ्मुखं बृहस्पतिं पीतपुष्पाक्षतैर्बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् सिंधुदेशोद्भव आंगिरसगोत्र बृहस्पते० ॥ ५ ॥ ततः पूर्वे पञ्चकोणे प्राङ्मुखं शुक्रं शुक्लपुष्पाक्षतैः शुक्रः पाराशरः शुक्रो द्विपदा विराट् ॥ भोजकटदेशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्र ॥ ६ ॥ ततः पश्चिमे धनुषि प्रत्यङ्मुख शनिं कृष्णपुष्पाक्षतैः शमग्निरिरिंविठिः शनिरुष्णिक् सौराष्ट्रज काश्यपगोत्र शनैश्चर ॥ ७ ॥ ततो नैऋत्ये सूर्पाकारे दक्षिणामुखं राहुं कृष्णपुष्पाक्षतैः कयानो वामदेवो राहुर्गायत्री राह्वावाहने० ॥ राठिनापुरोद्भव पैठीनसिसगोत्र राहो ॥ ८ ॥ ततो वायव्ये ध्वजा-

---

द्भव भारद्वाजसगोत्र रक्तवर्ण भौम इहागच्छेह तिष्ठ दक्षिणदले त्र्यङ्गुले रक्तमंडले दक्षिणमुखं भौमं रक्तपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ३ ॥ ॐ उद्बुध्यस्वाग्न इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः बुधो देवता बुधस्थापने विनियोगः ॥ ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने० ॐ भूर्भुवः स्वः मगधदेशोद्भव आत्रेयसगोत्र पीतवर्ण बुध इहागच्छेह तिष्ठ ईशानदले वाणाकृतौ पीते चतुरंगुले मंडले उदङ्मुखं बुधं पीतपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ४ ॥ बृहस्पते अतीत्यस्य गृत्समद ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः बृहस्पतिदेवता बृहस्पतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ बृहस्पते० ॐ भूर्भुवः स्वः सिन्धुदेशोद्भव आङ्गिरसगोत्र पीतवर्ण गुरो इहागच्छेह तिष्ठ उत्तरदले दीर्घचतुरस्रे पीतवर्णषडङ्गुलमण्डले उदङ्मुखं बृहस्पतिं पीतपुष्पाक्षतैःपूजयेत् ॥५॥ अन्नात्परिस्रुतस्य अश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयः अतिजगतीछन्दः शुक्रो देवता शुक्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अन्नात्परिस्रुत० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः भोजकटदेशोद्भव भार्गवसगोत्र शुक्लवर्ण शुक्र इहागच्छेह तिष्ठ पूर्वदले पञ्चास्रे नवांगुले मण्डले प्राङ्मुखं शुक्रं शुक्लपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ६ ॥ शन्नो देवीरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः गायत्रीछन्दः शनिर्देवता शनिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ शन्नो देवी० ॐ भूर्भुवः स्वः सौराष्ट्रदेशोद्भव काश्यपगोत्र कृष्णवर्ण शनैश्चर इहागच्छेह तिष्ठ पश्चिमे द्व्यङ्गुलमण्डले कृष्णवर्णे धनुषाकृतिमण्डले प्रत्यङ्मुखं शनिं कृष्णपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ७ ॥ कयानश्चित्र इत्यस्य वामदेव ऋषिः गायत्रीछन्दः राहुर्देवता राहुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ कयानश्चित्र० ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः राठिनसदेशोद्भव पैठिनसगोत्र कृष्णवर्ण राहो इहागच्छेह तिष्ठ नैऋत्ये शूर्पाकारे कृष्णवर्णे द्वादशाङ्गुलमण्डले दक्षिणमुखं राहुं कृष्णपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ८ ॥ केतुं कृण्वं नित्यस्य

कारे दक्षिणामुखं केतुं धूम्रपुष्पाक्षतैः केतुं मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री अन्तर्वेदिसमुद्भवा जैमिनिसगोत्रा केतवो इहागच्छेह तिष्ठेति ॥ ६ ॥ सर्वे वा आदित्याभिमुखाः अथाधिदेवताः श्वेतपुष्पाक्षतैः क्रमात्सूर्यादीनां दक्षिणतः स्थाप्याः ॥ त्र्यम्बकं वशिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् विनियोगः सर्वत्र ज्ञेयः ॥ त्र्यम्बकं ॐ भूर्भुवः स्वः ईश्वरं० ॥ १ ॥ गौरीर्मिमाय दीर्घतमा उमा जगती सोमदक्षिणे ॥ २ ॥ यदक्रन्दो दीर्घतमा स्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥ ३ ॥ विष्णोर्दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप् ॥ ४ ॥ ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् ॥ ५ ॥ इन्द्रे वो मधुच्छन्दा इन्द्रो गायत्री ॥ ६ ॥ यमाय सोमं यमोऽनुष्टुप ॥ ७ ॥ मोषुणो घोरः कण्वः कालो गायत्री ॥ ८ ॥ उषो वाजं प्रस्कण्वश्चित्रगुप्तो बृहती ॥ ९ ॥ एवमेव शुक्लपुष्पाक्षतैर्ग्रहाणां वामे मन्त्रान्ते व्याहृतीरिहागच्छेह तिष्ठेति चोक्त्वा प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत् ॥ अग्निं कण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री ॥ ॐ अग्निन्दूतं० ॥ १ ॥ अप्सु मे मेधातिथिरापोऽनुष्टुप् ॥ २ ॥ स्योना मेधातिथिर्भूमिर्गायत्री ॥ ३ ॥ इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री ॥ ४ ॥ इन्द्रश्रेष्ठानि गृत्समद इन्द्रस्त्रि-

---

मधुच्छन्दा ऋषिः अनिरुक्ता गायत्री छन्दः केतुर्देवता केतुस्थापने विनियोगः ॐ केतुं कृण्वन्न० ॐभूर्भुवः स्वः अवन्तिदेशोद्भव जैमिनिसगोत्र चित्रवर्ण केतो इहागच्छेह तिष्ठ वायव्ये ध्वजाकारे चित्रवर्णे षडङ्गुलमण्डले दक्षिणमुखं केतुं धूम्रवर्णपुष्पाक्षतैः पूजयेत् ॥ ९ ॥ केतूनां बहुत्वेऽपि पूजादौ बहुत्वविशिष्टमेकदेवतात्वम् ॥ सर्वान् आदित्याभिमुखान् स्थापयेदित्युक्तं मात्स्ये ॥ अथाधिदेवताः सर्वे श्वेतपुष्पाक्षतैः स्थापयेत्पूजयेच्च ॥ त्र्यम्बकमिति वशिष्ठ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः त्र्यम्बको रुद्रो देवता रुद्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ त्र्यम्बकं यजामहे० सूर्यादुत्तरतो रुद्र इहागच्छेह तिष्ठेति रुद्रं स्थापयेत् ॥१॥ श्रीश्च तेत्यस्य नारायण ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः उमादेवता उमास्थापने विनियोगः ॥ ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मी० उमेहागच्छेह तिष्ठ दक्षिणे उमाम् ॥ २ ॥ यदक्रन्देत्थ भार्गवो जमदग्नि-दीर्घतमावृषी त्रिष्टुप्छन्दः स्कन्दो देवता स्कन्दस्थापने विनियोगः ॥ ॐ यदक्रन्दः स्कन्देहागच्छेह तिष्ठ भौमदक्षिणे स्कन्दम्० ॥ ३ ॥ विष्णोरराट् इत्यस्य प्रजापति ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः विष्णुर्देवता विष्णुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ विष्णोरराट् मसीत्यारभ्य विष्णवे त्वेत्यन्ते बुधपश्चिमे विष्णोरिहागच्छेह तिष्ठ विष्णुम् ॥ ४ ॥ आब्रह्मन्नित्यस्य प्रजापति ऋषिः यजुःछन्दः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ आब्रह्मन् गुरोः पूर्वभागे ब्रह्मनिहागच्छेह तिष्ठ ब्रह्माणं० ॥ ५ ॥ सयोषा इन्द्रेत्यस्य

ष्टुप् ॥ ५ ॥ इन्द्राणीं वृषाकपिरिंद्राणी पंक्तिः ॥ ६ ॥ प्रजापतेर्हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥ ७ ॥ आयं गौः सार्पराज्ञी सर्पागायत्री ॥ ८ ॥ ब्रह्मयज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मास्त्रिष्टुप् ॥ ९ ॥ ततः शुक्लपुष्पाक्षतैर्विनायकादीन् पञ्च गणानान्त्वा गृत्समदो गणपतिर्जगती ॥ राहोरुत्तरतो विनायकम् ॥ १ ॥ जातवेदसे कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप् ॥ शनेरुत्तरतो दुर्गाम् ॥ २ ॥ तव वायवृतस्य ते व्यश्व-आङ्गिरसो वायुर्गायत्रीछन्दः ॥ रवेरुत्तरतो वायुम् ॥ ३ ॥ एतान्मन्त्रान्पठन्ति साम्प्रदायिकाः ॥ तत्र केषु चिन्मन्त्रेषु मूलं चिन्त्यम् ॥ ४ ॥ आदित्यस्य वत्स आकाशो गायत्री ॥ राहोर्दक्षिणे आकाशम् ॥ ५ ॥ एषो उषाप्रस्कण्वोश्विनौ गायत्री ॥ अश्विनाविहागच्छतामिह

---

विश्वामित्र ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ सयोषा इन्द्र० शुक्रात्प्राच्यामिन्द्रेहागच्छेह तिष्ठ इन्द्रं० ॥ ६ ॥ यमाय त्वा इत्यस्य दध्यङाथर्वण ऋषिः यजुश्छन्दः यमो देवता यमस्थापने विनियोगः ॥ ॐ यमाय त्वा० शनेराग्नेयभागे यमेहागच्छेह तिष्ठ यमं० ॥ ७ ॥ कार्षिरसीत्यस्य प्रजापति ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः कालो देवता कालावाहने विनियोगः ॥ ॐ कार्षिरसी० राहोरीशान्यां कालेहागच्छेह तिष्ठ कालं० ॥ ८ ॥ चित्रावसो इत्यस्य यजुर्जगती छन्दः चित्रगुप्तो देवता चित्रगुप्तस्थापने विनियोगः ॥ ॐ चित्रावसो स्वस्ति ते० केतोर्नैऋत्यां चित्रगुप्तेहागच्छेह तिष्ठ चित्रगुप्तं ॥ ९ ॥ अथ प्रत्यधिदेवतास्थापनम् ॥ शुक्लपुष्पाक्षतैरेव ग्रहाधिदेवतयोर्मध्ये आदित्यादिक्रमेण अग्न्याद्याः सर्वाः प्रत्यधिदेवताः स्थापयेत् ॥ तद्यथा ॥ अग्निन्दूतमित्यस्य विरुपाक्ष ऋषिर्गायत्रीछन्दः अग्निर्देवता अग्निस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अग्निन्दूतं० अग्ने इहागच्छेह तिष्ठ अग्निं ॥ १ ॥ आपोहिष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः गायत्रीछन्दः आपो देवता अपां स्थापने विनियोगः ॥ ओं आपो हिष्ठा० आप इहागच्छेह तिष्ठेति आपः ॥ ॥ २ ॥ स्योनापृथिवीत्यस्य मेधातिथि ऋषिः गायत्रीछन्दः पृथिवी देवता पृथिवीस्थापने विनियोगः ॥ ओं स्योनापृथिवी० पृथिवि इहागच्छेह तिष्ठेति पृथिवीं० ॥ ३ ॥ इदं विष्णुरित्यस्य मेधातिथि ऋषिः गायत्रीछन्दः विष्णुर्देवता विष्णुस्थापने विनियोगः ॥ ओं इदं विष्णु० विष्णो इहागच्छेह तिष्ठेति विष्णुं० ॥ ४ ॥ इन्द्र आसां इत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने विनियोगः ॥ ओं इन्द्र आसां० इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति इन्द्रं० ॥ ५ ॥ ओं अदित्यैरास्नासीत्यस्य दध्यङाथर्वण ऋषिः यजुस्त्रिष्टुप् छं० इन्द्राणी देवता इन्द्राणि स्थापने विनियोगः ॥ ओं अदित्यै रास्ना० इन्द्राणि इहागच्छेह तिष्ठेति

तिष्ठतामिति केतोर्दक्षिणेऽश्विनौ ॥६॥ एतानि विनायकादि स्थानानि चिन्तामणौ ॥ विनायकादीन् पञ्च उत्तरत एवेति सम्प्रदायः ॥ एवं द्वात्रिंशद्देवता इति रूपनारायणादयः ॥ हेमाद्रौ तु लोकपालादीनामपि सूर्याभिमुखानां दिक्षु स्थापनमुक्तम् । तद्यथा ॥ इन्द्रं विश्वो जेता माधुच्छन्दस इन्द्रोऽनुष्टुप् ॥ इन्द्रेहागच्छेह तिष्ठेति पूर्वे इन्द्रम् ॥ १ ॥ एवमुत्तरत्र ॥ अग्निं मेधातिथिरग्निर्गायत्री ॥ २ ॥ यमाय सोमं यमो यमोऽनुष्टुप् ॥ ३ ॥ मोषुणो घोरः कण्वो निर्ऋतिर्गायत्री ॥ ४ ॥ तत्त्वायामि शुनःशेपो वरुणस्त्रिष्टुप् ॥ ५ ॥ तव वायो व्यश्वोवाङ्गिरसो वायुर्गायत्री ॥६॥ सोमो धेनुं गौतमः सोमस्त्रिष्टुप् ॥७॥

---

इन्द्राणीम् ॥ ६ ॥ प्रजापत इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः प्रजापतिर्देवता प्रजापतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ प्रजापतेन त्वं० प्रजापतेहागच्छेह तिष्ठेति प्रजापतिं० ॥७॥ नमोऽस्तु सर्पेभ्य इत्यस्य प्रजापति ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः सर्पाः देवताः सर्पस्थापने विनियोगः ॥ ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो० ॥ सर्पान्० ॥८॥ ब्रह्मजज्ञानमित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ ब्रह्मजज्ञानं० ब्रह्मन् इहागच्छेह तिष्ठेति ब्रह्माणं० ॥ ९ ॥ उत्पलपरिमलकारादयस्तु ग्रहाणां दक्षिणपार्श्वे प्रत्यधिदेवताः स्थाप्या इत्याहुः ॥

अथ पञ्चलोकपालानां स्थापनम् ॥ गणानान्त्वेत्यस्य प्रजापति ऋषिः यजुश्छन्दः गणपतिर्देवता गणपतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ गणानान्त्वा० राहोरुत्तरतः गणपतिम्० ॥ १ ॥ अम्बे अम्बिके इत्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप् छन्दः दुर्गादेवता दुर्गास्थापने विनियोगः ॥ ॐ अम्बेऽअम्बिके० शनेरुत्तरतो दुर्गाम्० ॥ २ ॥ वायो येते इत्यस्य गृत्समद ऋषिर्गायत्रीछन्दः वायुर्देवता वायुस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वायो ये ते० सूर्यादुत्तरतो वायुं० ॥ ३ ॥ घृतं पावान इत्यस्य प्रजापति ऋषिः पंक्तिश्छन्दः आकाशो देवता आकाशस्थापने विनियोगः ॥ ॐ घृतं घृतपावानः राहोर्दक्षिणतः० आकाशं० ॥४॥ यावाङ्कशेत्यस्य मेधातिथि ऋषिः गायत्रीछन्दः अश्विनौ देवता अश्विनौ स्थापने विनियोगः ॥ ॐ यावाङ्कशा० केतोर्दक्षिणतः अश्विनौ० ॥ ५ ॥ एतानि विनायकादिस्थानानि चिन्तामणौ ॥ विनायकादीन् पञ्चोत्तर एवेति सम्प्रदायः ॥ उत्तरतो क्षेत्राधिपतिं वास्तोष्पतिञ्चाऽऽवाहयेत् ॥ इत्येके ॥ नहि स्पशमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः क्षेत्राधिपतिर्देवता क्षेत्राधिपतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ नहि स्पश० क्षेत्राधिपते इहागच्छेह तिष्ठ ॥ ६ ॥ वास्तोष्पत इत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः

तमीशानं गौतम ईशानो जगती ॥ ८ ॥ सहस्रशीर्षा नारायणोऽनंतोऽनुष्टुप् ॥ ईशानपूर्वयोर्मध्येऽनन्तम् ॥९॥ ॐ ब्रह्मजज्ञानं गौतमो वामदेवो ब्रह्मा त्रिष्टुप् ॥ नैऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ब्रह्माणं ॥ १० ॥ तत उत्तरे क्षेत्रस्य वामदेवः क्षेत्रपालोऽनुष्टुप् ॥ वास्तोष्पते वशिष्ठो वास्तोष्पतिस्त्रिष्टुप् ॥ ततो लक्षहोमश्चेदिन्द्रं मित्रमित्यनेन ॥ सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ॥ विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ म इत्यनेन चोत्तरे ॥ गरुत्मन्तमावाह्य रवेः पूर्वे शेषं सोमस्याग्रे वासुकिं भौमाग्रे तक्षकं बुधोत्तरे कर्कोटकम् ॥ बृहस्पतेरग्रे पद्मं शनिपश्चिमे शङ्खपालं राहोः पुरः कम्बलं केतोः पुरः कुलिकम् ॥ पोठात्प्राच्यामश्विन्यादिसप्तनक्षत्राणि ॥ विष्कुम्भादि-सप्तयोगान् ॥ बव-बालवकरणे ॥ सप्तद्वीपानि ऋग्वेदश्च ॥ दक्षिणे पुष्यादि सप्तनक्षत्राणि ॥ धृत्यादिसप्तयोगान् ॥ कौलव-तैतिलकरणे ॥ सप्तसागरान् ॥ यजुर्वेदश्च पश्चिमे स्वात्यादिसप्तनक्षत्राणि ॥ वज्रादिसप्तयोगान् ॥ गर-वणिजकरणे ॥ सप्तपातालानि सामवेदश्च ॥ उत्तरे—अभिजिदादिसप्तनक्षत्राणि साध्यादिषट्योगान् विष्टिकरणम् ॥ भूरादीन् सप्तलोकान् । अथर्ववेदश्च ॥ वायव्ये ध्रुवं सप्तर्षींश्च ॥ अथ यथावकाशं गङ्गादिसप्तसरितः ॥ सप्तकुलाचलान् ॥ अष्टौ वसून् ॥ द्वादशादित्यान् ॥ एकादश रुद्रान् ॥ मरुतः ॥ षोडशमातृः ॥ षड्ऋतून् ॥ द्वादश मासान् ॥ द्वे अयने ॥ पञ्चदश तिथीन् ॥ षष्टिसम्वत्सरान् ॥ सुपर्णान् ॥ नागान् ॥ सर्पान् ॥ यक्षान् ॥ गन्धर्वान् ॥ विद्याधरान् ॥ अप्सरसः ॥ रक्षांसि ॥ भूतानि ॥ मनुष्यानिति ॥ कोटिद्वामे तु वेदेः पूर्वे ब्रह्माणं मध्ये जनार्दनम् ॥ पश्चिमे रुद्रम् ॥ उत्तरे स्कन्दमित्येतानप्यावाहयेत् ॥ ततोऽस्मिन्कर्मणि देवतापरिग्रहार्थम् अन्वाधानं करिष्य इति सङ्कल्प्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा सूर्यादीन्ग्रहादीन् समिदाज्यनैवेद्यशेषचरुभिरष्टसहस्राष्टशताष्टाविंशत्यष्टान्यतमसंख्ययाऽधिदेवताप्रत्यधिदेवताविनायकादीन् लोकपालांश्चामुकसंख्यया एतैरेव द्रव्यैः क्षेत्रपालादींश्चामुकसंख्यया सूर्याद्याः सर्वा देवता दशसंख्याकतिलाहुतिभिः

---

त्रिष्टुप्छन्दः वास्तोष्पतिर्देवता वास्तोष्पतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वास्तोष्पते० वास्तोष्पति इहागच्छेह तिष्ठ ॥ ७ ॥ एवं द्वात्रिंशद्देवता इत्युक्त्वा नारायणादयः ॥ हेमाद्रौ तु दिक्पालानामपि सूर्याभिमुखानां दिक्षु स्थापनाद्युक्तं ते चाष्टौ स्थाप्याः ॥ इति केचित् ॥ दशेति मदनरत्ने इति ॥ अथ दिक्पाल-

अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च प्रत्येकं पञ्चविंशतिशतमिताभिस्तिलाहुतिभिर्यदये ॥ लक्षहोमे पञ्चविंशतिसहस्रमिताभिः ॥ कोटिहोमे पञ्चविंशतिलक्षमिताभिरिति विशेषः । ततः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादियदय इत्यन्तमुक्त्वा समिद्द्वयमाधाय निर्वापादिक्रमेण गुडोदनादीन् नवान्यांश्च शुद्धांस्त्रयोविंशतिमिति द्वात्रिंशत् नवैव वा चरून् श्रपयित्वा पञ्चभिः षोडशभिर्वोपचारैः सम्पूजयेत् ॥ तत्र वस्त्राणि ग्रहवर्णानि ॥ रविभौमयो रक्तचन्दनम् ॥ चन्द्रशुक्रयोः श्वेतचन्दनं ॥ बुधगुर्वोः कुङ्कुमयुतम् ॥ शनि-राहु-केतूनां कृष्णागुरुं पुष्पाणि तत्तद्वर्णानि ॥ धूपास्तु सल्लकीनिर्यासम् ॥ घृताक्तयवाः ॥ रालमगरुं सिल्हकं बिल्वयुतागुरुं गुग्गुलम् ॥ लाक्षाक्रमादुगायत्र्या दत्वा उद्दीप्यस्वेति सर्वेभ्यो दीपान् दत्वा गुडोदनं पायसं नीवारौदनं क्षीरयुतषाष्ठिकोदनं दध्योदनं-घृतौदनं तिलमाषयुतमोदनं मांसौदनं चित्रौदनं चक्रमाग्निवेदयेत् ॥ अधिदेवताविभ्यस्तु वासोगन्धपुष्पाणि श्वेतानि ॥ गुग्गुलुर्धूपः ॥ नैवेद्यं पायसादियथालाभम् ॥ सूर्यादिद्वात्रिंशतामन्येषां च सर्वेषां पूजापदार्थानुसमयेनैव ॥

ततो वेदीशान्यां कलशं संस्थाप्य तत्र वरुणमावाह्य सम्पूज्याभिमन्त्रयेत् ॥ तद्यथा—

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥१॥
कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥२॥

---

देवतास्थापनम् ॥ त्रातारमित्यस्य गर्ग ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता इन्द्रस्थापने विनियोगः ॥ ॐ त्रातारमिन्द्र० प्राच्यां इन्द्रं० ॥ १ ॥ त्वन्नो अग्ने इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता अग्निस्थापने विनियोगः ॥ ॐ त्वन्नो अग्ने० आग्नेयामग्निं० ॥ २ ॥ सुगन्नु पन्थामित्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः यमो देवता यमस्थापने विनियोगः ॥ ॐ सुगन्नु पन्थां० दक्षिणस्यां यमं० ॥ ३ ॥ असुन्वन्तम इत्यस्य प्रजापति ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः निर्ऋतिर्देवता निर्ऋतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ असुन्वन्तम० नैर्ऋत्यां निर्ऋतिं० ॥४॥ ॐ तत्त्वायामीत्यस्य शुनःशेप ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः । वरुणो देवता वरुणस्थापने विनियोगः ॥ तत्त्वायामि० प्रतीच्यां वरुणः ॥५॥ आमो मित्रुक्षिरित्यस्य प्रजापति

अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ।
अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ॥३॥
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।
देवदानवसम्वादे मथ्यमाने महोदधौ ॥४॥
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ।
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ॥५॥
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।
शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ॥६॥
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ॥७॥
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ! ।
सान्निध्यं कुरु मे देव ! प्रसन्नो भव सर्वदा ॥८॥इति॥

ततः फलपुष्पमालाशोभितं वितानं बृहस्पतिदैवतं सूर्यादिभ्य इदं न ममेत्युत्सृज्य ग्रहवेद्युपरि बध्नीयात् । ततश्चर्वासादनाद्याज्यभागान्ते यजमानः सर्वा आवाहिताः सूर्यादिदेवताः अग्निवायुसूर्यप्रजापतींश्चोद्दिश्य समिदाज्यचरुतिलान् होतुमुत्सृजे न ममेति त्यजेत् । ततो ऋत्विजः समिदाज्यनैवेद्यशेषचरून् क्रमेणावाहिताभ्यो देवताभ्योऽष्टसहस्राद्यन्यतमसंख्यया समस्तव्याहृतिभिर्वक्ष्यमाणत-

---

ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः निर्ऋतिदेवता निर्ऋतिस्थापने विनियोगः ॥ ॐ आनो नियुद्भि० वायव्यां वायुं० ॥६॥ वयर्ठं० सोमेत्यस्य बंधु ऋषि गायत्री छन्दः सोमो देवता सोमस्थापने विनियोगः ॥ ॐ वयर्ठं० सोमं० ॥ उदीच्यां सोमं० ॥७॥ तमीशान इत्यस्य गौतम ऋषिः जगतीछंदः ईशानो देवता ईशानस्थापने विनियोगः ॥ ॐ तमीशानं० ईशान्यां ईशानं० ॥८॥ अस्मे रुद्रा इत्यस्य प्रगाथ ऋषिः त्रिष्टुप्छंदः ब्रह्मा देवता ब्रह्मस्थापने विनियोगः ॥ ॐ अस्मे रुद्रा० ईशानेन्द्रयोर्मध्ये ब्रह्माणं० ॥९॥ स्योनापृथिवीत्यस्य मेधातिथि ऋषिर्गायत्रीछन्दः अनन्तो देवता अनन्तस्थापने विनियोगः ॥ ॐ स्योनापृथिवी० निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये अनन्तं० ॥१॥ एतच्च रूपनारायणमते ॥ अन्ये तु नैर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ब्रह्मा ॥ ईशानेन्द्रयोर्मध्ये अनन्तं स्थापयमित्याहुः ॥ केचित्तु ब्रह्मानन्तयोः स्थापनं नेच्छन्ति ॥ एवं देवताः

तन्मन्त्रैर्वा हुत्वा घृताक्ततिलैः ताभ्य एव देवताभ्यः प्रत्येकं दश-दशाहुतीर्हुत्वा सोमं राजानमिति स्विष्टकृतं हुत्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिस्तिलैरयुतं लक्षं कोटिं वा जुहुयुः । तत्र होमे ऋग्वेदिनस्तावदावाहनोक्तानेव मन्त्रान्पठन्ति । यजुर्वेदिनां तूच्यन्ते । आकृष्णेन हिरण्यस्तूपः सविता त्रिष्टुप् सूर्यप्रीतये तिलाज्यहोमे विनियोगः । ॐ आकृष्णेन० पश्यन् स्वाहा इदं सूर्याय० ॥१॥ एवं सर्वत्र ॥ इमं देवा वरुणः सोमो यजुः ॥ ॐ इमं देवा० राजा ॥२॥ अग्निर्मूर्द्धा विरूपोऽङ्गारको गायत्री ॥३॥ उद्बुध्यस्व परमेष्ठी बुधस्त्रिष्टुप् ॥ ४ ॥ बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् ॥५॥ अन्नात्प्रजापति अश्विसरस्वतीन्द्राः शुक्रो जगती ॥६॥ शन्नो दध्यङ्ङाथर्वण शनिर्गायत्री ॥७॥ कयानो वामदेवो राहुर्गायत्री ॥८॥ केतुं मधुच्छन्दाः केतवो गायत्री ॥९॥ * अथाधिदेवतानाम् * त्र्यम्बकं वशिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् ॥१॥ अत्र प्रणीतोदकं स्पृशेत् ॥ श्रीश्च तेत्युत्तरनारायण उमा त्रिष्टुप् ॥२॥ यदक्रन्दो भास्कर-जमदग्नि-दीर्घतमा-स्कन्दस्त्रिष्टुप् ॥३॥ विष्णो रराट-मुतथ्यो विष्णुर्यजुः ॥ ॐ विष्णो रराट० वेत्वा ॥४॥ आ ब्रह्मन् प्रजापतिर्ब्रह्मा यजुः ॥ ॐ आ ब्रह्मन्० कल्पतां ॥५॥ स जोषा विश्वामित्र इन्द्रस्त्रिष्टुप् ॥ ॐ सजोषा इन्द्रः ॥६॥ असियमो भास्कर-जमदग्नि-दीर्घतमसो यमस्त्रिष्टुप् ॥७॥ अत्र प्रणीतोदकं स्पृशेत् । कार्षिरसि दध्यङ्ङाथर्वणः कालोऽनुष्टुप् ॥ ८ ॥ अत्रापि प्रणीतोदकं स्पृशेत् । चित्रावसोऋषयश्चित्रगुप्ता जगती ॥ ॐ चित्रावसोः शीयः ॥९॥ * अथ प्रत्यधिदेवतानाम् * अग्निं दूतं विरूपोऽग्निर्गायत्री ॥१॥ अप्स्वन्तर्बृहस्पतिरापः पुर उष्णिक् ॥ २ ॥ स्योना मेधातिथिः पृथिवी गायत्री ॥३॥ इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री ॥४॥ त्रातारं गार्ग्य इन्द्रस्त्रिष्टुप् ॥५॥ अदित्यै दध्यङ्ङाथर्वण इन्द्राणी यजुः ॥ अदित्यै रास्नासि० ॥६॥ प्रजापते वरुणः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥७॥ नमोऽस्तु देवाः सर्पानुष्टुप् ॥८॥ ब्रह्मप्रजापतिर्ब्रह्मात्रिष्टुप् ॥९॥ * अथ विनायकादि-

---

संस्थाप्य ॥ मनोजूतिरिति सूर्याद्यनन्तान्तदेवताः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्ति इति प्रतिष्ठाप्य सम्पूज्य ॥ ब्रह्मासनाद्याधारावाज्यभागान्तं कृत्वा महाहुतीं कुर्यात् पूर्ववन्मन्त्रेण इति ॥ पूजास्विष्टनवाहुत्या बलिः पूर्णाहुतिस्तथा ॥ श्रेयोदानं ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्स्वर्णसुदक्षिणाम् ॥ कारयेदभिषेकादीन् विसर्जनमतः परम् ॥ इत्यादि कर्म कुर्यादिति ॥

पञ्चानाम् * ॥ गणानां प्रजापतिर्गणपतिर्यजुः । ॐ गणानान्त्वा० मम ॥१॥ अम्बे प्रजापतिर्दुर्गाऽनुष्टुप् ॥ २ ॥ वातो वा गन्धर्वा वात उष्णिक् प्रमाणत आवाहने विनियुक्तानप्येतान् होमे पठन्ति । तत्र ग्रहाणां सप्रमाणका एव ।

अन्येषां तूच्यन्ते । आवो राजानं वामदेवो रुद्रस्त्रिष्टुप् ॥ १ ॥ आपो हिष्ठा आम्बरीषः सिन्धुद्वीप उमागायत्री ॥ २ ॥ स्योना मेधातिथिः स्कन्दो गायत्री ॥ ३ ॥ इदं विष्णुर्मेधातिथिर्विष्णुर्गायत्री ॥ ४ ॥ त्वमित्सप्रथा गौतमो ब्रह्मा बृहती ॥ ५ ॥ इन्द्राग्निर्देवता तय उक्तसुगिन्द्रस्त्रिष्टुप् ॥ ६ ॥ आयं गौः सार्पराज्ञी यमो गायत्री ॥ ७ ॥ ब्रह्म जज्ञानं गौतमो वामदेवः कालस्त्रिष्टुप् ॥ ८ ॥ यदा शातं कौशिकः चित्रगुप्तोऽनुष्टुप् ॥९॥ अग्निदूतं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री ॥ १ ॥ उदुत्तमं गौतमो वामदेव आपस्त्रिष्टुप् ॥ २ ॥ पृथिव्यान्तरिक्षं विष्णुः पृथिव्युष्णिक् ॥ ३ ॥ सहस्रशीर्षा नारायणो विष्णुरनुष्टुप् ॥ ४ ॥ इन्द्रायेन्दो मरुत्वत उत्तानपर्णे सुभगे प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् ॥ ५ ॥ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो देवाः सर्वानुष्टुप् ॥ ६ ॥ एष ब्रह्मा प्रजापतिर्ब्रह्मा द्विपदा गायत्री ॥ ७ ॥ आत् न इन्द्रः कुसीदः काण्वो गणपतिर्गायत्री ॥ ८ ॥ जातवेदसे कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप् ॥ ९ ॥ आदिद्वृत्स आकाशो गायत्री । क्राणात्रितो वायुरुष्णिक् । आकाशादिभ्यस्तु स्थापनमन्त्रा एव ।

शेषवासुक्यादिभ्यस्तु प्रणवाद्याः स्वाहान्तानाममन्त्रा एव । लक्षकोटिहोमयोरिन्द्रं मित्रमित्यनेन गरुत्मद्धोमः । कोटिहोमे तु ब्रह्मजनार्दनरुद्रस्कन्देभ्योऽपि नाममन्त्रैर्होमः । ततो यजमानो मण्डपप्राग्द्वारकलशसमीपे त्रातारमिन्द्रं गर्ग इन्द्रस्त्रिष्टुप् । इन्द्रप्रीत्यर्थं बलिप्रदाने विनियोगः । त्रातारमिन्द्रं इन्द्राय साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकायाऽमुं सदीपमाषभक्तबलिं समर्पयामि नम इति सदीपमाषभक्तबलिं दत्वा भो इन्द्र दिशां रक्ष बलिं भक्ष मम सकुटुम्बस्यायुःकर्ता क्षेमकर्ता शुभकर्ता शान्तिकर्ता पुष्टिकर्ता तुष्टिकर्ता भवेति प्रार्थयेत् । एवमाग्नेयादिषु होमोक्ताऽग्न्यादिमन्त्रैर्बलिदानं प्रार्थनं च । एवमधिदेवताप्रत्यधिदेवतासहितेभ्यः सूर्यादिग्रहेभ्योऽपि होमोक्तैस्तत्तन्मन्त्रैर्विनायकदुर्गा-वाय्वाकाशाश्विवास्तोष्पतिक्षेत्राधिपतिभ्यश्च तत्तन्मन्त्रैर्होमोक्तैरेव । तत आचार्यो यजमानान्वारब्धः स्रुचि स्रुवेण

द्वादशवारं नारिकेलादिफलयुक्ताज्यं गृहीत्वा पूर्णाहुतिं जुहुयात् ।

तत्र मन्त्राः—समुद्रादूर्मिरिति तृचस्य गौतमो वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप् पूर्णाहुतौ विनियोगः । एवमग्रेऽपि विनियोगः । मूर्द्धानन्दिवो भरद्वाजो वैश्वानरस्त्रिष्टुप् । पुनरग्निर्वसुरुद्रादित्यास्त्रिष्टुप् । पूर्णां दर्विं विश्वेदेवाः शतक्रतुरनुष्टुप् । सप्त ते अग्ने सप्तवानग्निर्जगती । धामं ते वामदेव आपो जगती । धामं ते स्वाहेति । यजमानस्तु इदमग्नये वैश्वानराय वसुरुद्रादित्येभ्यः शतक्रतवे सप्तवते अग्नयेभ्यश्च न ममेति त्यजेत् । कातीयानां तु मूर्द्धानं दिव इत्येव पूर्णाहुतिमन्त्रः । अग्नय इदं न ममेति त्यागः । सामगानां तु प्रजापति ऋषिर्गायत्रीछन्द इन्द्रो देवता यशस्कामस्य यजमानस्य यजनीयप्रयोगे विनियोगः । पूर्णहोमं यशसा जुहोमि योऽस्मै जुहोति वरमस्मै ददाति । वरं वृणे यशसामामि लोके स्वाहेत्यनेन स्रुवेणैव होमः । इन्द्रायेदं न ममेति त्यागः । ततो वसोर्द्धारया होष्यामीति सङ्कल्प्य यजमानो वसोर्द्धारां जुहुयात् ।

मन्त्रास्तु—अग्निमीळे इति नवानां मधुच्छन्दा अग्निर्गायत्रीवसोर्द्धारायां विनियोगः । विष्णोर्नुकमिति षण्णां दीर्घतमा विष्णुस्त्रिष्टुप् । आ ते पितरिति पञ्चदशानां गृत्समदो रुद्रस्त्रिष्टुप् । स्वादिष्ठयेति नवानां मधुच्छन्दः पवमानसोमो गायत्री । महावैश्वानरसाम्नो महावैश्वानर ऋषिर्वैश्वानरो देवता पथ्याबृहतीछन्दः । ज्येष्ठसाम्नो भरद्वाजो ऋषिर्वैश्वानरो देवता त्रिष्टुप्छन्दः वसोर्द्धारां जुहोतीत्यनुवाकमपि पठन्ति शिष्टाः । एवं वसोर्द्धारां हुत्वा पूर्णपात्रविमोकादि च यथाशाखं समाप्याऽऽचार्यसहिता ऋत्विजः सर्वौषधीभिरनुलिप्ताङ्गं पत्नीपुत्रादिसहितं यजमानं स्वस्वशाखीयैर्मन्त्रैर्नवग्रहपीठसमीपस्थकलशोदकेन सम्पातकलशोदकेन वाऽभिषिञ्चेयुः पौराणैश्च ।

ते च—सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ॥१॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥२॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ।
ब्रह्मणा सहिताः सर्वे दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥३॥

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ॥४॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः ।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुध-जीव-सितार्कजाः ॥५॥
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।
देव-दानव-गन्धर्वा यक्ष-राक्षस-पन्नगाः ॥६॥
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ।
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥७॥
अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥८॥
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नगाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धय इति ॥९॥

तच्छं योरावृणीमह इति । ततो यजमानः स्नात्वा शुक्लमाल्याम्बरधर आचार्यादीन् सम्पूज्य तेभ्यो दक्षिणां दद्यात् । तत्राऽऽचार्याय धेनुम् । ब्रह्मणे कृष्णमनड्वाहम् । एवं सदस्यर्त्विद्द्वारपालादिभ्यो यथाशक्ति । तथा—

धेनुः शंखस्तथाऽनड्वान् हेम वासो हयः क्रमात् ।
कृष्णा गौरायसं छागं एता वै दक्षिणाः क्रमात् ॥

ब्रह्मानुद्दिश्य देयाः । ततः शक्त्या ब्राह्मणान्भोजयेत्, सङ्कल्पयेद्वाऽशक्तौ । ततो दीनानाथेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दत्वा मण्डपदेवतानां ग्रहपीठदेवतानां चोत्तरपूजां कृत्वा यान्तु देव गणाः । अभ्यारमिद्द्रवो । उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति ता उत्थाप्य विसृज्य मण्डपादीन् प्रतिमादींश्च सर्वान् सम्भारानाचार्याय प्रतिपाद्य, यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या, प्रमादात्कुर्वतामिति पठित्वा कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा विप्राशिषो गृहीत्वा तान् नमस्कृत्य सुहृद्युतो भुञ्जीतेति सर्वं शिवम् ।

इति श्रीभट्टशङ्करात्मजनीलकण्ठकृते शान्तिपरिभाषाप्रयोगः ।

## * अथ ग्रहयोगशान्तिः *

यामले–दुर्भिक्षादि भयं चैव चतुर्ग्रहसमन्वये ।
महारोगभयं राष्ट्रक्षयो वृष्टिविनाशनम् ॥१॥
पञ्चग्रहसमा योगे दुर्भिक्षं संकरादिकम् ।
जनक्षयो नृपवैरं गर्भनाशस्तु जायते ॥२॥
ग्रहषट्कसमायोगे मन्त्रिणो मरणं भवेत् ।
पश्वश्वादि भयं सर्वं सङ्करादि जनक्षयः ॥३॥
पट्टराज्ञीविनाशो वा महाभयमथाऽपि वा ।
सप्तग्रहसमायोगे क्षितीशमरणं ध्रुवम् ॥४॥
जगत्प्रलयमेवाऽपि तदा निर्मानुषं जगत् ।
अत ऊर्ध्वं महोत्पातनानादुःखमहाकुलम् ॥५॥
सूर्यः स्याद्व्यतिरिक्तश्चेत्तदा योगो महाद्भुतः ।
विना चन्द्रेण योगोऽपि जगत्प्रलयकारणम् ॥६॥
तद्दक्षजातजन्तूनां महारोगो महाभयम् ।
अर्थनाशः स्थाननाशो मानहानिर्नृपीडनम् ॥७॥
वातपित्तादिसम्भूतमहापीडा महद्भयम् ।
समा योगग्रहा नृणां दोषान्कुर्वन्ति सर्वदा ॥८॥
षण्मासाभ्यन्तरे वाऽपि आयुर्हानिः श्रियस्तथा ।
जन्माष्टद्वादशे राशौ चतुर्थे पञ्चमेऽपि वा ॥९॥
पूर्वोक्तफलमेवात्र तस्माच्छान्तिं प्रयत्नतः ।
कुर्याद्दोषानुसारेण वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥१०॥
तत्तद्ग्रहाकृतिं कृत्वा सौवर्णेन प्रयत्नतः ।
सुवर्णेन तदर्द्धेन पादेनाऽपि कनीयसीम् ॥११॥
वित्तशाठ्यं न कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं शक्तितो नरैः ।
पूर्वोक्तलक्षणेनैव ग्रहमूर्तिं च कारयेत् ॥१२॥

ग्रहस्यैकैककलशं ग्रहयोगप्रमाणतः ।
कारयेत्कुम्भमेकं वा निर्व्रणं सुदृढं नवम् ॥१३॥
ग्रहस्येशानदिग्भागे शुद्धदेशे समस्थले ।
कुण्डे वा स्थण्डिले वाऽपि होमं कुर्याद् विधानतः ॥१४॥
तस्य पूर्वोत्तरे देशे पूजास्थानं प्रकल्पयेत् ।
चतुरस्रं हस्तमात्रं स्थण्डिलं तण्डुलेन तु ॥१५॥
लिखेद्ग्रहाकृतिं तत्र स्थापयेत्प्रतिमां ततः ।
आधप्रत्यधिदेवादीन् दक्षिणोत्तरतः क्षिपेत् ॥१६॥
उक्तगन्धैस्तथा पुष्पैस्तत्तन्मान्यैः फलैरपि ।
तत्तद्ग्रहोक्तमन्त्रेण पूर्वोक्तेनैव पूजयेत् ॥१७॥
स्वस्तिवाचनपूर्वेण आचार्य ऋत्विजैः सह ।
ग्रहपूजादिकं कृत्वा नैवेद्यान्तं समर्पयेत् ॥१८॥
ततो होमं प्रकुर्वीत स्वगृह्योक्तविधानतः ।
चतुर्थ्यन्तं प्रकुर्वीत कलशस्थापनं ततः ॥१९॥
पूर्वोक्तविधानेन शुद्धतोयेन पूरयेत् ।
पञ्चामृतं पञ्चगव्यं पञ्चत्वक् पञ्चपल्लवम् ॥२०॥
तत्र मन्त्रैर्विनिक्षिप्य औषधानि विनिक्षिपेत् ।
तत्तद्ग्रहोक्तविधना मूल्यान्यादाय निःक्षिपेत् ॥२१॥
अब्लिङ्गैर्वारुणैर्वाऽपि कलशं पूरयेद्गुरुः ।
तत्तद्ग्रहोक्तविविधैस्तत्तन्मन्त्रैर्हुनेदथ ॥२२॥
चर्वाज्ये जुहुयात्पश्चात्तिलाहुतिमथाचरेत् ।
अथ स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत् ॥२३॥
भद्रासनोपविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजैः ।
कलशस्योदकेनैवमभिषेकं समाचरेत् ॥२४॥
योगग्रहोक्तमन्त्रैश्च अधिप्रत्यधिमन्त्रतः ।

नवग्रहोक्तमन्त्रैश्च जातवेदादिपञ्चकैः ॥२५॥
त्रियम्बकेन मन्त्रेण क्षेत्रस्य पतिना अपि ।
यत इन्द्रद्वयेनैव लोकपालाष्टकैरपि ॥२६॥
सुरास्त्वा इति मन्त्रेण येन देवादयः क्रमात् ।
अन्यैश्च पुण्यसूक्तैश्च अभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥
अभिषेकाप्लुतं वस्त्रमाचार्याय निवेदयेत् ।
ततः शुक्लाम्बरधरः कुर्यादाज्यावलोकनम् ॥२८॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्धेनुं शङ्खादिकानपि ।
तदभावे यथाशक्ति हिरण्यमपि दापयेत् ॥२९॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्यथाविभवसारतः ।
एवं यः कुरुते भक्त्या ग्रहदोषविवर्जितः ॥३०॥
पूर्वोक्तसर्वदोषैश्च विमुक्तः पुत्रवान् सुखी ।
आयुरैश्वर्यसम्पन्नो जीवेद्वर्षशतं नरः ॥३१॥
इह लोके सुखी भूत्वा पश्चाच्छिवपुरं व्रजेत् ।
इति ग्रहयोगशान्तिः ॥

अथ ग्रहस्नानानि ॥ विष्णुधर्मोत्तरे—

मञ्जिष्ठा-मदमातङ्गे कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् ।
पूर्णकुम्भे कृतं ताम्रे सूर्यस्नानं विधीयते ॥१॥

मदमातङ्गम् = गजमदः ।

उशीरं च शिरीषं च कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् ।
शङ्खन्यस्तमिदं स्नानं चन्द्रदोषविनाशनम् ॥२॥
खदिरं देवदारुं च तिलानामलकानि च ।
पूर्णकुम्भे कृतं रौप्ये भौमपीडाविनाशनम् ॥३॥
नदीसङ्गमतोयानि तन्मृदा सहितानि च ।
न्यस्तानि कुम्भे माहेये बुधपीडाविनाशनम् ॥४॥

माहेये = मृन्मये ।

औदुम्बरं तथा बिल्वं वटमामलकं तथा ।
न्यस्तं तु कुम्भे सौवर्णे जीवपीडाविनाशनम् ॥५॥
गोरोचना नागमदः शतपुष्पा शतावरी ।
विन्यस्ता राजते कुम्भे शुक्रपीडाविनाशनम् ॥६॥
तिलान् माषान् प्रियङ्गुं च गन्धपुष्पं तथैव च ।
न्यस्तं कार्ष्णायसे कुम्भे सौरिपीडाविनाशनम् ॥७॥
गुग्गुलं हिङ्गुलं तालं शुभां चैव मनःशिलाम् ।
मृन्मे च माहिषे न्यस्येद्राहुपीडाविनाशनम् ॥८॥

तालम् = हरितालम् ।

वराहनिहतां राजन् ! पर्वताग्रमृदं तथा ।
छागक्षीरं खड्गपात्रे केतुपीडाविनाशनम् ॥९॥

वराहनिहता = वराहोत्खाता । खड्गो = गण्डकः ।

उक्तं ग्रहस्नानमिदं सर्वपीडाविनाशनम् । इति ग्रहस्नानानि ॥

अथाऽऽदित्यशान्तिः । भविष्ये—

आदित्यवारं हस्तेन पूर्वं गृह्य विचक्षणः ।
मन्त्रोक्तविधिना सर्वं कुर्यात्पूजादिकं रवेः ॥१॥
प्रत्यर्कं सप्तनक्तानि कृत्वा भक्तिपरो नरः ।
ततस्तु सप्तमे प्राप्ते कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥२॥
भास्करं शुद्धसौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः ।
ताम्रपात्रे स्नापयित्वा रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥३॥
रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ।
घृतेन स्नापयित्वा च लड्डुकान् विनिवेद्य च ॥४॥
होमं घृततिलैः कुर्याद्रविनाम्ना च मन्त्रवित् ।
समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव च ॥५॥

होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।
मन्त्रेणाऽनेन विदुषे ब्राह्मणाय प्रदापयेत् ॥६॥
आदिदेव ! नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते ! दिवाकर ! ।
त्वं रवे ! तारयस्वाऽस्मांस्तस्मात्संसारसागरात् ॥७॥
व्रतेनाऽनेन राजेन्द्र ! भवेदारोग्यमुत्तमम् ।
द्रव्य-सम्पत्सुतप्राप्तिरिति पौराणिका विदुः ॥८॥
अपि संवादिनी चेयं शान्तिः पुष्टिः सदा नृणाम् ।
सूर्यपीडा सुघोरासु कृता शान्तिः शुभप्रदा ॥
इत्यादित्यशान्तिः ॥१॥

अथ चन्द्रशान्तिस्तत्रैव—

तद्वच्चित्रासु संगृह्य सोमवारं विचक्षणः ।
अनेनैवोक्तविधिना कुर्यात्पूजादिकं विभोः ॥१॥
सप्तमे तु ततः प्राप्ते कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
कांस्यपात्रेऽथ संस्थाप्य सोमं रजतसम्भवम् ॥२॥
श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं श्वेतपुष्पैः प्रपूजितम् ।
पादुकोपानहच्छत्रं भोजनासनसंयुतम् ॥३॥
होमं घृततिलैः कुर्यात्सोमनाम्ना च मन्त्रवत् ।
समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥४॥
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।
दध्यन्नशिखिरे कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥५॥
मन्त्रेणाऽनेन राजेन्द्र ! सम्यग्भक्त्या समन्वितः ।
महादेवजातिवल्लीपुष्पगोक्षीरपाण्डुर ! ॥६॥
सोम ! सौम्यो भवाऽस्माकं सर्वदा ते नमो नमः ॥
इति चन्द्रशान्तिः ॥२॥

अथ मङ्गलशान्तिः—

स्वात्यामङ्गारकं गृह्य क्षमायां नक्तभोजनम् ।
सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते हैमं ताम्रे निवेश्य वै ॥१॥

क्षमा = भूः ।

रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं कुंकुमेनानुलेपितम् ।
निवेद्य भक्तकं सारं पुष्पधूपाक्षतादिभिः ॥२॥
होमं घृततिलैः कुर्यात्कुजनाम्ना च मन्त्रवित् ।
समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥३॥
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।
मन्त्रेणाऽनेन तं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥४॥
कुज ! कुमभवोऽपि त्वं मङ्गलः परिपठ्यसे ।
अमङ्गलं निहत्याशु सर्वदा यच्छ मङ्गलम् ॥५॥
एवं कृते भौमकृतं दुष्कृतं शान्तिमाप्नुयात् ।
कर्त्तव्यं भौमपीडासु तस्मात्प्रयतमानसैः ॥६॥

इति भौमशान्तिः ॥३॥

अथ बुधशान्तिः—

विशाखासु बुधं गृह्य सप्तनक्तान् यथाऽऽचरेत् ।
बुधं हेममयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने ॥१॥
शुक्लवस्त्रयुगच्छन्नं शुक्लमाल्यानुलेपनम् ।
गुडौदनोपसंहारं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२॥
बुध ! त्वं बुद्धिजननो बोधवान् सर्वदा नृणाम् ।
तत्त्वावबोधं कुरु मे सोमपुत्र ! नमो नमः ॥३॥
होमं घृततिलैः कुर्याद् बुधनाम्ना च मन्त्रवित् ।
समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥४॥
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।
बुधशान्तिरियं प्रोक्ता बुधवैकृतनाशिनी ॥५॥

बुधदोषेषु कर्त्तव्या तथा शान्तिकपौष्टिके ॥

इति बुधशान्तिः ॥

अथ गुरोः शान्तिः—

गुरुं चैवानुराधासु पूजयेद्भक्तितो नरः ।
पूर्वोक्तविधियोगेन सप्तनक्तान्यथाचरेत् ॥१॥
हैमं हेममये पात्रे स्थापयित्वा बृहस्पतिम् ।
पीताम्बरयुगच्छन्नं पीतयज्ञोपवीतिनम् ॥२॥
पादुकोपानहच्छत्रकमण्डलुविभूषितम् ।
पूजयेत्पीतकुसुमैः कुङ्कुमेन विलेपितम् ॥३॥
धूपदीपादिभिर्दिव्यैः फलैश्चन्दनतण्डुलैः ।
खण्डखाद्योपहारैश्च गुरोरग्रे निवेदयेत् ॥४॥
धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ! ज्ञानविज्ञानपारग ! ।
विबुधार्त्तिहराचिन्त्य देवाचार्य ! नमोऽस्तु ते ॥५॥
होमं घृततिलैः कुर्याद्गुरुनाम्ना च मन्त्रवित् ।
समिधाऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥६॥

समिधोऽत्राऽश्वत्थस्य ।

होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन च ।
एतद्व्रतं महापुण्यं सर्वपापहरं शिवम् ॥७॥
तुष्टिपुष्टिकरं नृणां गुरुवैकृतनाशनम् ।
विषमस्थे गुरौ कार्या महाशान्तिरियं नृभिः ॥८॥

इति बृहस्पतिशान्तिः ।

अथ गुरुपूजा ॥ स्कान्दे—

कन्याविवाहकाले तु शुद्धिर्यस्या न विद्यते ।
ब्राह्मणस्योपनयने यस्य स्यादुत्थितो गतः ॥१॥

उत्थितः = प्राप्तः ॥

एभिः पूजा गुरोः कार्या विधिवद्भक्तिभावितैः ।
मदन्ती-कामपुष्पाणि पात्रं पालाशसर्षपाः ॥२॥

मदन्ती = यूथिका । कामो = मदनवृक्षाख्यः ॥

गुडूची वा स्वपामार्गं विडङ्गं शङ्खिनी वचा ।
सहदेवी विष्णुक्रांता सर्वौषध्यः शतावरी ॥३॥
कुष्ठं मांसं हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम् ।
वचा कर्पूरमुस्तं च सर्वौषध्यः प्रकीर्तिताः ॥४॥
तथैवाऽश्वत्थशृङ्गा च पञ्चगव्यं जलं तथा ।
नूतनं सोदकुम्भं च पीतवस्त्रसमन्वितम् ॥५॥
पञ्चरत्नैः समायुक्तमीशान्यां स्थापितेऽनलात् ।
या ओषधीति मन्त्रेण सर्वास्तस्मिन्निनिक्षिपेत् ॥६॥
कुम्भस्योपरि भागे तु स्थापयित्वा बृहस्पतिम् ।
सुवर्णपात्रे सौवर्णीं प्रतिमां तु युधिष्ठिर ! ॥७॥
कारयेच्च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
पीतवस्त्रयुगच्छन्नां पीतयज्ञोपवीतिनीम् ॥८॥
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैस्ततो होमं समाचरेत् ।
समिधोऽश्वत्थवृक्षस्य होतव्याऽष्टोऽत्तरं शतम् ॥९॥
तिलव्रीहियवान्मिश्रं होतव्यं च यथाक्रमम् ।
बृहस्पतेति मन्त्रेण ऋषिछन्दः समन्वितः ॥१०॥
मन्त्रेणाऽनेन जुहुयाद्धान्यपूगं च यत्नतः ।
ततो होमावसाने तु पूजयेच्च बृहस्पतिम् ॥११॥
पीतगन्धैस्तथा पुष्पैर्धूपैर्दीपैश्च भक्तितः ।
दध्योदनं च नैवेद्यं फलताम्बूलसंयुतम् ॥१२॥
मन्त्रेणाऽनेन कौन्तेय ! समभ्यर्च्य पुनः पुनः ।
नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ ! वाक्पतेऽथ बृहस्पते ! ॥१३॥

क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः ।
पूजयित्वा सुराचार्य्यं पश्चादर्घं निवेदयेत् ॥१४॥

गम्भीरदृढरूपाङ्ग ! देवेज्य ! सुमते ! प्रभो ! ।
नमस्ते वाक्पते ! शान्त ! गृहाणाऽर्घ्यं बृहस्पते ! ॥१५॥ अर्घमन्त्रः ।

अर्घं दत्वा सुरेशस्य जपहोमं समापयेत् ।
भक्त्याय ते सुराचार्य ! होमपूजादि संस्कृतम् ॥१६॥
तत्त्वं गृहाण शान्त्यर्थं बृहस्पते ! नमो नमः ।

संकल्पमन्त्रः–मन्त्रेणाऽनेन संकल्प्य पश्चात्सम्प्रार्थयेन्नृप ! ॥१७॥

जीवो बृहस्पतिः सूरिराचार्यो गुरुरङ्गिराः ।
वाचस्पतिर्देवमन्त्री शुभं कुर्यात्सदा मम ॥१८॥

प्रार्थनामन्त्रः–एवं सम्प्रार्थयेद्देवमाचार्यं च प्रपूजयेत् ।
सर्वोपचारसंयुक्तां प्रतिमां तां युधिष्ठिर ! ॥१९॥
प्रणम्य च गवा युक्तामाचार्याय निवेदयेत् ।
अथाऽऽचार्यस्तु नियतो वेदवेदाङ्गपारगः ॥२०॥
यजमानं सपत्नीकं शान्तचित्तं जितेन्द्रियम् ।
कुम्भोदकं गृहीत्वा तु मन्त्रैरेतैः प्रसिञ्चयेत् ॥२१॥
इदमापोथमन्त्रेण जामदग्निमृचा तथा ।
या ओषधीरश्वावतीः कूष्माण्डैश्चाभिषेचयेत् ॥२२॥
पश्चात्सम्भोजयेद्विप्रान् यथाशक्त्या युधिष्ठिर !
एवं कृत्वा गुरोः पूजां सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२३॥
संक्रान्तावपि कौन्तेय ! तथा स्वाभ्युदयेषु च ।
कुर्वन् बृहस्पतेः पूजामभीष्टं फलमाप्नुयात् ॥२४॥

संक्रान्तौ = गुरुसंक्रान्तौ ।

इति गुरुपूजा ।

अथ शुक्रशान्तिर्भविष्ये—

शुक्रं ज्येष्ठासु संगृह्य क्षमायां नक्तभोजनम् ।

क्षमा=भूः ।

गुरूक्तक्रममार्गेण द्विजसन्तर्पणेन च ॥ १ ॥
सप्तमे त्वथ सम्प्राप्ते रौप्यं शुक्रं तु कारयेत् ।
वंशपात्रे च संस्थाप्य पूजयेत्सितपंकजैः ॥ २ ॥
तदभावे सितैः पुष्पैस्ताम्बूलैश्चन्दनेन वा ।
अग्रे तस्य प्रदातव्यं पायसं घृतसंप्लुतम् ॥ ३ ॥
दद्यादनेन मन्त्रेण ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।
भार्गवो भर्गशुक्रस्य शुचिः श्रुतिविशारदः ॥ ४ ॥
हित्वा ग्रहकृतान्दोषानायुरारोग्यदोऽस्तु सः ।
होमं घृततिलैः कुर्याच्छुक्रनाम्ना च मन्त्रवित् ॥ ५ ॥
समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा ।
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन च ॥ ६ ॥

अथ प्रतिशुक्रादिशान्तिः । तत्रैव मात्स्ये—

अथाऽतः शृणु भूपाल ! प्रतिशुक्रप्रशान्तये ।
यात्रारम्भेऽवसाने च तथा शुक्रोदये सति ॥ १ ॥
शुक्रपूजा प्रकर्त्तव्या तां निशामय भारत !
राजते वाऽथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथ वा पुनः ॥ २ ॥
शुक्लपुष्पाम्बरयुते श्वेततण्डुलपूरिते ।
निधाय राजतं शुक्रं शुचिमुक्ताफलान्वितम् ॥ ३ ॥
महाश्वेतसमायुक्तं सामगाय निवेदयेत् ।
नमस्ते सर्वलोकेश ! नमस्ते भृगुनन्दन ! ॥ ४ ॥
देव ! सर्वार्थसिध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।
दत्त्वैवमर्घ्यं कौन्तेय ! प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ ५ ॥

एवं शुक्रोदये कुर्याद्यात्रादिषु च भारत ! ।
तद्वद्वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर ! ॥६॥
सौवर्णपात्रे सौवर्णममरेशं पुरोहितम् ।
पीतपुष्पाम्बरधरं कृत्वा स्नात्वाऽथ सर्षपैः ॥ ७ ॥
पालाशाश्वत्थभङ्गेन पञ्चगव्यतिलेन तु ।
भङ्गः=पल्लवः ।
पीताङ्गरागवसनो घृतहोमं तु कारयेत् ॥ ८ ॥
प्रणम्य तां गवा सार्द्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ ! वाक्पते ते बृहस्पते ! ॥ ९ ॥
क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः ।
संक्रान्तावपि कौन्तेय ! यात्रास्वभ्युदयेषु च ॥१०॥
कुर्वन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्नुते ।
अथवा मौक्तिकान्येव सुवृतानि बृहन्ति च ॥११॥
भार्गवाङ्गिरसौ चिन्त्य तान्येव प्रतिपादयेत् ।
इति प्रतिशुक्रादिशान्तिः ।

अथ शनि-राहु-केतुशान्तयः । भविष्ये-

शनैश्चरं राहु-केतू लोहपात्रेषु निक्षिपेत् ।
कृष्णागुरुः स्मृतो धूपो दक्षिणा च स्वशक्तितः॥ १ ॥
यथाक्रमं शमीदूर्वाकुशानां समिधः स्मृताः ।
सप्तमे त्वथ सम्प्राप्तेन वर्णान् वाऽथ कारयेत् ॥ २ ॥
कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नमेकैकं कारयेद्बुधः ।
मृगनाभ्या समालभ्य कुशरान्विनिवेश्य च ॥ ३ ॥
होमावसाने तत्सर्वं ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
शनैश्चर ! नमस्तेऽस्तु नमस्ते राहवे तथा ॥ ४ ॥
केतवे च नमस्तुभ्यं सर्वे शान्तिं प्रयच्छतु ।
एवं कृते भवेद्यत्तु तन्निबोध नृपोत्तम ! ॥ ५ ॥

यदि भौमो रविसुतो भास्करो राहुणा सह ।
केतुश्च मूर्त्तौ तिष्ठन्ति सर्वे पीडाकरा ग्रहाः ॥ ६ ॥
अनेन कृतमात्रेण सर्वे शाम्यन्त्युपद्रवाः ।
इति शन्यादिशान्तिः ।

भविष्योत्तरे–ततो मन्दस्य दिवसे स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ।
कार्यं देयं च विप्राय तैलमभ्यङ्गहेतवे ॥ १ ॥
यस्तु सम्वत्सरं यावत्प्राप्ते शनिदिने रतः ।
तैलं ददाति विप्राणां स्वशक्त्याऽभ्यज्यतेऽपि वा ॥२॥
ततः सम्वत्सरस्यान्ते प्राप्ते तस्य दिने पुनः ।
लौहं घटार्पितं सौरिं तैलकुम्भे विनिक्षिपेत् ॥ ३ ॥
लौहे वा मृन्मये वाऽथ कृष्णवस्त्रयुगान्वितम् ।
कृष्णगोदक्षिणायुक्तं कृष्णकम्बलशायितम् ॥ ४ ॥
स्वयमभ्यङ्गतः स्नात्वा कृष्णपुष्पैस्तमर्चयेत् ।
सुगन्धिगन्धपुष्पैश्च कृसरान्नैस्तिलोदनैः ॥ ५ ॥
पूजयित्वा सूर्यपुत्रं क्षमस्वेति पुनः पुनः ।
कृष्णाय द्विजमुख्याय तदभावे नराय च ॥ ६ ॥
देयः शनैश्चरो भक्त्या मन्त्रेणाऽनेन वै द्विज !
क्रूरावलोकनवशाद्भवनं नाप्नोति यो ग्रहो रुष्टः॥ ७ ॥
तुष्टो धनकनकसुखं ददाति सोऽस्मान् शनैश्चरः पातु ।
यः पुनर्नष्टराज्याय नराय परितोषितः ॥ ८ ॥
स्वप्ने ददौ निजं राज्यं समे सौरिः प्रसीदतु ।
कोणं नीलाञ्जनप्रख्यं मन्दचेष्टाप्रसारिणम् ॥ ९ ॥
छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरम् ।
नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय॥१०॥
श्रुत्वा रहस्यं भव कामदस्त्वं फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र !
नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृशदेहाय वै नमः ॥११॥

शनैश्चराय क्रूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने ।
य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टिं ददात्यसौ ॥१२॥
तदीयं तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति ।

इति शनिव्रतम् ।

स्कान्दे—श्रावणे मासि संजाते शोभने शनिवासरे ।
लोहरूपं शनिं कृत्वा स्नाप्य पञ्चामृतैर्नवैः ॥ १ ॥
पुष्पैरष्टविधैर्धूपैः फलैश्चैव विशेषतः ।
मन्त्रैः प्रपूजयेदेतैः क्रमेण ग्रहमुत्तमम् ॥ २ ॥
कोणस्तु पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रो यमोऽन्तकः ।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः ॥ ३ ॥
शन्नो देवीति सर्वत्र वैदिकेन च पूजयेत् ।
पूजयित्वा च नैवेद्यं ततः कुर्यात्क्रमेण तु ॥ ४ ॥
संयावभक्तं प्रथमे द्वितीये पायसं शुभम् ।
तृतीये त्वम्बिली कार्या चतुर्थे पूरिका शुभा ॥ ५ ॥

अम्बिली=तक्रतण्डुलपिष्टादिनिर्मितो लेह्यविशेषः ।

इति शनिस्तोत्रम् ।

ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुतिं चक्रे स बालकः ।
पिप्पलादो द्विजश्रेष्ठः प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ॥
नमस्ते कोणसंस्थाय पिङ्गलाय नमोऽस्तु ते ।
नमस्ते बभ्रुरूपाय कृष्णाय च नमोऽस्तु ते ॥
नमस्ते रौद्रदेहाय नमस्ते चान्तकाय च ।
नमस्ते यमसंज्ञाय नमस्ते सौरये विभो ! ॥ ३ ॥
नमस्ते मन्दसंज्ञाय शनैश्चर ! नमोऽस्तु ते ।
प्रसादं कुरु देवेश ! दीनस्य प्रणतस्य च ॥ ४ ॥

शनैश्चरउवाच–परितुष्टोऽस्मि ते वत्स ! स्तोत्रेणाऽनेन साम्प्रतम् ।
वरं वरय भो वत्स ! येन यच्छामि वाञ्छितम् ॥ ५ ॥
पिप्पलाद उवाच–अद्य प्रभृति नो पीडा बालानां रविनन्दन !
त्वया कार्या महाभाग ! न स्वकीया कथञ्चन ॥ १ ॥
यावद्वर्षाष्टकं जातं मम बाल्येन सूर्यज !
स्तोत्रेणाऽनेन योऽन्यस्त्वां ब्रूयात्प्रातरुपस्थितः ॥ २ ॥
तस्य पीडा न कर्त्तव्या देयो लाभो महाभुज !
अर्द्धाष्टमिकया योगे तावके संस्थिते नरः ॥ ३ ॥

सार्द्धसप्तवर्षपर्यन्तं द्वादशजन्मद्वितीयराशिमिर्यः शनैश्चरयोगः सोऽर्द्धाष्टमिकया योग इत्युच्यते ।

तव वारे तु सम्प्राप्ते यस्तिलान् होमसंयुतान् ।
शक्त्या ददाति नो तस्य पीडा कार्या त्वया विभो ! ॥ ४ ॥
कृष्णां गां यस्तु विप्राय तवोद्देशेन यच्छति ।
अर्द्धाष्टमिकया पीडा तस्य कार्या त्वया न च ॥ ५ ॥
शमीसमिद्भिर्यो होमं तवोद्देशेन निर्वपेत् ।
तथा कृष्णतिलैश्चैव कृष्णपुष्पानुलेपनैः ॥ ६ ॥
पूजां करोति यस्तुभ्यं धूपं वै गुग्गुलं दहेत् ।
कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य त्याज्या तस्य त्वया व्यथा ॥ ७ ॥
सूत उवाच–एवमुक्तः शनिस्तेन बाढमित्यवजल्प्य च ।
नारदं समनुज्ञाय जगाम निजसंश्रयम् ॥ ८ ॥

इति शनैश्चरशान्तिः ॥

## अथार्कविवाहः।

प्रयोगरत्ने मात्स्ये—

तृतीयां मानुषीं नैव चतुर्थीं यः समुद्वहेत्।
पुत्रपौत्रादिसम्पन्नः कुटुम्बी साऽग्निको वरः॥ १॥
उद्वहेद्रतिसिद्ध्यर्थं तृतीयां न कदाचन।
मोहादज्ञानतो वाऽपि यदि गच्छेत्तु मानुषीम्॥ २॥
नश्यत्येव न सन्देहो गर्गस्य वचनं यथेति।

तत्रैव संग्रहे-तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत्।
चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत्॥ १॥
आदित्यदिवसे वाऽपि हस्तर्क्षे वा शनैश्चरे।
शुभे दिने वा पूर्वाह्णे कुर्यादर्कविवाहकम्॥ २॥

व्यासः-स्नात्वाऽलंकृतवासास्तु रक्तगन्धादिभूषितम्
सपुष्पफलशाखैकमर्कगुल्मं समाश्रयेत्॥ १॥
सल्लक्षणेन संयुक्तमर्कं संस्थाप्य यत्नतः।
अर्ककन्याप्रदानार्थमाचार्यं कल्पयेत्पुरा॥ २॥
अर्कसन्निधिमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत्।
नान्दीश्राद्धे हिरण्येन अष्टवर्गान्प्रपूजयेत्॥ ३॥
पूजयेन्मधुपर्केण वरं विप्रस्य हस्ततः।
यज्ञोपवीतं वस्त्रं च हस्तकर्णादिभूषणम्॥ ४॥
उष्णीषगन्धमाल्यादि वरायाऽस्मै प्रदापयेत्।
स्वशाखोक्तप्रकारेण मधुपर्कं समाचरेत्॥ ५॥

ब्राह्मे-ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा सुपुष्पफलसंयुतम्।
परीक्ष्य यत्नतोऽधस्तात्स्थण्डिलादि यथाविधि॥६॥

कुर्यादिति शेषः।

कृत्वार्कं पुरतस्तिष्ठन् प्रार्थयेत्तद्द्विजोत्तमः ।
त्रिलोकवासिन् ! सप्ताश्व ! छायया सहितो रवे ! ॥ ७ ॥
तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ।
तत्राऽध्यारोप्य देवेशं छायया सहितं रविम् ॥ ८ ॥
वस्त्रैर्मान्यैस्तथा गन्धैस्तन्मन्त्रेणैव पूजयेत् ।
तत्रैव श्वेतवस्त्रेण तथा कार्पासतन्तुभिः ॥ ९ ॥
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य अब्लिङ्गैरभिषिच्य च ।
गुडौदनं तु नैवेद्यं ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥ १० ॥
व्यासः-अर्कं प्रदक्षिणी कुर्वन् जपेन्मन्त्रमिमं बुधः ।
मम प्रीतिकरायेयं मया सृष्टा पुरातनी ॥ ११ ॥
अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रति रक्षतु ।
पुनः प्रदक्षिणीकुर्यान्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥ १२ ॥
नमस्ते मङ्गले देवि ! नमः सवितुरात्मजे !
त्राहि मां कृपया देवि ! पत्नीत्वं मे इहागता ॥ १३ ॥
अर्कत्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च ।
वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धनः ॥ १४ ॥
तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय ।
ततश्च कन्यावरणं त्रिपुरुषं कुलमुद्धरेत् ॥ १६ ॥
आदित्यः सविता चार्कः पुत्री पौत्री च नप्त्रिका ।
गोत्रं काश्यप इत्युक्तं लोके लौकिकमाचरेत् ॥ १६ ॥
मुहूर्ते निरीक्षेत स्वस्तिसूक्तमुदीरयन् ।
आशीर्भिः सहितैः कुर्यादाचार्यप्रमुखैर्द्विजैः ॥ १७ ॥
अथाचार्यं समाहूय विधिना तन्मुखाच्च ताम् ।
प्रतिगृह्य ततो होमं गृह्योक्तविधिना चरेत् ॥ १८ ॥
व्यासः-अर्ककन्यामिमां विप्र ! यथाशक्तिविभूषिताम् ।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र ! समाश्रय ॥ १९ ॥

अन्यत्तत्तकर्माणि कृत्वा कङ्कणपूर्वकम्।
यावत्पञ्चवृता सूत्रं तावदर्कं प्रवेष्टयेत् ॥२०॥
स्वशाखोक्तेन मन्त्रेण गायत्र्या वाऽथवा जपेत्।
पञ्चीकृत्य पुनः सूत्रं स्कन्धे बध्नाति मन्त्रतः ॥२१॥
बृहत्सामेति मन्त्रेण सूत्ररक्षां प्रकल्पयेत्।
अर्कस्य पुरतः पश्चाद्दक्षिणोत्तरतस्तथा ॥२२॥
कुम्भांश्च निक्षिपेत्पश्चादाग्नेयादिचतुष्टये।
सवस्त्रं प्रतिकुम्भं च त्रिसूत्रेणैव वेष्टयेत् ॥२३॥
हरिद्रा-गन्धसंयुक्तं पूरयेच्छीतलं जलम्।
प्रतिकुम्भं महाविष्णुं सम्पूज्य परमेश्वरम् ॥२४॥
पाद्यार्घादिनिवेद्यान्तं कुर्यान्नाम्नैव मन्त्रवित्।

अत्र शौनकोक्तो होमप्रकारः—

तृतीये स्त्रीविवाहे तु सम्प्राप्ते पुरुषस्य तु।
अर्के विवाहं वक्ष्यामि शौनकोऽहं विधानतः ॥ १ ॥
अर्कसन्निधिमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत्।
नान्दीश्राद्धं प्रकुर्वीत स्थण्डिलं च प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥
अर्कमभ्यर्च्य सौर्य्या च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।

सौर्या = सूर्यदेवत्यया। आकृष्णेनेत्यनया।

स्वयं वाल्लं कृतस्तद्वत् वस्त्रमाल्यादिभिः शुभैः ॥ ३ ॥
अर्कस्योत्तरदेशे तु समन्वारब्ध एतया।

एतया = अर्ककन्यया।

उल्लेखनादिकं कुर्यादाघारान्तमतः परम् ॥ ४ ॥
आज्याहुतिं च जुहुयात्संगोभिरनयैकया।
यस्मै त्वा कामकामायेत्येतयर्चा ततः परम् ॥ ५ ॥
व्यस्ताभिश्च समस्ताभिस्ततश्च स्विष्टकृद्भवेत्।
परिषेचनपर्यन्तमयाश्चेत्यादिकं क्रमात् ॥ ६ ॥

प्रार्थनामन्त्रादिविशेषमाह व्यासः—

पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।
मया कृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा ॥ ७ ॥
अर्कापत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ।
इत्युक्त्वा शान्तिसूक्तानि जप्त्वा तं विसृजेत्पुनः ॥ ८ ॥
गोयुग्मं दक्षिणां दद्यादाचार्याय च भक्तितः ।
इतरेभ्योऽपि विप्रेभ्यो दक्षिणां चाऽपि शक्तितः ॥ ९ ॥
तत्सर्वं गुरवे दद्यादन्ते पुण्याहमाचरेत् ।

अथ प्रयोगः ॥ तृतीयोद्वाहात्प्राग्दिनचतुष्टयाधिकव्यवहिते रविवारे शनिवारे हस्तनक्षत्रे शुभदिनान्तरे वा ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा पुष्पफलयुतार्काधस्तात्स्थण्डिलं कृत्वाऽर्कपश्चिमत उपविश्य मासपक्षाद्युल्लिख्य मम तृतीयमानुषीविवाहजदोषापनुत्यर्थमर्कविवाहं करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृपूजन-वृद्धिश्राद्धाचार्यवरणानि कुर्यात् । तत्र वृद्धिश्राद्धं हेम्ना । अथाचार्येण पूजितो वरः ।

त्रिलोकवासिन् ! सप्ताश्व ! छायया रहितो रवे !
तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु ॥ १ ॥

इत्यर्कं सप्ताश्वार्कं । आकृष्णेनेति छायासहितं रविमावाह्य श्वेतवस्त्रसूत्राभ्यामावेष्ट्य सम्पूज्याऽऽपोहिष्ठेत्यादिभिरभिषिच्य गुडोदनताम्बूलादि समर्प्य प्रदक्षिणीकुर्वन्—

मम प्रीतिकरायेयं मया सृष्टा पुरातनी ।
अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टा अस्माकं प्रतिरक्षतु ॥ १ ॥ इतिपठेत्

द्वितीयप्रदक्षिणायां तु—

नमस्ते मङ्गले ! देवि ! नमः सवितुरात्मजे !
त्राहि मां कृपया देवि ! पत्नीत्वं मे इहागता ॥ २ ॥
अर्क ! त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वप्राणिहिताय च ।
वृक्षाणामादिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्द्धनः ॥ ३ ॥

तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय ॥ इति

तत आचार्येण मासपक्षाद्युल्लिख्य काश्यपगोत्रामादित्यस्य पुत्रीं सवितुः पौत्रीमर्कस्य प्रपौत्रीमिमामर्ककन्यामित्युक्ते वरः 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा' इति सूक्तं पठन्नर्कं निरीक्षेत । तत आचार्यो विप्रैः सहाशिषो दत्वाऽमुकगोत्रामुकशर्मणे संप्रददे । इत्यर्ककन्यां दत्वा—

अर्ककन्यामिमां विप्र ! यथाशक्तिविभूषिताम् ।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र! समाश्रय ॥ १ ॥

इति पठेत्—

वरस्तु यशो मे कामः समृद्ध्यतामिति प्रथमां धर्मो मे इति द्वितीयां यशोमे इति तृतीयाम् इति त्रीनक्षताञ्जलीनर्कोपरि क्षिप्त्वा गायत्र्या परित्वेत्यादिना वा पञ्चावृता सूत्रेणार्कमावेष्ट्य तत्सूत्रं पुनः पञ्चगुणं कृत्वाऽर्कस्य स्कन्धे बध्वा बृहत्सामेति रक्षां परिकल्प्यार्कस्य दिग्विदिक्ष्वष्टौ कुम्भान् संस्थाप्य वस्त्रेण त्रिसूत्रेण चावेष्ट्य हरिद्रागन्धाद्यन्तः क्षिप्त्वा तेषु नाम्ना महाविष्णुमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य आघारावाज्येनेत्यन्तमुक्त्वाऽत्र प्रधानं बृहस्पतिमग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन शेषेणेत्याद्युक्त्वाऽऽघारान्तेसंगोभिरङ्गिरा बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् अर्कविवाहहोमे विनियोगः ॥

ॐ सङ्गोभिराङ्गिरसो[1] नक्षमाणो भग इ वेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजया शूरिवाजौ स्वाहा ॥१॥

बृहस्पतय इदं न ममेति त्यजेत् । यस्मै त्वा वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप् अर्कविवाहहोमे विनियोगः ॥

ॐ यस्मै त्वा[2] कामकामाय वयं संप्राव्यजामहे ।
तमस्मभ्यं कामं ददस्व यथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा ॥ २ ॥

अग्नय इदं न मम । ततो व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा स्विष्टकृदादि कर्मशेषं समाप्यार्कं प्रदक्षिणीकृत्य ।

मया कृतमिदं कर्म स्थावरेण जरायुणा ।
अर्कापत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसीति ॥ १ ॥

---

१ ॐ बृहस्पतेति यजुर्वेदिनाम् । २ ॐ अग्निर्दूतमिति ।

प्रार्थ्याचार्याय गोयुग्ममन्येभ्यश्च विप्रेभ्यो यथाशक्ति दक्षिणां दत्वा शान्तिसूक्तं जप्त्वा पूज्योपस्करानाचार्याय दत्वा दिनचतुष्टयमग्निं कुम्भांश्च रक्षेत् । कुम्भेषु महाविष्णुं पूजयेच्च पञ्चमदिनकृत्यं ब्राह्मे-

चतुर्थे दिवसेऽतीते पूर्ववत्तां प्रपूज्य च ॥
विसृज्य होममग्निं च विधिना मानुषीं पराम् ।
उद्वहेदन्यथा नैव पुत्रपौत्रसमृद्धिमान् ॥ १ ॥

इति श्रीभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे शान्तिमयूखेऽर्कविवाहः ।

नारदः-कुलीर-वृष-चापान्त्य-नृ-युक्-कन्या- तुला-घटाः ।
राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्त्तवे ॥ १ ॥

कुलीरः = कर्कटः । चापम् = धनुः । अन्त्यः = मीनः । नृयुङ् = मिथुनम् । घटः = कुम्भः ।

स्मृतिचन्द्रिकायाम्—

शुक्लपक्षे सुशीला स्यात्कृष्णे पक्षे सा कुलटा भवेत् ।
कृष्णस्य दशमीं यावत् मध्यमं फलमादिशेत् ॥ १ ॥

तथा तत्रैव-अमा-रिक्ताऽष्टमी-षष्ठी-द्वादशी-प्रतिपत्स्वपि ।
परिघस्य च पूर्वार्द्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ २ ॥
सन्ध्यासूपप्लवे विष्ट्यामशुभं प्रथमार्त्तवम् ।
रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी ॥ ३ ॥
पतिव्रता क्लेशयुक्ता सूर्यवारादिषु क्रमात् ।

कश्यपस्तु-अष्टमी-षष्ठ्यमा-रिक्ता-द्वादशी-सङ्क्रमेऽपि वा ।
वैधृतौ व्यतीपाते च ग्रहणे चन्द्र-सूर्ययोः ॥ १ ॥
विष्ट्यां सन्ध्यासु निद्रायां दुर्भगा प्रथमार्त्तवा ।

नक्षत्रफलमाह गर्गः—सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता ।
धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसन्तानमोदिनी ॥ १ ॥
सुपुत्रा चैव दुःपुत्रा पितृवेश्मरता सदा ।
दीना प्रज्ञावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥ २ ॥

साध्वी पतिव्रता नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी ।
स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुण्या पौत्रादिसंयुता ॥ ३ ॥
नित्यं धनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता ।
मूकार्थाढ्या धनवती दस्रर्क्षादेः क्रमात्फलम् ॥ ४ ॥

स्मृतिरत्ने–शुभं चैव तु पूर्वाह्णे मध्याह्ने मध्यमं फलम् ।
अपराह्णे तु वैधव्यं पूर्वरात्रे शुभं भवेत् ॥ ५ ॥
मध्यरात्रे तु मध्यं स्यात्पररात्रे शुभान्विता ।

कश्यपः–मलिना मन्दवारे तु रात्रावपि तथैव चेति ।

स्मृत्यन्तरे-मध्याह्ने तु भवेद्वेश्या निशीथे विधवा भवेत् ॥

तथा-अमा-सङ्क्रान्ति-विष्ट्यां च व्यतीपाते च वैधृतौ ।
परिघस्य तु पूर्वार्द्धे षट् षट् गण्डातिगण्डयोः ॥ १ ॥
व्याघाते नवशूले तु नाड्यः पञ्च चतुर्दश ।
वैधव्यमर्थहानिं च सुतनाशं महद्भयम् ॥ २ ॥
वैधव्यं शत्रुवृद्धिं च दारिद्र्यं क्षीणजीवनम् ।
तेजोहानिं समायाति सदा पुष्पवती क्रमात् ॥ ३ ॥

स्थलभेदे फलभेदमाह वशिष्ठः—

ग्रामाद्बहिः परग्रामे वाचेत्स्याद्व्यभिचारिणी ।
पतिव्रता पतिस्थाने सुशीला गृहमध्यके ॥ ४ ॥
ग्राममध्ये तु वृद्धिश्च विधवा च दिगम्बरा ।
परागारे च दुःशीला आयुष्यं जलसन्निधौ ॥ ५ ॥
वनमध्ये तु कन्याया धनधान्यसमृद्धिदा ।

परागार इत्यनेनैव पितृभ्रातृगृहे निषिद्धम् । तथा च शिष्टाचारः। विशेषनिषेधस्तु न दृश्यते । तथा । चन्द्रे सद्गुणसंयुक्ते देवरात-मनाच्छुभम् । शाबाशौचेऽपि अशुभमिति गुरवः । वस्त्रफलमाह वशिष्ठः –

सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद्दृढवस्त्रा पतिव्रता ।
क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता ॥ १ ॥
दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद्रोगिणी रक्तवाससा ।
नीलाम्बरधरा नारी विधवा पुष्पिता यदि ॥ २ ॥
मलिनाम्बरतो नारी दरिद्रा स्याद्रजस्वला ।

रजोबिन्दुफलमाह स एव—

वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात् ।
समाश्चेत्कन्यका चेति फलं स्यात्प्रथमार्त्तवे ॥ १ ॥

देवरातः-सम्मार्ज्जनी-काष्ठ-तृणा-ऽग्नि-सूर्पान्
हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात् ।
तल्पोपभोगे तपसि स्थिता चेद्
दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात् ॥ २ ॥

नारदः—तिथ्यृक्षवारा निन्द्याश्चेत् शेफः कर्म निवारयेत् ।
दोषाधिके गुणाल्पत्वे तत्तथाऽपि न कारयेत् ॥ १ ॥
दोषाल्पत्वे गुणाधिक्ये शेफः कर्म समाचरेत् ।
निन्द्यर्क्ष-तिथिवारेषु यदि पुष्पं प्रदृश्यते ॥ २ ॥
तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृत-दूर्वा-तिलाक्षतैः ।
प्रत्येकं शतमष्टौ च गायत्र्या जुहुयात्ततः ॥ ३ ॥
स्वर्ण-गो-भूतिलान् दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये ।
भर्ता तत्राभिगमनं वर्ज्जयेच्छस्तदर्शनात् ॥ ४ ॥

वशिष्ठोपि-प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्पुष्पं ततः शान्तिककर्म कार्यम् ।
विवर्ज्जयेदेव तदैकशय्यां यावद्रजोदर्शनमन्यवस्त्रे ॥ ५ ॥
आर्तवानां तु नारीणां शान्तिं वक्ष्यामि शौनकः ।
तिथिवारर्क्षयोगेभ्यो लग्नेशसनवांशकात् ॥ ६ ॥
ग्रहेभ्यो दुःस्थितेभ्यश्च तत्तद्दोषक्षयाय च ।

अत्र पुत्रस्य लाभाय दम्पत्योरभिवृद्धये ॥ ७ ॥
पञ्चमेऽह्नि चतुर्थे वा ग्रहयज्ञपुरःसरः ।
तस्मिन्नहनि कर्त्तव्यमृतुहोमं विधानतः ॥ ८ ॥
आचार्यं वरयेत्प्रातर्भुवनेश्वरितुष्टये ।
होमार्थं च जपार्थं च वरयेदृत्विजो बहून् ॥ ९ ॥
यजमानो द्विजैः सार्द्धं शान्तिहोमं समाचरेत् ।
गृहादीशानदिग्भागे देवतापूजनाय च ॥१०॥
द्रोणप्रमाणधान्येन व्रीहिराशित्रयं भवेत् ।
कुम्भत्रयं न्यसेद्राशौ तन्तुवस्त्रादि-वेष्टितम् ॥११॥
पूरयेत्तीर्थसलिलैः प्रतिकुम्भं पृथक् पृथक् ।
सूक्तेनाथ नवर्चेन प्रसूव आप इत्यथ ॥१२॥
ऋचायाः प्रवतस्तद्वद्गायत्र्या च ततः क्रमात् ।
मध्यकुम्भे क्षिपेद्धान्यमौषधानि च हेम च ॥१३॥
ततश्च पञ्चरत्नानि गन्धपुष्पाक्षतायुतान् ।
औषधानि च वक्ष्यन्ते मुनिभिः शान्तिकारणात् ॥१४॥
औदुम्बरं कुशा दूर्वा राजीवं चम्पविल्वकाः ।
विष्णुक्रान्ताऽथ तुलसी वर्हिषं शङ्खपुष्पिका ॥१५॥
शतावर्यश्वगन्धा च निगुण्डी सर्षपद्वयम् ।
अपामार्गः पलाशश्च पनसो जीवनस्तथा ॥१६॥
प्रियङ्गवश्च गोधूमा व्रीहयोऽश्वत्थ एव च ।
क्षीरान्नदधिसर्पिश्च पर्णं चैव तथोत्पलान् ॥१७॥
कुरण्टकश्च गुञ्जा च वचा मुस्तकभद्रका इति ।
द्वात्रिंशदौषधानीह गायत्र्या सर्वमाहरेत् ॥१८॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्भद्रगोकुलात् ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥१९॥

कुम्भस्थापनमित्याह तत्तन्मन्त्रेण कारयेत् ।
मृत्तिका औषधादीनि मन्त्रेण प्रक्षिपेत् क्रमात् ॥२०॥
कुम्भोपरि न्यसेत्पात्रं कांस्यं वा ताम्रमेव वा ।
मृन्मयं वेणुपात्रं वा स्वस्ववित्तानुसारतः ॥२१॥
पात्रोपरि न्यसेद्वस्त्रं प्रतिमां भुवनेश्वरीम् ।
तन्मूलं वा न्यसेत्पात्रे इन्द्राणी च पुरन्दरम् ॥२२॥
आचार्यः पूजयेद्देवीमङ्गाद्यावरणानि च ।
अन्यो वा पूजनं कुर्याद् गायत्र्या मन्त्रसारया ॥२३॥
इन्द्राणीं पूजयेद्देवीमिन्द्राणीमासु नारिषु ।
क्रमेण पूजयेदिन्द्रं इन्द्रं त्वा वृषभं वयम् ॥२४॥
अनेन विधिना चाथ पूजयेद्देवतात्रयम् ।
आवाहनादिसकलैरुपचारैः पृथक् पृथक् ॥२५॥
तन्मध्यमं स्पृशन् कुम्भं मन्त्रेण भुवनेश्वरीम् ।
जपेदाचार्य आहोमाच्छ्रीसूक्तं च जपेत्ततः ॥२६॥
स्पृशन्वै दक्षिणं कुम्भमृत्विगेको जपेदथ ।
चत्वारि रुद्रसूक्तानि चतुर्मन्त्रोत्तराणि च ॥२७॥
संस्पृशन्नुत्तरं कुम्भं श्रीसूक्तं रुद्रसंख्यया ।
शन्न इन्द्राग्नीसूक्तं तत्र चैवं स्पृशन् जपेत् ॥२८॥
कुम्भस्य पश्चिमे देशे शान्तिहोमं समाचरेत् ।
अन्वाधानं ततः कुर्याद्धोमतन्त्रं समाचरेत् ॥२९॥
पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा कार्यं द्विजैः सह ।
दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च ॥३०॥
पायसं श्रपयेत्तत्र सावित्रं च हविश्च तत् ।
कृत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं हविरुद्वासनादिकम् ॥३१॥
तिसृभिश्चैव दूर्वाभिरेकैकावाहुतिर्भवेत् ।
आभिमन्त्रप्रयुक्ताभिर्गायत्रीं जुहुयात् क्रमात् ॥३२॥

अष्टोत्तरसहस्रं तु शतमष्टोत्तरं तु वा ।
तिलमिश्रैश्च गोधूमैर्द्रव्येणाऽप्याहुतीर्हुनेत् ॥३३॥
जुहुयात्पायसेनैव आज्येन च हुनेत्क्रमात् ।
हविश्चतुष्टयेनैव प्रत्येकं शतसंख्यया ॥३४॥
गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम् ।
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा रज्जुमहरणं तथा ॥३५॥
अग्नाश्चेत्यादिभिर्हुत्वा समुद्रादूर्मिसूक्ततः ।
सन्ततामाज्यधारां तां पूर्णाहुतिमथाचरेत् ॥३६॥
परिषेचनपर्यन्तं होमशेषं समापयेत् ।
सहौषधिस्थितैस्तत्र प्रतिकुम्भस्थितोदकैः ॥३७॥
ऋतुमत्याः स्त्रियाः शान्तिं दम्पतीभ्यां सुखाय च ।
अथाऽभिषेकमन्त्राश्च प्रोच्यन्ते शौनकादिभिः ॥३८॥
आपोहिष्ठेति नवभिः सूक्तेन च ततः परम् ।
इन्द्रो अङ्गतृचेनैव पावमानीः क्रमेण तु ॥३९॥
उभयं शृणवच्च नः स्वस्ति दाधिक्राश्व एकया ।
त्र्यम्बकेन मन्त्रेण जातवेदस एकया ॥४०॥
समुद्रज्येष्ठा इत्यादि चतुर्भिश्च प्रसिद्धकैः ।
त्रायन्तामिति मन्त्रैश्च त्रिभिश्चापि यथाक्रमम् ॥४१॥
इमा आपस्तृचेनैव देवस्य त्वेति मन्त्रतः ।
मन्त्रेणाऽथ तमीशानं त्वमग्ने रुद्र इत्यथ ॥४२॥
तमुष्टुहीति मन्त्रेण भुवनस्य पितुस्तथा ।
या ते रुद्रेति मन्त्रेण शिवसङ्कल्पमन्त्रतः ॥४३॥
इन्द्र त्वा वृषभं वयं मन्त्रैश्चैवाभिषेचयेत् ।
सा च वस्त्रान्तरं धृत्वा पुनश्चैवोपवासिनी ॥४४॥
उपवासोऽत्र समीपावस्थानम् ।
विप्रानभ्यर्च्य विधिवद्गन्धपुष्पान्नादिभिः ।

धेनुं पयस्विनी दद्यादाचार्याय च भूषणैः ॥४५॥
सदक्षिणमनड्वाहं प्रदद्याद्ब्रह्मजापिने ।
ऋत्विग्भ्यश्चाथ सर्वेभ्यो दद्याद्वै दक्षिणां ततः ॥४६॥
महाशान्तिं प्रयच्छाऽथ विप्राशीर्वचनं ततः ।
ब्राह्मणान् भोजयेच्चैव भुञ्जीयात्स्वजनैः सह ॥४७॥
स्मृतौ—ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दैवज्ञं भोजयेत्ततः ।
एवं यः कुरुते शान्तिं शौनकोक्तप्रकारतः ॥४८॥
तदनिष्टं तु सकलं सर्वं चाऽपि विनश्यति ॥ इति ।

इति शौनकोक्तरजोदर्शनदोषशान्तिः ।

अथ प्रयोगः—कर्ता देशकालौ स्मृत्वा मम परस्याः प्रथम—रजोदर्शनेऽमुकदुष्टमासादिसूचितारिष्टनिरसनार्थं शान्तिं करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य । गणेशपूजन-स्वस्तिवाचन-मातृकापूजनाभ्युदयिकाचार्यर्त्विग्वरणानि कुर्यात् । अथाऽऽचार्यो गृहेशान्यां प्रत्येकं मनावृत्या पदार्थानुसमयेन कुम्भत्रयं स्थापयेत् । तद्यथा । ॐ मही द्यौरिति मध्ये तद्दक्षिणोत्तरश्च स्पृष्ट्वा । ॐ ओषधय इति स्पर्शं कुर्यात् । तेषु स्थानेषु द्रोणप्रमाणान् व्रीहीन् राशीकृत्य तेनैव क्रमेण राशीकृत्य आकलशेष्विति कुम्भत्रयं संस्थाप्य मध्ये प्रसुव आप इति सर्वाभिः तद्दक्षिणे या प्रवत इत्यृचा तदुत्तरे गायत्र्या जलं क्षिप्त्वा । क्षिपेत्तिगन्धद्वारामिति गन्धम् । या ओषधीरिति सर्वौषधीः । ओषधय समिति यवान्क्षिप्त्वा । मध्यम एव यव-व्रीहि-तिल-माष-कङ्गु-श्यामाक-मुद्गान् क्षिप्त्वोदुम्बर-कुश-दूर्वा-रक्तोत्पल-पञ्चविल्व-विष्णुक्रान्ता-तुलसी-बर्हिष-शङ्खपुष्पी-शतावर्यश्वगन्धा-निर्गुण्डी[1]-रक्तपीतसर्षपा ऽपामार्ग-पलाश-पनस-जीवक-प्रियङ्गु-गोधूम-व्रीह्यश्वत्थ-दधि-दुग्ध-घृत-पद्मपत्र-नीलोत्पल-सितरक्तपीत-कुरंटक-गुञ्जा-वचा-भद्रमुस्तकाख्यानि द्वात्रिंशदौषधानि यथासम्भवं वा गायत्र्या क्षिप्त्वा ।

---

१ 'आजिघ्र कलशं०। २ ॐ वरुणस्योत्तं०। ३ त्वां गन्धर्वा०। ४ जल-कमल। ५ काले फूलवाले। ६ कटहर। ७ लाल कमल। ८ बिल्व अतेर। ९ तीनरंग की भिण्डी या पिया बाँस पीले फूलवाले।

त्रिषु दूर्वा-पञ्चपल्लव-सप्तमृत्तिका-फल-पञ्चरत्न-सुवर्णानि क्षिप्त्वा । युवा सुवासा इति वाससा सूत्रेण वा कुम्भकण्ठान् वेष्टयित्वा गन्धादिभिरलंकृत्य पूर्णादर्वीति यवादिपूर्णपात्राणि निधाय तेषु साष्टदलं श्वेतं वस्त्रत्रयं न्यस्य मध्यमे गायत्र्या विश्वामित्रो भुवनेश्वरी गायत्री भुवनेश्वर्यावाहने विनियोगः । ॐ [1] तत्सवितुरिति भुवनेश्वरीम् । तद्दक्षिणकुम्भे इन्द्राणीं वृषाकपिरिन्द्राणी पांक्तः इन्द्राण्यावाहने विनियोगः । [2]इन्द्राणीमाखितीन्द्राणीम् । उत्तरकुम्भे इन्द्र त्वा विश्वामित्र इन्द्रो गायत्री इन्द्रावाहने विनियोगः । इन्द्र[3] त्वेतीन्द्रं प्रतिमासु स्थाप्य षोडशभिः पञ्चभिर्वोपचारैरभ्यर्च्य मध्यमेऽष्टसहस्रमष्टशतं वा गायत्रीं श्रीसूक्तं च जपेत् । तत एकर्त्विक् दक्षिणकुम्भे [4]रुद्रसूक्तानि जपेत् । तानि च कद्रुद्रायेत्येकादशर्चम् । इमा रुद्राय तव स इत्येकादशर्चम् । इमा रुद्राय स्थिरधन्वन इति पञ्चर्चम् । आ ते पितरिति पञ्चदशर्चम् । तमुष्टुहीत्येका । भुवनस्य पितरित्येका । अथान्यश्चर्त्विगुत्तरकुम्भे [5]एकादशावृत्तिभी रुद्रं शन्न [6]इन्द्राग्नीति पञ्चदशर्चं जपेत् । अथाऽऽचार्यः कुम्भपश्चिमेऽग्निं प्रणीय तदीशान्यां ग्रहस्थापनादिपूजान्तं कृत्वा तदीशान्यामेकं कुम्भं संस्थाप्य तत्र वरुणावाहनादिपूजान्तं कृत्वाऽन्वाधत्यात् । तत्राऽस्मिन्नन्वाहितेऽग्नावित्यादि चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा भुवनेश्वरीमिन्द्राणीमिन्द्रं च प्रत्येकममुकसंख्यया दूर्वा-तिलमिश्रगोधूमपायसाज्यैर्ग्रहांश्चाऽमुकसंख्यया समिद्भिर्वाज्यैः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि यक्ष्य इत्यन्तमुक्त्वा परिस्तरणाद्याज्यभागान्तं कृत्वा यजमानेनाऽङ्गप्रधानदेवता उद्दिश्यैताभ्य इदं न ममेत्युक्ते ऋत्विग्भिः सहान्वाधानोक्तक्रमेण जुहुयात् । अन्ये तु गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम् । ततः स्विष्टकृतं हुत्वेत्यत्रेन्द्राणीन्द्रयोर्होमानभिधानाच्च तयोर्होमोऽन्वाधाने चाकीर्त्तनमित्याहुः । ततः स्विष्टकृदादि-बलिदानान्तं कृत्वा समुद्रादूर्मिरिति तूष्णेन पूर्णाहुतिं हुत्वा प्रणीताविमोकं कृत्वा ऋत्विग्भिः सह सभार्यं यजमानं कुम्भोदकैरभिषिञ्चेत् । तत्र मन्त्राः । आपो हि ष्ठेति ९ ऋचः य एक इद्विदं यत इति त्रिभिष्ट्वं देवेति ॥७॥ ऋचः—उभयं शृणवच्चनेति स्वस्ति दाविशो यमिति । त्र्यम्बकमिति । जातवेदस इति ।

---

१ अम्बेऽम्बिके । २ अदित्यै रास्ना० । ३ त्रातारमिन्द्र० । ४ नमस्ते १५ मंत्राः । वा नमस्ते ६६ मन्त्राः । ५ रुद्रैकादशिनी । ६ ऋचं वाचम् ।

समुद्र ज्येष्ठा इति ॥४॥ ऋचः । त्रायन्तामिति ३ऋचः । इमा आप इति ३ऋचः । देवस्य त्वेति ३ मन्त्रैः । तमीशानं जगतः । त्वमग्ने रुद्र इत्येकं यजुः । तमुष्टुहीति भुवनस्य पितरम् । या ते रुद्रेति । यज्जाग्रत इति ६॥ एते याजुषाः । इन्द्र त्वा वृषभं वयमिति ५ऋचः । सुरास्त्वामभिषिञ्चन्त्वित्याद्याः ९पौराणाः । एवमभिषिक्तः सुस्नातो धृतशुक्लवासाः सपत्नीको यजमानोऽग्निमाचार्यादींश्च सम्पूज्याऽऽचार्याय धेनुं ब्रह्मणे ऋत्विग्भ्यश्च यथाशक्तिदक्षिणां रुद्रजापिने सदक्षिणमनड्वाहं भूयसीं च दत्वा ग्रहपीठदेवतानां भुवनेश्वर्यादीनां चोत्तरपूजां कृत्वा । यान्तु देवगणा इति विसृज्याऽऽचार्याय प्रतिपाद्य गच्छ गच्छेत्यग्निं विसर्जयेत् । ततो ब्राह्मणाः शान्तिं पठेयुः । तत्र मन्त्राः। आनो भद्रा इति १० ऋचः। स्वस्ति नोमिमीतामिति १५ ऋचः । त्यमूषिति ३ ऋचः । तच्छं योरिति च । ततो यजमानो द्वादशब्राह्मणान् भोजयित्वा सङ्कल्प्य वा विप्राशिषोगृहीत्वा सुहृद्युतो भुञ्जीत ॥

अथ चन्द्रार्कोपरागकालीनाद्यरजोदर्शने विशेषः ! कर्त्तोक्तकाले मासपक्षाद्युल्लिख्य मम पत्न्याश्चन्द्रस्य सूर्यस्य वा उपरागे प्रथमरजोदर्शनसूचितानिष्टनिरासार्थं शान्तिं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य प्राग्वत् ऋत्विक्पूजान्तं कुर्यात् । अथाचार्यो गोमयोपलिप्ते देशे पञ्चवर्णैरष्टदलं कृत्वा तत्र श्वेतवस्त्रमुदग्दशं प्रसार्य्य तत्र चन्द्रोपरागे आप्यायस्वेति राजत्यां प्रतिमायां चन्द्रं सूर्योपरागे तु आकृष्णेनेति सौवर्ण्यां वा सूर्यं प्रतिमायामावाह्य तदुत्तरतः स्वर्भानो इति सैंह्यां प्रतिमायां राहुमावाह्य यस्मिन् नक्षत्रे ग्रहणं तन्नक्षत्रदेवतायां सौवर्णप्रतिमायां तत्तन्मन्त्रैः प्रणवादिनमोन्तैर्नाममन्त्रैर्वाऽऽवाह्य काण्डानुसमयेन षोडशोपचारैः पूजयेत् । तत्र चन्द्राय नक्षत्रदेवताभ्यश्च श्वेतानि गन्धादीनि । सूर्याय रक्तानि । राहवे कृष्णानि । ततः पश्चिमतोऽग्निं प्रतिष्ठाप्य पक्षे ग्रहाबाहनादि-पूजान्तं कृत्वाऽन्वाधध्यात् । तत्र चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा चन्द्रं सूर्यं वा राहुं नक्षत्रदेवतां पक्षे ग्रहांश्चामुकसंख्यया समिदाज्यचरुतिलाहुतिभिः शेषेणेत्यादिसमित्सु विशेषः। चन्द्रार्कदेवतयोः पालाशः, सूर्यस्यार्कः, राहोर्दूर्वा, ताश्च तिस्र एकाऽऽहुतिः। अथाज्यभागान्तं कृत्वा यजमानेन द्रव्ये त्यक्तेऽन्वाधानक्रमेण त्विग्भिः सह हुत्वा स्विष्टकृदादिपूर्णाहुत्यन्तं प्राग्वत्कृत्वैकस्मिन्कुम्भे जल-पञ्चगव्य-रत्न-त्वक्-पल्लव-सर्वौषधी-कदंकदूर्वा-कुशान् निक्षिप्य

सर्त्विक् दम्पती पूर्वदभिषिञ्चेत्। तत्र मन्त्राः। आपो हिष्ठेति ३ ऋचः। इमं मे गङ्गेत्येका। तत्त्वायामीत्येका। अन्येऽपि समुद्रज्येष्ठा सुरास्त्वामित्यादयश्च शेषं पूर्ववत्।

इति दुष्टरजोदर्शनशान्तिः प्रयोगः।

## अथ गोमुखप्रसवविधिः।

गर्गः—पितरिष्टे सुतारिष्टे मात्ररिष्टे तथैव च।
प्रायश्चित्तं तदा कुर्यात्तस्य दोषस्य शान्तये॥

तादृशनक्षत्रोत्पत्त्या सूचिते पित्राद्यरिष्टे प्रायश्चित्तमित्यत्रापि तत्तदित्यन्वेति देहलीदीपवत्। तत्तद्दोषशान्त्यै तत्तत्प्रायश्चित्तं कुर्यादित्यर्थः।

पूषाश्विनोर्गुरौ सर्पमघाचित्रेन्द्रमूलभे।
एषु ऋक्षेषु जातस्य कुर्याद्गोजननं तथा॥ १॥
जन्मर्क्षे वा त्रिजन्मर्क्षे शुभवारे शुभे दिने।
कृत्वाऽभ्यङ्गादिकं सर्वं गृहालङ्कारपूर्वकम्॥ २॥
गोमयेनोपलिप्याऽथ गृहस्येशानभागके।
पङ्कजं कर्णिकायुक्तं रजोभिः श्वेतवर्णकैः॥ ३॥
व्रीहींस्तत्र विनिक्षिप्य यथाविद्यानुसारतः।
नवसूर्पं तु तन्मध्ये रक्तवस्त्रं प्रसारयेत्॥ ४॥
स्थापयित्वा शिशुं तत्र पुनः सूत्रेण वेष्टयेत्।
प्राङ्मुखं तमवाक्पादं तिलगर्भं गतं शिशुम्॥ ५॥
गोमुखं दर्शयित्वाऽथ पुनर्जातं तु गोमुखात्।
विष्णुर्योनिमिति सूक्तेन गव्येन स्नपयेच्छिशुम्॥ ६॥
गवामङ्गेति मन्त्रेण गवामङ्गेषु संस्पृशेत्।
विष्णोः श्रेष्ठेन मन्त्रेण गोप्रसूतं तु बालकम्॥ ७॥
आचार्यस्तु समादाय पश्चान्मात्रे ददेत्तथा।
माता जघन्यभागस्था शिशुमानीय तं मुखात्॥ ८॥

ततः पित्रे तदा दद्यात्ततो मात्रे प्रदापयेत् ।
वस्त्रे स्थाप्य पिताऽस्याऽथ पुत्रस्य मुखमीक्षयेत् ॥ ९ ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च संयुतम् ।
आपो हिष्ठादिभिर्मन्त्रैरभिषिञ्चेत्ततः शिशुम् ॥१०॥
मूर्ध्नि चाघ्राय तत्पुत्रं तन्मन्त्रेण तदा पिता ।
अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादभि जायसे ॥११॥
आत्मा वै पुत्रनामाऽसि सञ्जीव शरदः शतम् ।
मूर्द्धनि त्रिरवघ्राय तं शिशुं स्थापयेत्ततः ॥१२॥
पुण्याहं वाचयेत्पश्चाद्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ।
दरिद्रायाऽथ विप्राय तां गामभ्यर्च्य दापयेत् ॥१३॥
गो-वस्त्र-स्वर्ण-धान्यानि दद्यादर्कादितः क्रमात् ।
यथाशक्ति धनं दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तदा पिता ॥१४॥
ततो होमं प्रकुर्वीत स्वस्वशाखोक्तमार्गतः ।
उल्लेखनादिकं कृत्वा चाज्यभागान्तमाचरेत् ॥१५॥
होमस्यैशानदिग्भागे धान्योपरि शुभं घटम् ।
पञ्चगव्यं घटे स्थाप्य तिलाँस्तत्र विनिक्षिपेत् ॥१६॥
क्षीरिद्रुमकषायांश्च पञ्चरत्नानि निक्षिपेत् ।
वस्त्रयुग्मेन संच्छाद्य गन्धादिभिरथार्चयेत् ॥१७॥
विष्णुं वरुणमभ्यर्च्य प्रतिमां च विधानतः ।
प्रतिमां यक्ष्महणः अग्रे तद्देवत्यहोमविधानात् ॥१८॥
चकाराच्च—यत इन्द्रादिभिर्मन्त्रैः कुम्भं स्पृष्ट्वाऽभिमन्त्रयेत् ।
दधि-मध्वाज्ययुक्तेन होमं कुर्याद्विधानतः ॥१९॥
आपो हि ष्ठेति तिसृभिरप्सु मे सोम इत्यथ ।
तद्विष्णोः परमं पदमक्षीभ्यां तेऽथ सूक्ततः ॥२०॥

ऋग्भिराभिः प्रत्यृचं वाऽष्टाविंशतिसंख्यया ।
अशक्तश्चाष्टसंख्यं वा दधि-मध्वाज्यसंयुतम् ॥२१॥
आदित्यादिग्रहाणां च होमं कुर्यात्समन्त्रकम् ।

इति गोमुखप्रसवविधिः ।

अथ प्रयोगः—मासपक्षाद्युल्लिख्यास्य शिशोरमुकर्क्षोत्पत्तिसूचिताऽरिष्टशान्त्यर्थं गोमुखप्रसवं करिष्ये । इत्युक्त्वा गणेशपूजनाचार्यवरणे कुर्यात् । अथाचार्यः श्वेताष्टदले व्रीहिस्थशूर्पे रक्तवस्त्रं विन्यस्य तिलान्विकीर्य तत्र प्राङ्मुखं शिशुं संस्थाप्य सूत्रेणाऽऽवेष्ट्य गोमुखात् प्रसवं विचिन्त्य विष्णुर्योनिमिति सूक्तेन पञ्चगव्येन शिशुं संस्नाप्य गवामङ्गेष्विति गां स्पृष्ट्वा विष्णोः श्रेष्ठेनेति शिशुं गृहीत्वा मात्रे दद्यात् । माता पित्रे दद्यात् । पिता च मात्रे दत्वा तन्मुखं समीक्ष्य पञ्चगव्येनाऽऽपो हि ष्ठेति तिसृभिरभिषिच्याङ्गादिति मूर्ध्नि त्रिरवघ्राय मात्रे दत्वा पुण्याहं वाचयित्वा गामाचार्याय दत्वा ब्रह्मप्रीत्यर्थं गोवस्त्रस्वर्ण-धान्यादि दत्वा भूयसीं दद्यात् । अथाऽऽचार्योऽग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते अप आपो हि ष्ठेति तृचेन अप्सु म इत्यृचा च विष्णुं तद्विष्णोरित्यृचा यद्मदहणमक्षीभ्यामिति सूक्तेन ग्रहांश्च प्रत्येकमष्टादिसंख्यया दधिमध्वाज्यैः शेषेण स्विष्टकृतमित्याद्युक्त्वाऽऽज्यभागान्तं कृत्वाऽग्नेरीशान्यां कुम्भं संस्थाप्य तत्र पञ्चगव्य-तिल-व्रीहि-क्षीर-द्रुम-कषायान् क्षिप्त्वा वस्त्रयुग्मेनाऽऽवेष्ट्य पूर्णपात्रं न्यस्य पूर्णपात्रोपरि तद्विष्णोरिति विष्णोस्तच्चायामीति वरुणस्याक्षीभ्यामिति यद्मदहणश्च प्रतिमा अभ्यर्च्य इन्द्रेति षड्चा जप्त्वाऽन्वाधानक्रमेण हुत्वा कर्मशेषं समापयेदिति गोमुखप्रसवप्रयोगः ।

---

## अथ सदन्तोत्पत्तिशान्तिः ।

विष्णुधर्मोत्तरे—

उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः ।
दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ! ॥ १ ॥

द्विजाः = दन्ताः ।

मातरं पितरं वाऽथ खादेदात्मानमेव वा ।
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि तां मे निगदतः शृणु ॥ २ ॥
गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्नापयेद्द्विज !
तद्भावे च सर्वज्ञ ! काञ्चने च वरासने ॥ ३ ॥
सर्वौषधैः सर्वबीजैः सर्वपुष्पैः फलैस्तथा ।
पञ्चगव्येन रत्नैश्च मृत्तिकाभिश्च भार्गव ! ॥ ४ ॥
सर्वौषधानि सर्वगन्धाश्च विनायकस्नपनविधौ दर्शिताः ।
स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम् ।
सप्ताहं चात्र कर्तव्यं ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥ ५ ॥
अष्टमेऽहनि विप्राणां तथा देया च दक्षिणा ।
काञ्चनं रजतं गाश्च भुवमागारमेव तु ॥ ६ ॥
दन्तजन्मनि सामान्ये शृणु स्नानमतः परम् ।
भद्रासने निवेश्यैनं मूर्द्ध्नि मूलैः फलैस्तथा ॥ ७ ॥
सर्वौषधैः सवगन्धैः सर्वबीजैस्तथैव च ।
स्नापयेत्पूजयेच्चाऽत्र वह्निं सोमं समीरणम् ॥ ८ ॥
पर्वतांश्च तथा ख्यातान् देवदेवं च केशवम् ।
एतेषामेव जुहुयाद्घृतमग्नौ यथाविधि ॥ ९ ॥
ब्राह्मणानान्तु दातव्या यथाशक्त्या तु दक्षिणा ।
ततस्त्वलङ्कृतं बालमासने चोपवेशयेत् ॥१०॥
आसीनं सूर्यसन्तानबीजैः सुस्नापयेत्ततः ।
सुविप्रबालकानां च तैश्च कार्यं च पूजनम् ॥११॥
पूज्यश्च विधिनाऽऽचार्यो ब्राह्मणाः सुहृदस्तथा ।

इति सदन्तोत्पत्तिशान्तिः ।

## अथ कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः ।

गर्गः—कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम् ।
चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादाद्यं शुभं स्मृतम् ॥ १ ॥
द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं स्मृतम् ।
चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् ॥ २ ॥
षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः ॥ ३ ॥
आचार्यं वरयेद्धीमान् पुत्रदारसमन्वितम् ।
स्वकर्मनिरतं शान्तं श्रोत्रियं वेदपारगम् ॥ ४ ॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
वृषभे च समासीनं वरदाभयपाणिनम् ॥ ५ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं श्वेतमाल्याम्बरान्वितम् ।
त्र्यम्बकेन च मन्त्रेण पूजां कुर्याद्विधानतः ॥ ६ ॥
स्थापयेच्चतुरः कुम्भांश्चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ।
पुण्यतीर्थजलोपेतान् धान्यस्योपरि विन्यसेत् ॥ ७ ॥
तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतछिद्रसमन्वितम् ।
पञ्चमृत्पञ्चरत्नानि पञ्च त्वक् पञ्च पल्लवान् ॥ ८ ॥
पञ्चधान्यं सुवर्णं च तत्तन्मन्त्रैर्विनिक्षिपेत् ।
सर्वौषधानि निक्षिप्य श्वेतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ ९ ॥
सुरभीणि च पुष्पाणि श्वेतानि परिवेष्टयेत् ।
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ॥१०॥
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ।
आवाह्य वारुणैर्मन्त्रैरनेन च विधानतः ॥११॥
इममे वरुणेत्यनया तत्त्वायामि ऋचा तथा ।
त्वन्नो अग्न इत्यनया सत्वन्न इति मन्त्रतः ॥१२॥
आग्नेयकुम्भमारभ्य पूजां कुर्याद्यथाक्रमम् ।

आनो भद्राख्यसूक्तं च भद्रा अग्नेश्च सूक्ततः ॥१३॥
जप्त्वा तु पौरुषं सूक्तं कद्रुद्रं तु क्रमाज्जपेत् ।
ईश्वरस्याऽभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत् ॥१४॥
पूजाकर्मसु निर्वर्त्य होमं कुर्याद्विधानतः ।
गृहादीशानदिग्भागे कुण्डं कार्यं विधानतः ॥१५॥
विस्तारायामखातं च अरत्निद्वयसम्मितम् ।
समिदाज्य-चरुश्चैव तिल-माषांश्च सर्षपैः ॥१६॥
अश्वत्थ प्लक्ष-पालाश-समिद्भिः खादिरैः शुभैः ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ॥१७॥
अष्टाविंशतिमेतैश्च होमं कुर्यात्पृथक् पृथक् ।
त्र्यम्बकेन मन्त्रेण तिलान् व्याहृतिभिः क्रमात् ॥१८॥
कृत्वा होमाश्च कर्त्तव्या अस्मदुक्तविधानतः ।
एवं क्रमेण कर्त्तव्यं होमशेषं समापयेत् ॥१९॥
सर्वालङ्कारयुक्तानां त्रयाणामभिषेचनम् ।
चतुर्भिः कलशैरद्भिर्बृहत्कुम्भसमन्वितम् ॥२०॥
त्रयाणाम् = माता-पितृ-शिशूनाम् ।
धौताम्बराणि धृत्वाऽथ कुर्यादाज्याऽवलोकनम् ।
पूर्णाहुतिं च जुहुयाद्यजमानः समाहितः ॥२१॥
तत्सर्वं परया भक्त्या ईश्वराय निवेदयेत् ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तां सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥२२॥
प्रतिमां वस्त्रयुग्मं च आचार्याय निवेदयेत् ॥
अन्येषां चैव सर्वेषां कुर्याद्ब्राह्मणवाचनम् ॥२३॥
तस्मादेतेन विधिना वित्तशाठ्यविवर्जितः ।
एवं यः कुरुते शान्तिं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२४॥
सर्वान्कामानवाप्नोति स्थिरजीवी सुखी भवेत् ।

इति कृष्णचतुर्दशीशान्तिः ।

## अथ सिनीवालीकुहूशान्तिः।

गार्ग्यः—सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा।
गजाऽश्वा महिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ १ ॥
ये सन्ति सकलाः पश्चात्तत्प्रसादोपजीविनः।
वर्ज्जयेत्तानशेषांस्तु पशु-पक्षि-मृगादिकान् ॥ २ ॥
कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी स्मृता।
यस्य प्रसूतिरेतेषां तस्यायुर्धननाशनम् ॥ ३ ॥
सर्वगण्डसमस्तत्र दोषस्तु प्रबलो भवेत्।
तत्र शान्तिविशेषेण परित्यागो विधीयते ॥ ४ ॥
परित्यागात्तत्र शान्तिं कुर्याद्धीमान् विचक्षणः।
परित्यागादिति ल्यप्लोपे पञ्चमी। परित्यागं कृत्वेत्यर्थः।
तत्कालं तत्क्षणार्द्धेन पुनरेवाऽनुलेपनम् ॥ ५ ॥
न त्यजेत्पण्डितो मोहादर्थादज्ञानतोऽपि वा।
तद्योगं नाशयेत्किञ्चित्स्वयं वा नाशमश्नुते ॥ ६ ॥
कल्पोक्तशान्तिः कर्त्तव्या शीघ्रं दोषापनुत्तये।
रुद्रः शक्रश्च पितरः पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात् ॥ ७ ॥
कर्षमात्रसुवर्णेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।
अथवा शक्तितः कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ८ ॥
प्रतिमां कारयेच्छम्भोश्चतुर्भुजसमन्विताम्।
त्रिशूलखड्गवरदाभयहस्तां यथाक्रमम् ॥ ९ ॥
श्वेतपुष्पाम्बरधरां श्वेताम्बरवृषस्थिताम्।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥ १० ॥
इन्द्रश्चतुर्भुजो वज्राङ्कुशचापः स-सायकः।
रक्तवर्णो गजारूढो यत इन्द्रेति मन्त्रतः ॥ ११ ॥

पितरः कृष्णवर्णाश्च चतुर्हस्ता विमानगाः ।
गदाऽक्षसूत्र-कमण्डल्वभयस्यैव धारिणः ॥१२॥
ये सत्या इति मन्त्रेण पूजां कुर्यादनन्तरम् ।
आग्नेयीं दिशमारभ्य कुम्भान् कोणेषु विन्यसेत् ॥१३॥
ये सत्यासो हविरद इत्यादिमन्त्र ऋग्वेदे प्रसिद्धः ।
तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् ।
निक्षिपेत्पञ्चगव्यादींस्तत्तन्मन्त्रैश्च निक्षिपेत् ॥१४॥
कल्पोक्तशान्तिः कर्तव्या कुर्याच्छीघ्रं स्वशक्तितः ।
गोदानं वस्त्रदानं च सुवर्णं वोर्वरां शुभाम् ॥१५॥
दशदानानि चोक्तानि क्षीरमाज्यं गुडं तथा ।
आज्यावेक्षणपात्राणि तत्तन्मन्त्रैश्च कारयेत् ॥१६॥
समिदाज्यं च होमं च तिलहोमं च सर्षपैः ।
अश्वत्थ-प्लक्ष-पालाशसमिद्भिः खादिरैः शुभैः ॥१७॥
अष्टोत्तरशतं मुख्यं प्रत्येकं जुहुयाद्द्विजैः ।
त्रैयम्बकेन मन्त्रेण तिलान् व्याहृतिभिः पुनः ॥१८॥
चतुर्भिः कलशैर्युक्तं बृहत्कुम्भसमन्वितम् ।
शान्तिवत् सकलं कार्यमभिषेकं च कारयेत् ॥१९॥
शान्तिवत् = पूर्वोक्तशान्तिवत् ।
माता-पितृ-शिशूनां च अभिषिञ्चेत्तु वारुणैः ।
शङ्करस्याऽभिषेकं च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥२०॥
अन्येषां चैव सर्वेषां ब्राह्मणानां च तर्पणम् ।
यथाशक्त्यनुसारेण द्विजवाचनपूर्वकम् ॥२१॥

अथ प्रयोगः—तत्र चतुर्दश्याः षडंशेषु द्वितीय-तृतीय-षष्ठांशेषु जन्म चेद्गोमुखप्रसवोऽपि कार्यः । कर्ता मासपक्षाद्युल्लिख्याऽस्य शिशोश्चतुर्दश्याद्यभागादिषु सिनीवाल्यां कुह्वां वोत्पत्त्या सूचितस्याऽनिष्टस्य निरासार्थं शान्तिं करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-स्व-

स्तिवाचनमातृपूजा-वृद्धिश्राद्धाऽऽचार्यादिवरणानि कुर्यात् । तत आचार्यः सर्षपविकिरणादि कृत्वा पीठादौ वरदाभयहस्तां वृषस्थां हैमीं रुद्रप्रतिमां त्र्यम्बकमन्त्रेण सम्पूज्य जपेत् । सिनीवालीकुह्वोस्तु रुद्रेन्द्रपितरः । तत्र रुद्र ईशानोर्ध्वकरक्रमात् । त्रिशूलखड्गवरदाभयहस्तो वृषस्थः त्र्यम्बकमन्त्रेण । इन्द्रो वज्रांकुशधनुःशरकरो रक्तो गजस्थो यत[1] इन्द्रेति मन्त्रेण पितरः कृष्णवर्णा गदाऽक्ष-सूत्र-कमण्डल्वभयकरा विमानस्था ये [2]सत्या इति मन्त्रेण पूज्या इति विशेषः । ततस्तत्प्राच्यामीशान्यामुदीच्यां वाऽऽग्नेयादिषु चतुरः कुम्भान् मध्ये च शतच्छिद्रं संस्थाप्य तेषु पञ्चामृत-पञ्चरत्न-पञ्चत्वक्-पल्लव-धान्यानि सुवर्णं सर्वौषधीश्च क्षिप्त्वा श्वेतवस्त्रमालाभिरावेष्ट्य सर्वे समुद्रा इत्यभिमृश्य इमम्मे वरुण तत्त्वायामि त्वन्नो अग्ने सत्वन्नो अग्न इति क्रमेण वरुणमावाह्य सम्पूज्य क्रमेण आनो भद्रा भद्रा अग्ने सहस्रशीर्षा कद्रु[3]द्रायेति सूक्तानि क्रमाज्जप्त्वा महादेवं यथाशक्ति रुद्राध्यायादिनाऽभिषिच्य ग्रहानावाह्य सम्पूज्य गृहेशान्यामग्निं संस्थाप्याऽन्वाधाय्यात् । तत्र चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते चतुर्दशीशान्तौ रुद्रमश्वत्थ-प्लक्ष-पलाश-खदिर-समिद्भिराज्य-चरु-तिल-माष-सर्षपैः प्रत्येकममुकसंख्यया व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिस्तिलैश्चामुकसंख्यया यक्ष्य इत्यादि सिनीवाल्यां कुह्वां च रुद्रमिन्द्रं पितरश्च प्रधानदेवताः त्र्यम्बकमन्त्रेण च शक्तितस्तिलहोमोऽधिक इति विशेषः । तत आज्यभागान्तेऽन्वाधानोक्तक्रमेण होमः । सिनीवाली-कुह्वोस्तु गो-वस्त्र-सुवर्ण-भू-क्षीराऽऽज्य-गुडान् दत्वा गो-भू-तिल-हिरण्या-ऽऽज्य-वस्त्र-धान्य-गुड-रूप्य-लवणदानानि च दश कृत्वा होमः कार्य इति विशेषः । ततो बलिदानान्ते कलशोदकैः शतच्छिद्रेणाऽब्देवत्यमन्त्रैः पत्नी-शिशु-सहितोऽभिषिक्तो यजमान आज्यमवेक्ष्य पूर्णाहुतिं हुत्वा गुरवे धेनुं वासोयुग्मं ऋत्विग्भ्यश्च दक्षिणां दत्वा स्वस्तिवाचकमीश्वरार्पणं कुर्यादिति कृष्णचतुर्दशीसिनीवालीकुह्वशान्तिप्रयोगः ।

---

१ प्रातारमिन्द्रः । २ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः । ३ रुद्रसूक्तेन समस्ते १६ मन्त्राः । ४ पंच ।

## अथ दर्शजननशान्तिः ।

नारदः—अथाऽतो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता ।
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं वक्ष्यामि नारदः ॥ १ ॥
पुण्याहं वाचयित्वाऽऽदौ क्रतुसङ्कल्पपूर्वकम् ।
कुण्डं वा मण्डलं कुर्यात्तद्देशे स्थापयेत् घटम् ॥ २ ॥
मण्डलम् = स्थण्डिलम् ।
तत्कुम्भे निक्षिपेद्गव्यं दधि-क्षीर-घृतादिकम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराऽश्वत्थाः स-चूताः प्लक्षकस्तथा ॥ ३ ॥
एतेषां वृक्षमूलानां त्वचादीन् पल्लवांस्तथा ।
पञ्चरत्नानि निक्षिप्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ ४ ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥ ५ ॥
आपो हि ष्ठेति तृचेनाऽथ कयानश्चित्र इत्यृचा ।
यत्किञ्चेदमृचा चैव समुद्रज्येष्ठ इत्यृचा ॥ ६ ॥
अभिमन्त्र्योदकं पश्चादग्नेः पूर्वप्रदेशके ।
हारिद्रं रक्तकं चैव कृष्णं श्वेतं च जीरकम् ॥ ७ ॥
एतेषां तण्डुलैश्चैव सर्वतोभद्रमुद्धरेत् ।
दर्शस्य देवतायाश्च सोम-सूर्यस्वरूपकम् ॥ ८ ॥
प्रतिमां स्वर्णजां नित्यं राजतीं ताम्रजां तथा ।
सर्वतोभद्रमध्ये तु स्थापयेद्दर्शदेवताः ॥ ९ ॥
ग्रहवर्णं वस्त्रयुग्मं तद्वर्णं गन्धपुष्पकम् ।
आप्यायस्वेति मन्त्रेण सविता यत्तथैव च ॥१०॥
उपचारैः समाराध्य ततो होमं समाचरेत् ।
कृत्वा वह्निं प्रतिष्ठाप्य क्रतुसङ्कल्पमीदृशम् ॥११॥
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं सर्वारिष्टप्रशान्तये ।

पुत्रस्य दर्शजननदोषनिर्हरणाय च ॥१२॥
मातापित्रोः कुमारस्य सर्वारिष्टप्रशान्तये।
तेषामायुः श्रियं चैव शान्तिहोमं करोम्यहम् ॥१३॥
समिधश्च चरुद्रव्यं क्रमेण जुहुयात्कृती।
हुनेत्सवितृमन्त्रेण सोमो धेनुं च मन्त्रतः ॥१४॥
एतैर्मन्त्रैश्च प्रत्येकं हुनेदष्टोत्तरं शतम्।
दर्शस्य देवताहोम अष्टाविंशतिसंख्यया ॥१५॥
होममेवं तु कृत्वाऽथ कुर्याद्धाराऽभिषेचनम्।
श्रीसूक्तमायुसूक्तं च समुद्रज्येष्ठ इत्यृचा ॥१६॥
एतैर्मन्त्रैरभिषेकं मातापित्रोः शिशोस्तथा।
ततः स्विष्टकृतं दद्याद्धोमशेषं समापयेत् ॥१७॥
हिरण्यं रजतं चैव कृष्णां धेनुं सदक्षिणाम्।
अन्येभ्योऽपि यथाशक्त्या दातव्या दक्षिणास्तथा॥१८॥
ब्राह्मणान् भोजयेदत्र कारयेत्स्वस्तिवाचनम्।

इति दर्शजननशान्तिः।

अत्र सिनीवालीकुहूदर्शे चोक्तयोः शान्त्योर्व्यवस्थोक्ता छन्दोगपरिशिष्टभाष्ये—

चतुर्दश्य अन्त्योऽमायाश्चाऽष्टाविति नवप्रहराश्चन्द्रक्षयकालः।
चतुर्दश्यष्टमे यामे क्षीणो भवति चन्द्रमाः।
अमावास्याऽष्टमे यामे पुनः किल भवेदणुः॥ इति वाक्यात्।

अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेव तिष्ठते चतुर्थभागेन कलावशिष्टः। तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्ना ज्योतिर्विदश्चक्रविदो वदन्तीति च वाक्यात्। अत्र चतुर्दश्यन्त्याऽमाद्ययामयोरणुश्चन्द्रः शास्त्रस्य चक्षुषोर्वा गोचरो भवति, स कालो दृष्टचन्द्रत्वात् सिनीवाली। अमान्त्योपान्त्ययामयोः शास्त्रचक्षुषोरगोचर इति क्षीणश्चन्द्रः स कालः कुहूर्मध्यमाः पञ्चयामादर्श इति व्यवस्थया शान्तिव्यवस्थेति। परे तु चतुर्दशीमात्रयुक्तेऽहोरात्रे वर्तिष्यमा सिनीवाली प्रतिपन्मात्रयुतेति कुहूः। वार-

त्रयस्पर्शिमध्यमाऽहोरात्रवर्तिन्यमा दर्शः । तस्मिन् चतुर्दशीप्रतिपदोरभावेनोभयलक्षणानाक्रान्तत्वात् । तथाऽवमवती चामा दर्शः । केवलचतुर्दशी-केवलप्रतिपद्युक्तत्वाभावात् । अतस्त्रिस्पर्शिन्यामवमत्यां वा सिनीवाली कुहूशान्तिप्राप्त्यभावाद्दर्शशान्तिप्राप्तिरितियुक्तमाहुः ।

अथ दर्शजननशान्तिप्रयोगः—कर्त्ताऽस्य कुमारस्य कुमार्या वा दर्शजन्मसूचितानिष्टनिवृत्त्यर्थं शान्तिं करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचनाऽऽचार्यादिवरणानि कुर्यात् । अथाऽऽचार्यः सर्षपविकिरणं प्रोक्षणादि कृत्वा शुद्धभूमौ जलपूर्णं पञ्चगव्य-पल्लव-त्वक्-रत्नयुतं वासोयुग्मवेष्टितं कुम्भं धान्योपरि संस्थाप्य सर्वे समुद्रा इति तीर्थान्यावाह्याऽऽपो हि ष्ठेति तृचेन कयानश्चित्र इत्यृचा यत्किञ्चेदमित्यृचा समुद्रज्येष्ठा इति तृचेन चाभिमन्त्र्य तन्नैऋत्यदेशे पञ्चरङ्गरञ्जितैस्तण्डुलैः सर्वतोभद्रं कृत्वा स्वर्णप्रतिमयोर्ये सत्यास इति पितॄन् तद्दक्षिणे रूप्यप्रतिमायामाप्यायस्वेति सोमे तदुत्तरे ताम्रप्रतिमायां सविता पश्चादिति सूर्यं चावाह्य सम्पूज्य—

आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं सर्वारिष्टप्रशान्तये ।
तेषामायुः श्रिये चैव शान्तिहोमं करोम्यहम् ॥

इत्युक्त्वा तत्पश्चिमे कुण्डे स्थण्डिले वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य तदीशान्यां ग्रहान् सम्पूज्याऽन्वाधान आघारावाज्येनेत्युक्त्वा पितॄन् समिद्भ्यामष्टाविंशतिवारं सोमं सूर्यं वाऽष्टोत्तरशतवारं शेषेणोत्पाद्याज्यभागान्तेऽन्वाधानक्रमेण पूजामन्त्रैर्हुत्वा माता-पितृ-शिशून् हिरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्चेनायुष्यं वर्चस्यमिति दशर्चेन समुद्रज्येष्ठा इत्यृचा च जलधारयाऽभिषिच्य स्विष्टकृदादि समापयेत् । यजमानो बलिदानपूर्णाहुत्यन्ते हेम-रूप्य-कृष्णधेनुराचार्याय ऋत्विग्भ्यश्च यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा विप्रान् संभोज्य स्वस्तिवाचनं कुर्यादिति दर्शशान्तिः ।

---

## अथ ज्येष्ठाशान्तिः ।

घटिकैका च मैत्रान्ते ज्येष्ठादौ घटिकाद्वयम् ।
तयोः सन्धिरिति ज्ञेयं शिशुगण्डं समीरितम् ॥ १ ॥

प्रथमे च द्वितीये च ज्येष्ठर्क्षे च तृतीयके ।
पादत्रये जातनरो ज्येष्ठोऽप्यत्र प्रजायते ॥ २ ॥
ज्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य विनाशकः ।
जायते नात्र सन्देहो दशाहाभ्यन्तरे तथा ॥ ३ ॥
ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं धवाग्रजम् ।
तच्छान्तिं तस्य वक्ष्यामि गण्डदोषप्रशान्तये ॥ ४ ॥
सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते ।
सूतकान्ते तथा कुर्याज्ज्येष्ठाशान्तिं विधानतः ॥ ५ ॥
वज्राङ्कुशधरं देवं ऐरावतगजान्वितम् ।
कुर्याच्छचीपतिं रम्यं देवेन्द्रं सुरनायकम् ॥ ६ ॥
कर्षमात्रसुवर्णेन कर्षार्द्धेनाथ पादतः ।
तद्विधानं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ ७ ॥
शालि-तण्डुलसम्पूर्णं कुम्भस्योपरि पूजयेत् ।
इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति मन्त्रेण वाग्यतः ॥ ८ ॥
गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नानाभक्ष्यनिवेदनैः ।
पूजयेद्विधिना विप्र ! लोकपालगणान्वितम् ॥ ९ ॥
रक्तवस्त्रद्वयोपेतं पूजयेत् सुरनायकम् ।
तत्र संस्थापयेत् कुम्भांश्चतुर्दिक्षु विशेषतः ॥१०॥
तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् ।
पुण्योदकसमायुक्तान् वस्त्रयुग्मेन वेष्टितान् ॥११॥
कुम्भेषु विन्यसेद्धीमान् पञ्चगव्यं समन्त्रकम् ।
पञ्चामृतं पञ्चरत्नं मृत्तिकाः पञ्चसंख्यकाः ॥१२॥
पञ्चवृक्षकषायांश्च पञ्चपल्लवकांस्तथा ।
सुवर्ण-कुश-दूर्वाश्च शतौषधि विनिक्षिपेत् ॥१३॥
पूजयेद्वारुणैर्मन्त्रैः कुम्भान् धीमान् प्रयत्नतः ।

त्वन्नो अग्ने जपेदादौ सत्वन्नोऽपि द्वितीयकम् ॥१४॥
समुद्रज्येष्ठा इति च इमं मे गङ्गे चतुर्थकम् ।
पूजयेद्वस्त्रयुग्माढ्यैश्चतुरःकलशानपि ॥१५॥
जपं कुर्युः प्रयत्नेन मन्त्रैरेभिर्द्विजोत्तमाः ।
आनो भद्रा जपं चादौ भद्रा अग्ने द्वितीयकम् ॥१६॥
इन्द्रसूक्तं रुद्रजाप्यं जपं मृत्युञ्जयं ततः ।
इत्थं सम्पूज्य देवेशं वरुणं कुम्भसंस्थितम् ॥१७॥
सुसङ्कल्पविधानेन होमकर्म ततश्चरेत् ।
समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य शतमष्टोत्तरं तथा ॥१८॥
सर्पिषा चरुणा चैव मूलमन्त्रेण वाग्यतः ।
हुनेज्जाप्यं च तेनैव यत इन्द्रभयेति च ॥१९॥
तिलान् व्याहृतिभिर्हुत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक् ।
भार्या-शिशु-समोपेतं यजमानं विशेषतः ॥२०॥
अभिषेकं प्रकुर्वीत सूक्तैर्वारुणसंज्ञितैः ।
समुद्रज्येष्ठादिभिर्मन्त्रैरिमं मे वरुणस्तथा ॥२१॥
द्यौः शान्त्येत्यादिभिर्मन्त्रैरभिषेकं समाचरेत् ।
अभिषेकनिवृत्तौ तु यजमानः समाहितः ॥२२॥
शुक्लाम्बराणि धृत्वाऽथ कुर्यादाज्यावलोकनम् ।
रूपं रूपेति मन्त्रेण चित्रं तच्चक्षुरेव च ॥२३॥
देवतापुरतः स्थित्वा धूपदीपनिवेदनम् ।
दद्याच्चाचमनं सम्यक् ताम्बूलाऽर्घ्यं तथैव च ॥२४॥
नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते !
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गण्डदोषप्रशान्तये ॥२५॥
कार्यं तत्पूजकादीनां कारितं यत्फलं शुभम् ।
लब्ध्वा तु तत्फलं सर्वं देवेन्द्राय समर्पयेत् ॥२६॥

आचार्याय च गां दद्यात् सुशीलां च पयस्विनीम्।
रक्तवर्णां वस्त्रयुतां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥२७॥
वस्त्रयुग्माभिधानां च यथाविभवसारतः।
यक्ष-गन्धर्व-सिद्धैश्च पूजितोऽसि शचीपते! ॥२८॥
दानेनाऽनेन देवेश! गण्डदोषं विनाशय।
अष्टोत्तरशतं संख्यां कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥२९॥
तेभ्योऽपि दक्षिणां दत्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत्।
इमां कृत्वा ज्येष्ठाशान्तिं यथाविध्युक्तमार्गतः ॥३०॥
गण्डदोषं विनिर्जित्य आयुष्मान् जायते नरः।
इत्युक्तं वृद्धगार्ग्येण शौनकाय विशेषतः ॥३१॥
ज्येष्ठानक्षत्रसम्भूतगण्डदोषप्रशान्तये।
अज्ञानाद्वाऽथवा ज्ञानाद्वैकल्याद्वा धनस्य च ॥३२॥
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि।

अथ प्रयोगः—गोमुखप्रसवं कृत्वा अस्य शिशोर्ज्येष्ठाजनन-सूचितसकलारिष्टनिरसनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं शान्तिं करिष्य इति सङ्कल्प्य। गणपतिपूजन-पुण्याहवाचन-नान्दीश्राद्धाचार्यऋत्विक्-चतुष्टयवरणानि कुर्यात्। तत आचार्यः सर्षपविकिरणभूमिप्रोक्षणे कृत्वा मही द्यौरित्यादि-विधिना शालितण्डुलपूर्णं कुम्भं संस्थाप्य पूर्णपात्रोपरि हैमीमिन्द्रप्रतिमां [1]इन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति मन्त्रेण रक्तवस्त्रद्वयेन गन्धादिभिश्च वाग्यतः पूजयेत्। तत इन्द्रभिन्नान् लोकपालान् समन्तादावाह्य पूजयेत्। ततः पूर्वादिदिक्षु चतुरः कुम्भान्मध्ये शतछिद्रं पुण्योदकवस्त्रमाल्ययुतं संस्थाप्य दिक्कुम्भेषु पञ्चगव्य-पञ्चामृत-पञ्चरत्न-पञ्चमृत्तिका-पञ्चवृक्षकषाय-पञ्चपल्लव-सुवर्ण-कुश-दूर्वा-शतौषधीश्च दत्वा पूर्वकलशे त्वन्नो अग्न इति स त्वन्नो अग्न इति दक्षिणे इमं मे वरुण इति पश्चिमे तत्त्वायामीत्युत्तरे च वरुणमावाह्य वस्त्रपुष्पाद्यैः पूजयेत्। ततश्चत्वारः ऋत्विजः। आनो भद्रान्ते अग्ने पुरुषसूक्तं [2]कद्रुद्रायेति सूक्तानि जपेयुः।

(१) आतारमिन्द्र०। (२) रुद्रसूक्तम्।

आचार्यो मूलमन्त्रं [1]इन्द्रं विश्वा अवीवृधमित्यृचं इन्द्रसूक्तं रुद्रं मृत्युञ्जयं[2] च जपेत् । ततोऽग्निं ग्रहांश्च प्रतिष्ठाप्याऽन्वाधाय्यात् ।

अत्र प्रधानमिन्द्रं पलाशसमिदाज्यचरुद्रव्यैरष्टशतसंख्ययाऽष्टसहस्रसंख्यया वा प्रजापतिं तिलद्रव्येणाऽष्टशतसंख्यया व्याहृतिभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादिबल्यन्ते पूर्णाहुतिं पूर्णपात्रविमोकं च कृत्वा सभार्यं सशिशुं यजमानं वारुणैः सूक्तैः समुद्रज्येष्ठा इमं मे वरुण द्यौः शान्त्येत्यादिभिरभिषिञ्चेत् । ततो रूपं रूपमित्याज्यमवलोक्य तत्पात्रं सदक्षिणं ब्राह्मणाय दत्वा इन्द्रं सम्पूज्य नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते ! । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गण्डदोषप्रशान्तये । इत्यर्घं दत्वाऽऽचार्य्यर्त्विगादिभ्यः श्रेयो गृहीत्वा इन्द्राय समर्प्याऽऽचार्य्याय पयस्विनीं गां रक्तवस्त्रद्वयं च दत्वोत्तरपूजान्ते इन्द्रं विसृज्य प्रतिमाम्—

यक्ष-गन्धर्व-सिद्धैश्च पूजितोऽसि शचीपते !
दानेनाऽनेन देवेश ! गण्डदोषं विनाशय ॥ १ ॥
अज्ञानाद्वाऽथवा ज्ञानाद्वैकल्याद्वा धनस्य च ।
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥२॥ इति मन्त्रेण

आचार्यायैव दत्वा ऋत्विग्भ्योऽपि यथाशक्ति दक्षिणां दत्वाऽग्निं विसृज्याऽष्टशतं ब्राह्मणान् भोजयेत् ।

---

## अथ मूलशान्तिः ।

शौनकः—अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि मूलजातहिताय वै ।
माता-पित्रोर्धनस्यापि कुलज्ञातिहिताय च ॥ १ ॥
त्यागो वा मूलजातस्य स्यादष्टाब्दात्प्रदर्शनम् ।
अभुक्तमूलजातानां परित्यागो विधीयते ॥ २ ॥
अदर्शनाद्वाऽपि पितुः स तु तिष्ठेत्समाष्टकम् ।
एवं दुहितरि प्रोक्तं मूलजायां फलं बुधैः ॥ ३ ॥

(१) सयोना इन्द्र० । (२) त्र्यम्बकम् ० ।

कन्यायां तु विशेषः—

न बाला हन्ति मूलर्क्षे पितरं मातरं तथा ।
मूलजा श्वशुरं हन्ति व्यालजा[1] च तदङ्गनाम् ॥ ४ ॥
माहेन्द्रजा[2]ऽग्रजं हन्ति देवरं च द्विदैवजा[3] ।
शान्तिर्वा पुष्कला चेत्स्यात्तर्हि दोषो न कश्चन ॥ ५ ॥
मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमजपं ततः ।
जातस्य द्वादशाहे च जन्मर्क्षे वा शुभे दिने ॥ ६ ॥
समाष्टके द्वादशाब्दे कुर्याच्छान्तिकमादरात् ।
यदैव शान्तिकं कुर्यात् कर्म तत्र प्रचक्ष्महे ॥ ७ ॥
संस्कृते पुण्यदेशे तु मण्डपं कारयेद्बुधः ।
पुण्यग्भिर्मन्त्रितैस्तोयैः प्रोक्षितायां क्षितौ ततः ॥ ८ ॥
तत्रोदकुम्भं सुश्लक्ष्णं रक्तं व्रणविवर्जितम् ।
सुवर्तुलं च निर्णिक्तं पूरयेन्निर्मलाम्भसा ॥ ९ ॥
वस्त्रावगुण्ठितं कुर्यात्पूरयेत्तीर्थवारिणा ।
कूर्चं हेमसमायुक्तं चूतपल्लवसंयुतम् ॥ १० ॥
स्वस्तिकोपरि विन्यस्य सक्षीरद्रुमपल्लवैः ।
द्रोणं व्रीहींश्च निक्षिप्य ईशाने च निधापयेत् ॥ ११ ॥
पञ्चरत्नानि निक्षिप्य सर्वौषधिसमन्वितम् ।
अर्चितं पुष्पगन्धाद्यैः श्रीरुद्रं च पृथक् जपेत् ॥ १२ ॥
षडङ्गसहितं सम्यक् जपेद्वै रुद्रसंख्यया ।
बह्वृचा रुद्रसूक्तैर्वा छन्दोगा रुद्रसामभिः ॥ १३ ॥

सूक्तानि सामानि च त्रीण्येव । कपिञ्जलन्यायात् । एकादशाष्टत्रिद्व्यं कसंख्यया शक्तितो जपेत् ।

---

१ व्यालजा=आश्लेषायामुत्पन्ना । २ माहेन्द्रजा=ज्येष्ठायां जाता । ३ द्विदैवजा=विशाखायां समुत्पन्ना ।

तत्राऽप्रतिरथं सूक्तं शतरुद्रानुवाककम् ।
रुद्रानुवाकं तथा पुण्यं रक्षोघ्नं च स्पृशञ्जपेत् ॥१४॥
त्र्यम्बकं जपेत्सम्यक् अष्टोत्तरसहस्रकम् ।
एकवारं तथा चाऽपि पावमानीं स्पृशञ्जपेत् ॥१५॥
जपस्य पञ्चकुम्भाः स्युर्द्वयं वा तदलाभतः ।
श्रीरुद्रस्यैककुम्भश्च सर्वसूक्तानि तत्र तु ॥१६॥
तथाऽन्यं च शुभं कुम्भं पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ।
चतुःप्रस्रवणं कुर्यात्पञ्चवक्त्रं तु तद्भवेत् ॥१७॥

अत्राऽयं साम्प्रदायिकोऽर्थः । आद्यपक्षे षट्कुम्भाः । एको रुद्रस्य तस्मिन् शतरुद्रियं रुद्रसूक्तानि सामानि वा जप्यानि । अभिषेकार्थं पञ्चकुम्भाः । तत्र पूर्वादिकुम्भचतुष्टे तत्राऽप्रतिरथमित्यादिना क्रमात्सूक्तचतुष्टयविधिः । मध्ये च त्र्यम्बकमन्त्रपावमानीजपविधिः । एवं पञ्चकुम्भाशक्तौ चतुःप्रस्रवण एक एव । द्वयमिति द्वित्वं तु रुद्रकुम्भमादाय । अत एव श्रीरुद्रस्येति श्लोकार्द्धेन रुद्रकुम्भ एव पूर्वोक्तो द्वित्वसंख्या पूरणायाऽनूद्यते । चतुःप्रस्रवण एव तु पञ्चकुम्भस्थाने विधीयते । एवं पञ्चवक्त्रं तु तद्भवेदिति पञ्चवक्त्रतोक्तिरपि पञ्चकुम्भस्थानापत्या सङ्गच्छते ।

वस्त्रावगुण्ठितं कुर्यात् पूरयेत्तीर्थवारिणा ।
पञ्चरत्नं समादाय ताम्रपल्लवसंयुतम् ॥ १ ॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकात् सङ्गमाद्ध्वजगोकुलात् ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥ २ ॥
कुम्भस्य नैर्ऋते देशे होमदेशं प्रकल्पयेत् ।
गोमयालेपिते देशे कुर्यात् स्थण्डिलमुत्तमम् ॥ ३ ॥
कृत्वाऽग्निमुखपर्यन्तमुल्लेखादि स्वशक्तितः ।
पूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वा पूजां समाचरेत् ॥ ४ ॥
नक्षत्रदेवतारूपं सुवर्णेन प्रयत्नतः ।
निष्कमात्रेण वाऽर्द्धेन पादेनाऽथ स्वशक्तितः ॥ ५ ॥

प्रतिमां लक्षणोपेतां कारयित्वा विचक्षणः ।
यद्वा मूलं सुवर्णस्य स्थापयित्वा प्रपूजयेत् ॥ ६ ॥
मूलं मूलाकारं मूल्यमिति कचित्पाठः । तदाप्रतिमामूल्यमित्यर्थः ।
सुवर्णं सर्वदैवत्यं सर्वदेवात्मकोऽनलः ।
सर्वदेवात्मको विप्रः सर्वदेवमयो हरिः ॥ ७ ॥
संस्मरेन्निर्ऋतिं श्यामं सुमुखं नरवाहनम् ।
रक्षोधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम् ॥ ८ ॥
प्रतिमापूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं प्रकल्पयेत् ।
पङ्कजं कारयेद्भूमौ रक्ताभैर्बीहितण्डुलैः ॥ ९ ॥
चतुर्विंशद्दलोपेतं शुक्लैर्वा कर्णिकान्वितम् ।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्वर्णं वा रौप्यमृन्मयम् ॥१०॥
शुद्धवस्त्रेण सञ्छाद्य तत्र मूलानि निक्षिपेत् ।
मूलानि शतमूलानि तानि सर्वं च वक्ष्यते ॥११॥
स्वयमुत्पाटयेत्प्राज्ञो मूलानां च शतं पिता ।
मङ्गल्याश्च पवित्राश्च ओषध्यः कथयाम्यहम् ॥१२॥
लक्ष्मणा शतमूला च शिरीषो वेतसस्तथा ।
सहाका श्वेतमूला च विष्णुक्रान्ताऽथ शङ्खिनी ॥१३॥
सर्पाक्षी मोननेत्रा च पुत्रपारो कृताञ्जली ।
पालाशो बिल्वकश्चैव रोचना चन्दनद्वयम् ॥१४॥
कृष्णामांसी मुरोशीरं बालकं च तथाऽऽमली ।
गोजिह्वा तुलसी ईर्ष्या शतपुष्पी सलाङ्गली ॥१५॥
ब्रह्मदण्डी द्रोणपुष्पी प्रियङ्गुः सितसर्षपाः ।
पिप्पली काकजङ्घा च त्रायमाणा हुहूस्तथा ॥१६॥
ज्योतिष्मती च गन्धारी निर्गन्धा पूर्णकोशिका ।
भगक्षमा सुभद्रा च गुडूची सेन्द्रवारुणी ॥१७॥

अलम्बुकाऽरुदन्ती च कदली केतकी तथा ।
गोक्षुरं शतपर्वा च अरिष्टिकाऽपराजिता ॥१८॥
छिन्नरुहा शतपर्वा निकुम्भा च सुवर्चला ।
अश्वगन्धा हस्तिकर्णा हरिद्राद्वितयं तथा ॥१९॥
उष्ट्रवो मधुकारश्च अश्वत्थो बकुलस्तथा ।
सर्पक्षीरा ह्यपामार्गो मन्दारश्चाऽतिमुक्तकः ॥२०॥
मालती स्वर्णपुष्पा च श्रीपर्णी श्रीफलं तथा ।
दर्भमूलं करवीरं मदयन्ती विकङ्कतः ॥२१॥
पाटला सुरदारुश्च अर्द्धसूदनिकस्तथा ।
फलं मन्मथवृक्षस्य पलाशस्य च पल्लवाः ॥२२॥
राम्ना नदीवृक्षमूलं सुरदारुर्विदारिका ।
श्वेतवीर्या श्वेतपाका नीलोत्पलं तथैव च ॥२३॥
नागकेशरमिन्दीरी कुमारी चैव निक्षिपेत् ।
तीर्थाम्बु पञ्चगव्यं च सर्वौषध्यश्च काञ्चनम् ॥२४॥
यथासम्भवतो वाऽपि ग्राह्यं मूलं शतं शुभम् ।
वीरत्वचा समेतं च शतछिद्रे घटे न्यसेत् ॥२५॥

शतमूला=शतावरी । वेतसः= वञ्जुलः । सहदेवा=सहदेवी । श्वेतमूला=पुनर्नवा । मीननेत्रा=मत्स्याक्षी । पुत्रपारा=पुत्रजीवा । कृताञ्जली =अञ्जलिनी 'हाथा होडा' इति प्रसिद्धा । विल्वः । चन्दनद्वयम्=श्वेतं पीतं च । आमला=भूम्यामलकी । गोजिह्वा=गजलिभीति प्रसिद्धा । लाङ्गली=कलिहारीति प्रसिद्धा । ब्रह्मदण्डी = अधःपुष्पी । करम्बुकः । काकजङ्घा=काकाङ्घी । ज्योतिष्मती = कङ्गुका । गान्धारी=देवगान्धारी । पूर्णकोशिका=कौशातकी । भगक्षमा=शिग्रुः । सुभद्रा=सारिवा । अलम्बुका=तुम्बी । विशालपर्वा=वचा । अरिष्टिका = नागबला । छिन्नरुहा=पिण्डगुडूची । शतपत्रा=कमलिनी । निकुम्भा=दन्तीभेदः । सुवर्चला=सूर्यभक्ता । हस्तिकर्णा=परण्डः । उष्ट्रवः=पीलुः । मधुकारः= मधूकः । सर्जरा=बीजकः । अतिमुक्तकः=माधवी । मालती=जाती ।

स्वर्णपुष्पा=कुशली। श्रीफलम्=बिल्वम्। मदयन्ती=यूथिका। विकङ्कतः=स्रुववृक्षः। अर्द्धसूदनिका=पालङ्या। मन्मथवृक्षः=आम्रः। सुरदारुः = देवदारुः। विदारिका = भूकूष्माण्डी। श्वेतवीर्या = गिरिकर्णी। श्वेतपाका = गुञ्जा। शेषाणि स्पष्टानि।

विष्णुक्रान्ता सहदेवी तुलसी तु शतावरी।
मूलानीमानि गृह्णीयाच्छताऽलाभे विशेषतः ॥ १ ॥
स्थापयेत्कर्णिकामध्ये वस्त्रगन्धाद्यलङ्कृतम्।
कूर्मं हेमजलोपेतं कुङ्कुमौषधिसंयुतम् ॥ २ ॥
कुम्भोपरि न्यसेद्विद्वान् मूलं नक्षत्रदैवतम्।
अधि-प्रत्यधिदेवौ च दक्षिणोत्तरदेशयोः ॥ ३ ॥
अधिदेवं यजेदादौ ज्येष्ठानक्षत्रदैवतम्।
उत्तराषाढऋक्षादि अनुराधान्तमर्चयेत् ॥ ४ ॥
ऐन्द्रादीशानपर्यन्तं पूजयेत् स्व-स्वनामतः।
स्वलिङ्गोक्तैश्च मन्त्रैश्च प्रधानादीन् प्रपूजयेत् ॥ ५ ॥
पञ्चामृतेन संस्थाप्य आवाह्याऽथ समर्चयेत्।
उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ॥ ६ ॥
रक्तचन्दनगन्धाढ्यैः पुष्पैः कृष्णसितादिभिः।
मेषशृङ्गादि-धूपैश्च घृतदीपैस्तथैव च ॥ ७ ॥
सुरापोलिकमांसाद्यै-र्नैवेद्यैरोदनादिभिः।
मत्स्य-मांस-सुरादीनि ब्राह्मणानां विवर्जयेत् ॥ ८ ॥
सुरास्थाने प्रदातव्यं क्षीरं सैन्धवमिश्रितम्।
पायसं लवणोपेतं मांसस्थाने प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥
उक्तं गन्धाद्यलाभे तु यथालाभं समर्चयेत्।
पुष्पान्तं तु समभ्यर्च्य होमं कुर्याद्यथोदितम् ॥ १० ॥
निर्वापप्रोक्षणादीनि चरोः कुर्याद्यथाविधि।
हविर्गृहीत्वा विधिवन्नैऋत्यैव ऋचा हुनेत् ॥ ११ ॥

मोषुणः परापरेति यत्ते देवीति वा पुनः ।
पायसं घृतसंमिश्रं हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥१२॥
समिदाज्य-चरून् पश्चाच्छान्तितः संख्यया हुनेत् ।
अधिदेवतयोश्चापि जुहुयात् स्व-स्वमन्त्रतः ॥१३॥
चतुर्थ्यन्तैर्नमोऽन्तैश्च स्वाहान्तैः स्व-स्वमन्त्रकैः ।
नक्षत्रदेवताभ्यश्च पायसेन तु होमयेत् ॥१४॥
कृणुष्वेति पञ्चदशर्गिभर्जुहुयात्कुशरं ततः ।
गायत्र्या जातवेदसे त्र्यम्बकमिति क्रमात् ॥१५॥
सीरा युञ्जन्ति तामग्निं वास्तोष्पत्यग्निमेव च ।
क्षेत्रस्य पतिना गृणानामग्निं दूतं तथैव च ॥१६॥
श्रीसूक्तेन तथा विद्वान् समिदाज्यचरून् क्रमात् ।
अष्टोत्तरशतैर्वाऽपि अष्टाविंशतिभिः क्रमात् ॥१७॥
अष्टाष्टसंख्यया वाऽपि जुहुयाच्छक्तितो बुधः ।
त्वन्नः सोमेन पायसं जुहुयात्तु त्रयोदश ॥१८॥
चतुर्गृहीतमाज्यं च यातेरुद्रेति मन्त्रतः ।
स्रुवेण जुहुयादाज्यं महाव्याहृतिभिः क्रमात् ॥१९॥
हुत्वा स्विष्टकृतं पश्चात्प्रायश्चित्ताहुतिर्हुनेत् ।
आचार्यो यजमानो वा अग्नौ पूर्णाहुतिं हुनेत् ॥२०॥
समुद्रादिति सूक्तेन प्राजापत्यऋचा तथा ।
पूर्णादर्विं सप्त ते एतैः पूर्णाहुतिं हुनेत् ॥२१॥
होमशेषं समाप्याऽथ वह्निमारोपयेद्बुधः ।
कुम्भाऽभिमन्त्रणं कुर्याद्दक्षिणेनाऽभिमर्शयेत् ॥२२॥
मृत्युप्रशमनार्थाय जपेत्त्र्यम्बकं शतम् ।
रुद्रकुम्भोक्तमार्गेण रुद्रमन्त्रं स्पृशन् जपेत् ॥२३॥
धूपं दीपं च नैवेद्यं कुम्भयुग्मे निवेदयेत् ।
प्रसादयेत्ततो देवमभिषेकार्थमादरात् ॥२४॥

तस्मिन् काले गृहातिथ्यं कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ।
पृथक् प्रशस्तं तेनैव नक्षत्रेष्ट्या सहैव च ॥२५॥
अभिषेकविधिं वक्ष्ये पूर्वाचार्यैरुदाहृतम् ।
भद्रासनोपविष्टस्य यजमानस्य ऋत्विजः ॥२६॥
दारपुत्रसमेतस्य कुर्युः सर्वेऽभिषेचनम् ।
अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च ॥२७॥
आपो हि ष्ठेति नवभिर्यत इन्द्रद्वयेन च ।
सहस्राक्षतृचेनाऽपि देवस्य त्वेति मन्त्रकैः ॥२८॥
शिवसङ्कल्पमन्त्रैश्च वक्ष्यमाणैश्च मन्त्रकैः ।
योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ॥
मूलजातशिशोर्दोषं माता-पित्रोर्व्यपोहतु ॥२९॥
योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतभुङ्मेषवाहनः ।
सप्तजिह्वः स देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु ॥३०॥
योऽसौ दण्डधरो देवो धर्मो महिषवाहनः ।
मूलजातशिशोर्दोषं व्यपोहतु यमस्तथा ॥३१॥
योऽसौ खड्गधरो देवो निर्ऋती राक्षसाधिपः ।
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्य शान्तिदः ॥३२॥
योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः ।
नक्रवाहः प्रचेताहो मूलोत्थाघं व्यपोहतु ॥३३॥
योऽसौ देवो जगत्प्राणो मारुतो मृगवाहनः ।
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गण्डान्तसम्भवम् ॥३४॥
योऽसौ निधिपतिर्देवो गदाभृन्नरवाहनः ।
माता-पित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु ॥३५॥
योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी वृषवाहनः ।
आश्लेषा-मूल-गण्डान्तं दोषमाशु व्यपोहतु ॥३६॥

विघ्नेशः क्षेत्रपो देवो पिनाकी वृषवाहनः ।
आश्लेषा-मूल-गण्डान्तं दोषमाशु व्यपोहतु ॥३७॥
सर्वदोषप्रशमनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः ।
तच्छं योरपिभेकं तु सर्वदोषोपशान्तिदम् ॥३८॥
सर्वकामप्रदं दिव्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
वस्त्रान्तरितकुम्भाभ्यां पश्चात्तु तर्पयेद्बुधः ॥३९॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः ।
यजमानो दक्षिणाभिस्तोषयेदृत्विगादिकान् ॥४०॥
धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय सवत्सकाम् ।
निर्ऋतिप्रतिमां वस्त्रं कुम्भं हेम च दापयेत् ॥४१॥
ग्रहार्थे वस्त्रप्रतिमां तत्तद्गो-भूश्च दापयेत् ।
ग्रहहोत्रेषु दापयेदिति क्वचित्पाठः ।
श्रीरुद्रजापिने देयः कृष्णोऽनड्वान् प्रयत्नतः ॥४२॥
तत्कुम्भवस्त्रप्रतिमां तस्मै दद्यात्प्रयत्नतः ।
इतरेभ्योऽपि विप्रेभ्यः शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम्॥४३॥
उक्ताऽलाभे ततो दद्यादाचार्य्य-ब्रह्म-ऋत्विजाम् ।
तत्तन्मूल्यं प्रदातव्यं शक्त्या वाऽथ प्रदापयेत् ॥४४॥
आचार्याय च यद्दत्तं तदर्द्धं ब्रह्मणे भवेत् ।
सदस्याय ब्रह्मणोऽर्द्धं ऋत्विग्भ्यश्च तदर्द्धकम् ॥४५॥
गृह्णीयादाशिषस्तेभ्यः प्रणम्याऽथ क्षमापयेत् ।
दद्यादन्नं पायसादि ब्राह्मणान्भोजयेच्छतम् ॥४६॥
अलाभे सति पञ्चाशद्दशकं तदभावतः ।
सर्वशान्तेश्च पठनं ब्राह्मणैराशिषस्तथा ॥४७॥
गृह्य क्षमापयेद्विप्रान् निर्ऋतिः प्रीयतामिति ।
विधाने चरितेऽस्मिंस्तु ततो शान्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥४८॥

गण्डान्तेष्वेवमेवं स्यात्पुष्पाद्येष्वेवमेव तु ।
समाष्टके द्वादशाहे कुर्याद्वै शान्तिमादरात् ॥४६॥

अथ मूलाश्लेषाशान्त्योः प्रयोगः—तत्र कर्त्तोक्तकाले मासपक्षाद्युल्लिख्य ममाऽस्य शिशोः कुमार्या वा मूलाद्यपादादिष्वाश्लेषायां वा जन्मना सूचितपित्राद्यरिष्टशान्त्यर्थं शान्तिं करिष्य, इत्युक्त्वा गणेशपूजन-स्वस्तिवाचन-मातृकापूजनाभ्युदयिकानि कृत्वाऽऽचार्यब्रह्मसदस्यान् ऋत्विजश्चाष्टौ षट् चतुरो वा वृत्वा यथाविभवमर्चयेत् । तथाऽऽचार्य आचार्यकर्म करिष्य, इत्युक्त्वा । यदत्र संस्थितमिति सर्षपान्विकीर्याऽऽपो हि ष्ठेत्यादिभिर्भुवं प्रोक्ष्यैशान्यां महोद्यौरिति स्पृष्ट्वौषधयः समिति द्रोणपरिमितं व्रीह्यादि क्षिप्त्वा कलशेष्विति रुद्रकुम्भं संस्थाप्येमं गङ्गेत्युदकेनापूर्य्य गन्धद्वारामिति गन्धं या ओषधीरित्यौषधीरोषधयः समिति यवान् काण्डादिति दूर्वा अश्वत्थे व इति पञ्च पल्लवान् रुवती भीम इति पञ्च त्वचः स्योना पृथिवीति सप्त मृदो याः फलिनीरिति फलं स हि रत्नानीति पञ्चरत्नानि हिरण्यरूप इति हिरण्यं गायत्र्येति गोमूत्रं पुनर्मनेति गोमयमाप्यायस्वेति पयः दधिक्राव्ण इति दधि तेजोसीत्याज्यं देवस्य त्वेति कौशं कूर्चं मधुवातेति मधु स्वादुरिति शर्करां क्षिप्त्वा युवा सुवासा इति वस्त्रेण सूत्रेण वा कुम्भकण्ठमावेष्ट्य पूर्णादर्विरिति पूर्णपात्रेण पिधाय ततः प्रागुदग्वा चतुर्दिक्षु चतुरः कुम्भान् मध्ये चैकं कुम्भं प्रत्येकं मन्त्रावृत्या पदार्थानुसमयेन जपार्थं संस्थाप्य रुद्रकुम्भे सौवर्णप्रतिमायां त्र्यम्बकं वशिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् रुद्रावाहने विनियोगः । त्र्यम्बकमिति रुद्रमावाह्य पूजयेत् । ततो रुद्रकुम्भं स्पृष्ट्वैकर्त्विक् याज्ञुषश्चेद्रुद्रैकादशिनीं बह्वृचश्चेत् त्रीणि रुद्रसूक्तानि छन्दोगश्चेद्रुद्रसामानि जपेत् । सूक्तसाम्नामेकद्वित्र्यैकादशावृत्तिः शक्तितो ज्ञेया । कद्रुद्राय घोरः कण्वो रुद्रो गायत्री इमा रुद्राय कुत्स रुद्र आद्या नव जगत्योऽन्तेऽनुष्टुभौ आते पितर्गृत्समदो रुद्रस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः । सामानिति आवो राजानं वामदेवो रुद्रस्त्रिष्टुप् तमुष्टुहि भौमो त्री रुद्रस्त्रिष्टुप् भुवनस्य पितरमृजिश्वारुद्रस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः । ततोऽन्य ऋत्विक् जपार्थकुम्भपञ्चके प्राक् क्रमेण जपेत् । आशुः शिशानेति त्रयोदशर्चस्येन्द्रोऽप्रतिरथ ऋषिरिन्द्रो देवता चतुर्थ्या बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः । त्वमग्ने रुद्र इत्य-

नुवाकस्य हव्यवाट् रुद्रो जगती जपे विनियोगः । त्वमग्ने वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः । रक्षोहणमिति पञ्चविंशर्चस्याङ्गिरसः वायुरग्निस्त्रिष्टुप् जपे विनियोगः । ततो मध्यकुम्भे जपेत् । त्र्यम्बकं वसिष्ठोऽनुष्टुप् जपे विनियोगः ॥ ११ ॥ अत्रैव पवमानमपि सकृज्जपेत् । एवं षट्कुम्भाशक्तौ रुद्रकुम्भं चतुःप्रस्रवणं चेति कुम्भद्वयं संस्थाप्य रुद्रैकादशिन्यादि रुद्रकुम्भे जप्त्वाऽप्रतिरथादीनि चत्वारि प्रस्रवणेषु त्र्यम्बकमन्त्रं पावमानीश्च मध्यमुखे जपेत् । अथाचार्यो रुद्रकुम्भान्नैर्ऋत्ये स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य तदीशान्यां नवग्रहस्थापनं कृत्वाऽन्वादध्यात् । तद्यथा । समिद्द्वयमादायाऽस्यां मूलशान्तौ देवतापरिग्रहार्थमन्वाधास्येऽस्मिन्नन्वाहितेऽग्नावित्यादि चक्षुषी आज्येनेत्यन्तमुक्त्वा नवग्रहानधिदेवताप्रत्यधिदेवता-लोकपालान् विनायकादींश्च प्रत्येकममुकसंख्यया समिद्भिर्वाज्यैर्निर्ऋतिं प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यया इन्द्रमपश्च प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्यया घृताक्तपायस-समिदाज्यचरुभिर्विश्वेदेवाद्याश्चतुर्विंशति-ऋक्षदेवता अष्टाष्टसंख्यया पायसेन रक्षोहणं कृणुष्वेति पञ्चदशभिः कृशरान्नेन सवितारं दुर्गां जातवेदसमग्निं रुद्रं ऋत्विक् श्रुतिं दुर्गां वास्तोष्पतिमग्निं क्षेत्राधिपतिं मित्रावरुणौ अग्निमेताश्चाऽष्टाऽष्टसंख्यया कृसरान्नेन श्रियन्तामग्निवर्णामिति पञ्चदशर्भिः प्रत्यृचमष्टसंख्यया समिदाज्यचरुभिः सोमं त्रयोदशवारं पायसेन रुद्रं चतुर्गृहीतेनाज्येन अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं बृहस्पतिमिन्द्रं विश्वान्देवान्महाव्याहृतिभिराज्येन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि सद्यो यद्य इत्यन्तमुक्त्वा समस्तव्याहृतिभिः समिद्द्वयमन्नावादध्यात् । आश्लेषाशान्तौ तु सर्पप्रधानदेवतामधिदेवतां बृहस्पतिं प्रत्यधिदेवतान् पितॄन् भगाद्यदित्यर्चदेवताश्चेति विशेषः । ततः परिसमूहनादिपूर्णपात्रनिधानान्तं कृत्वाऽग्नेः प्रागुदग्वा रक्तैः शुक्लैर्वा तण्डुलैश्चतुर्विंशद्दलं पद्मं कृत्वा तत्र प्राग्वत्कुम्भं संस्थाप्य तस्मिन् या ओषधीरिति शतमूलानि तदलाभे विष्णुक्रान्ता-सहदेवी-तुलसी-शतावरी-कुशमूलानि क्षिप्त्वा पूर्णपात्रं निधाय तत्र साष्टदलं वासो वितत्य तत्कर्णिकायां निष्कं तदर्द्धमितां निर्ऋतिप्रतिमामग्न्युत्तारणपूर्वकं पञ्चामृतस्नापितां मोषुणो घोरः कण्वो निर्ऋतिर्गायत्री मोषुण इति संस्थाप्य—

संस्मरेन्निर्ऋतिं श्यामं सुमुखं नरवाहनम् ।
रक्षोधिपं खड्गहस्तं दिव्याभरणभूषितम् ॥

—इति ध्यात्वा । तद्दक्षिणत इन्द्रं वो मधुछन्दा इन्द्रो गायत्रीतीन्द्रस्य तदुत्तरतश्चाऽप्सु मे मेधातिथिरापोऽनुष्टुबित्यपां च सौवर्णप्रतिमे संस्थाप्य पदार्थानुसमयेन स्वस्वमन्त्रैस्ताः पूजयेत् । तत्र वस्त्रयुग्मम् । रक्तचन्दनम् । कृष्णपुष्पाणि । मेषशृङ्गस्य धूपः । आज्यस्य दीपः । पोलिकोदनादि नैवेद्यं ब्राह्मणानां सुरास्थाने सैन्धवमिश्रं क्षीरं मांसस्थाने लवणयुक्तं पायसम् । क्षत्रियादीनां तु मुख्यमेव ततः । चतुर्विंशद्दलेषु प्रागादितो विश्वेदेवाः । विष्णुः । वसवः । वरुणः । अजैकपात् । अहिर्बुध्न्यः । पूषा । अश्विनौ । यमः । अग्निः । प्रजापतिः । सोमः । रुद्रः । अदितिः । बृहस्पतिः । सर्पाः । पितरः । भगः । अर्यमा । सविता । त्वष्टा । वायुः । इन्द्राग्नी मित्र इत्येताश्चतुर्थ्यन्तनमोऽन्तैर्नामभिः क्रमेणाऽऽवाह्य पूजयेत् । आश्लेषाशान्तौ तु सर्पप्रतिमां नमोऽस्तु सर्पेभ्य इत्यावाह्य—

सर्पो रक्तस्त्रिनेत्रश्च द्विभुजः पीतवस्त्रकः ।
फलकासिधरस्तीक्ष्णो दिव्याभरणभूषितः ॥ इति ध्यात्वा ।

तद्दक्षिणतो बृहस्पते गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुबिति बृहस्पतिम् । तदुत्तरतश्चोदीरतां शङ्खः स्वधा त्रिष्टुबिति पितॄनावाह्य चतुर्विंशतिदलेषु प्रागादितो भगाद्यदित्यन्तर्क्षदेवता आवाह्य पूजयेत् । ततोऽन्वाधानक्रमेण पायस-चरु-कृसरान् श्रपयित्वाऽऽज्यभागान्तं कृत्वा यजमानेन सर्वदेवतोद्देशेन द्रव्ये त्यक्ते सर्विगन्वाधानोक्तक्रमेणर्क्षदेवतां तत्तन्मन्त्रैर्हुत्वा रक्षोहाद्यान् वक्ष्यमाणैर्भिर्जुहुयात् । ताश्च । कृणुष्वेति पञ्चदशर्चस्य वामदेवो रक्षोहा त्रिष्टुप् कृसरहोमे विनियोगः । एवं सर्वत्र । गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री । जातवेदसे कश्यपो दुर्गा त्रिष्टुप् । त्र्यम्बकं वसिष्ठो रुद्रोऽनुष्टुप् । सोरा युञ्जन्ती बुध ऋत्विक् श्रुतिर्गायत्री । तामग्निवर्णां सौभरिर्दुर्गा त्रिष्टुप् । वास्तोष्पते वसिष्ठो वास्तोष्पतिस्त्रिष्टुप् । अग्ने नयानस्त्योऽग्निस्त्रिष्टुप् । क्षेत्रस्य वामदेवः क्षेत्रपालोऽनुष्टुप् । गृणाना जमदग्निर्मित्रावरुणौ गायत्री । अग्निं दूतं काण्वो मेधातिथिरग्निर्गायत्री । हिरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्चस्य कर्दमानंदचिक्लीतेन्दिरासुता ऋषयः श्रीर्देवता

आद्यास्तिस्रोऽनुष्टुभः तुर्या प्रस्तारपङ्क्तिः पञ्चमी-षष्ठ्यौ त्रिष्टुभौ ततोऽष्टावनुष्टुभावन्त्या प्रस्तारपंक्तिः प्रत्यृचं समिदाज्यचरुहोमे विनियोगः । त्वन्नः सोमेति त्रयोदशर्चस्य प्रगाथः सोमस्त्रिष्टुप् पायसहोमे विनियोगः । या ते रुद्रेति कश्यपो रुद्रस्वराडनुष्टुप् चतुर्गृहीताज्यहोमे विनियोगः । सप्तमहाव्याहृतीनां विश्वामित्रादय ऋषयोऽग्न्यादयो देवताः गायत्र्यादीनि छन्दांसि आज्यहोमे विनियोगः । एवं हुत्वा स्विष्टकृदादिप्रायश्चित्ताहुत्यन्तं कृत्वा लोकपाल-नवग्रह-विनायकादिभ्यो निर्ऋतीन्द्राग्न्योः रुद्रक्षेत्रपालयोश्च बलीन् दत्वा पूर्णाहुतिं जुहुयात् । तत्र मन्त्राः । समुद्रादूर्मिरित्येकादशर्चस्य वामदेव आपस्त्रिष्टुप् । अन्त्याजगती प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् । पूर्णादर्वि विश्वेदेवाः शतक्रतुरनुष्टुप् । सप्त ते अग्ने सप्तवानग्निर्जगती पूर्णाहुतिहोमे विनियोगः । एवं सर्वत्र । ततो होमशेषं समाप्य प्रधानकुम्भं दक्षिणतः स्पृष्ट्वा शतवारं त्र्यम्बकमन्त्रं जप्त्वा तथैव रुद्रकुम्भं च स्पृष्ट्वोक्तरीत्या रुद्रैकादशिन्यादि जप्त्वा गन्धादिभिः कुम्भद्वयगतनिर्ऋतिरुद्रावभ्यर्च्य सर्त्विगाचार्यः सर्वकुम्भोदकैर्भद्रासनोपविष्टं सापत्यकलत्रं यजमानमभिषिञ्चेत् । तत्र मन्त्राः । अक्षीभ्यामिति षण्णां कश्यपो यक्ष्महाऽनुष्टुप् अभिषेके विनियोगः । एवमुत्तरत्र । पवस्वविश्वचर्षण इति त्रिंशर्चस्य शतं वैखानसाः पवमानसोमो गायत्री । आपो हि ष्ठेति नवर्चस्याम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्र्यंत्ये द्वेऽनुष्टुभौ पञ्चमीवर्द्धमाना सप्तमीप्रतिष्ठा । यत इन्द्रेति द्वयोः सप्तर्षयो विश्वेदेवा अनुष्टुप् सहस्राक्षेणेति तृचस्य प्राजापत्यो यक्ष्मनाशनो यक्ष्महा त्रिष्टुप् द्वयोरन्त्यानुष्टुप् । देवस्य त्वेति त्रिभिर्यजुर्भिश्च यज्जाग्रतेति षण्णां शिवसङ्कल्पमन्त्राणां प्रजापतिर्मनस्त्रिष्टुप् । तत्तत्पुराणोक्तमन्त्राः—

योऽसौ वज्रधरो देवो महेन्द्रो गजवाहनः ।
मूलजातशिशोर्दोषं माता-पित्रोर्व्यपोहतु ॥ १ ॥
योऽसौ शक्तिधरो देवो हुतभुक् मेषवाहनः ।
सप्तजिह्वश्च देवोऽग्निर्मूलदोषं व्यपोहतु ॥ २ ॥
योऽसौ दण्डधरो देवो धर्मो महिषवाहनः ।
मूलजातशिशोर्दोषं माता-पित्रोर्व्यपोहतु ॥ ३ ॥

योऽसौ खड्गधरो देवो निर्ऋती राक्षसाधिपः ।
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं गण्डान्तसम्भवम् ॥ ४ ॥
योऽसौ पाशधरो देवो वरुणश्च जलेश्वरः ।
नक्रवाहः प्रचेताख्यो मूलोत्थाघं व्यपोहतु ॥ ५ ॥
योऽसौ देवो जगत्प्राणो मारुतो मृगवाहनः ।
प्रशामयतु मूलोत्थं दोषं बालस्य शान्तिदः ॥ ६ ॥
योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गभृद्वाजिवाहनः ।
माता-पित्रोः शिशोश्चैव मूलदोषं व्यपोहतु ॥ ७ ॥
योऽसौ पशुपतिर्देवः पिनाकी वृषवाहनः ।
आश्लेषा-मूल-गण्डान्तं दोषमाशु व्यपोहतु ॥ ८ ॥
विघ्नेशः क्षेत्रपो दुर्गा लोकपाला नवग्रहाः ।
सर्वदोषप्रशमनं सर्वे कुर्वन्तु शान्तिदाः ॥ ९ ॥

आश्लेषाशान्तौ तु—

आश्लेषाऋक्षजातस्य माता-पित्रोर्धनस्य च ।
भ्रातृज्ञातिकुलस्थानां दोषं सर्वं व्यपोहतु ॥१०॥
योऽसौ वागीश्वरो नाम अधिदेवो बृहस्पतिः ।
माता-पित्रोः शिशोश्चैव गण्डान्तस्य व्यपोहतु ॥११॥
पितरः सर्वभूतानां रक्षन्तु पितरं सदा ।
सर्पनक्षत्रजातस्य वित्तं च ज्ञातिबान्धवान्॥१२॥ इति विशेषः

ततः तच्छं योः शंयुर्विश्वेदेवाः शकरी अभिषेके विनियोगः । ततो वस्त्रान्तरितनिर्ऋतिरुद्रकुम्भोदकेन स्नापितो यजमानो धृतधौतवासाः साऽपत्यकलत्रः कांस्यपात्रस्थाऽऽज्यं रूपं रूपमित्यवेक्ष्य विप्राय दत्वाऽऽचार्यादीनभ्यर्च्याचार्याय गां ब्रह्मणे वृषं सदस्यायाऽश्वं रुद्रजापिने कृष्णवृषं धेन्वाद्यलाभे तत्तन्मूल्यं वा दत्वा स्वशक्त्या ऋत्विग्भ्यो भूयसीं च दत्त्वोत्तरपूजां कृत्वा यान्त्विति विसृज्याऽऽचार्याय निर्ऋतिग्रहप्रतिमाकुम्भादिरुद्रजापिने रुद्रप्रतिमाकुम्भादि सङ्कल्पपूर्वकं दत्वाऽग्निमभ्यर्च्य गच्छ गच्छेति विसृज्य शतं तदर्द्धं

दश वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा शान्त्याशीर्वाचयित्वा यस्य स्मृत्येत्याद्युक्त्वा स-स्वजनो भुञ्जीत ।

इति श्रीभट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे शान्तिमयूखे मूलाश्लेषाशान्तिप्रयोगः ।

## अथ वैधृति-व्यतीपात-सङ्क्रान्तिशान्तिः ।

शौनकः-कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः ।
सङ्क्रमश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यकारकः ॥ १ ॥
दरिद्राणां महादुःखं व्याधिपीडासमुद्भवम् ।
अश्रियो मृत्युमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २ ॥
स्त्रीणां च शोकं दुःखं च सर्वनाशकरो भवेत् ।
शान्तिर्वा पुष्कला कार्या तस्य दोषो न कश्चन ॥ ३ ॥
गोमुखप्रसवं कुर्याच्छान्तिं कुर्यात्प्रयत्नतः ।
जपाऽभिषेकदानैश्च होमादपि विशेषतः ॥ ४ ॥
नवग्रहमखं कुर्यात्तस्य दोषोपशान्तये ।
प्रथमं गोमुखं जन्म ततः शान्तिं समाचरेत् ॥ ५ ॥
गृहस्य पूर्वदिग्भागे गोमयेनाऽनुलिप्य च ।
अलङ्कृते सुदेशे तु व्रीहिराशिं प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥
पञ्चद्रोणमितं धान्यं तदर्द्धं तण्डुलेन च ।
तदर्द्धं तु तिलैः कुर्यादन्योऽन्यो परिकल्पयेत् ॥ ७ ॥
द्रव्यत्रितयराशौ तु अष्टपत्रं लिखेद्बुधः ।
पुण्याहं वाचयित्वा तु आचार्यं वृणुयात्पुरा ॥ ८ ॥
आचारवन्तं धर्मज्ञं कुलीनं च कुटुम्बिनम् ।
मन्त्रतत्त्वार्थतत्त्वज्ञं शान्तिकर्मणि कोविदम् ॥ ९ ॥
पञ्चाङ्गभूषणं दद्यात्पट्टवस्त्राङ्गुलीयकम् ।
राशौ प्रतिष्ठितं कुम्भमव्रणं सुमनोहरम् ॥ १० ॥

तीर्थोदकेन सङ्गृह्य समृदौषधिपल्लवम् ।
सगव्य-गन्ध-रत्नं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥११॥
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं सूक्ष्ममव्रणसंयुतम् ।
प्रतिमां स्थापयेद्धीमान्साधि-प्रत्यधिदैवताम् ॥१२॥
चन्द्राऽऽदित्याऽऽकृती पार्श्वे मध्ये वैधृतिमर्चयेत् ।
एवमेव व्यतीपाते शान्तौ सङ्क्रमणस्य तु ॥१३॥
भानोरुत्तरतो रुद्रमग्निं दक्षिणतो यजेत् ।
निष्कमात्रेण वाऽर्द्धेन पादेनाऽपि स्वशक्तितः ॥१४॥
प्रतिमां कारयेद्धीमान् तत्तल्लक्षणलक्षिताम् ।
प्रतिमां पूजनार्थाय वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् ॥१५॥
अधिदेवो भवेत्सूर्यश्चन्द्रः प्रत्यधिदैवतम् ।
ततो व्याहृतिपूर्वेण तत्तन्मन्त्रेण पूजयेत् ॥१६॥
त्रैयम्बकेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां यजेत् ।
तत्सूर्य इति मन्त्रेण सूर्यपूजां समाचरेत् ॥१७॥
आप्यायस्वेति मन्त्रेण सोमपूजां समाचरेत् ।
उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ।
अर्चित्वा गन्धपुष्पाद्यैः फलं नैवेद्यमर्पयेत् ॥१८॥
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां स्पृशेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ॥१९॥
अष्टाविंशति वा चाऽथ पूजायां च स्वशक्तितः ।
सर्वसौरं प्रजप्याऽथ सोमोऽथ सोममन्त्रतः ॥२०॥
आनो भद्रेति सूक्तं च भद्रा अग्नेश्च सूक्तकम् ।
जपेत्तु पौरुषं सूक्तं त्रैयम्बकमतः परम् ॥२१॥
कुम्भं स्पृष्ट्वा चतुर्द्विजु जपं कुर्युस्त्वथर्त्विजः ।
कुम्भस्य पश्चिमे देशे स्थण्डिलेऽग्निं प्रकल्पयेत् ॥२२॥
स्वगृह्योक्तविधानेन कारयेत्संस्कृताऽनलम् ।

त्रैयम्बकेन मन्त्रेण समिदाज्यचरून् हुनेत् ॥२३॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ।
अष्टाविंशति वा कुर्यात्स्वस्य शक्त्यनुसारतः ॥२४॥
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण तिलहोमं समाचरेत् ।
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा अभिषेकं च कारयेत् ॥२५॥
समुद्रज्येष्ठासूक्तेन आपो हि ष्ठेत्यृचेन च ।
अक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिरेव च ॥२६॥
त्रैयम्बकेन तत्सूर्य आप्यायस्वेति मन्त्रतः ।
सुरास्त्वामिति मन्त्रेण अभिषेकं समाचरेत् ॥२७॥

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्त्वित्यादिकोऽभिषेकमन्त्रसमुदायोऽयुतहोमविधाने द्रष्टव्यः ।

अभिषेकाप्लुतं वस्त्रमाचार्याय निवेदयेत् ।
श्वेतवस्त्रधरो भूत्वा भूषणाद्यैरलङ्कृतः ॥ १ ॥
यजमानः स्त्रिया युक्त आज्याऽवेक्षणमाचरेत् ।
आचार्यं पूजयेत्पश्चाद्वस्त्रहेमाङ्गुलीयकैः ॥ २ ॥
गोदानं वस्त्रदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ।
तद्दोषशमनार्थाय आचार्याय प्रदापयेत् ॥ ३ ॥
प्रच्छादनपटं दद्यात्ततः शान्तिर्भवेदिति ।
जापकेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणाः प्रतिपादयेत् ॥ ४ ॥
दीनान्धकृपणेभ्यश्च प्रदद्याद्भूरिदक्षिणाम् ।
ब्राह्मणान् शतसंख्याकान् मिष्टान्नैर्भोजयेच्च तान् ॥ ५ ॥
बन्धुभिः सह भुञ्जीत यथाविभवसारतः ।
एवं यः कुरुते मर्त्यो नैव दुःखमवाप्नुयात् ॥ ६ ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं माता-पित्रोः शिशोरपि ।

अथ प्रयोगः—कर्ता गोमुखप्रसवं कृत्वा मासपक्षाद्युल्लिख्याऽस्य शिशोर्वैधृतौ व्यतीपाते सङ्क्रान्तौ वोत्पत्त्या सूचितस्याऽनि-

ष्टस्य निरासार्थं शान्तिं करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजा-स्वस्तिवाचन-मातृपूजा-वृद्धिश्राद्धाचार्यादि वरणानि कुर्यात् । अथाचार्यः सर्षपान्विकिरणादि कृत्वा प्राच्यां गोमयोपलिप्तभुवि पञ्चद्रोणतदर्द्धमितव्रीहि-तण्डुल-तिलानन्योन्योपरि राशीकृत्य तत्राऽष्टदलं विरच्य तत्कर्णिकायां कुम्भं संस्थाप्य तीर्थोदकेनाऽऽपूर्य्य तत्र सप्तमृत्-पञ्चपल्लव-रत्न-गव्याष्टगन्ध-सर्वौषधीः क्षिप्त्वा वस्त्रयुग्मेनाऽऽवेष्ट्य पूर्णपात्रं निधाय तत्र वैधृतिशान्तौ मध्ये त्र्यम्बकमिति रुद्रं तद्दक्षिणत उत्सूर्य इति सूर्यमुत्तरतश्चाप्यायस्वेति सोमं व्यतीपात-सङ्क्रान्तिशान्त्योस्तु मध्ये सूर्यं तद्दक्षितोऽग्निं दूतमित्यग्निमुत्तरतो रुद्रं तत्तत्प्रतिमास्वावाह्य षोडशभिः पञ्चभिर्वोपचारैः सम्पूज्य रुद्र-सूर्य-सोमप्रतिमाः स्पृष्ट्वाऽष्टसहस्राष्टशताष्टाविंशत्यन्यतरसंख्यया मृत्युञ्जयमन्त्रमुद्यन्नद्येत्यादिसर्वसौरमन्त्रानाप्यायस्वेति च क्रमाज्जपेत् । व्यतीपातसङ्क्रान्तिशान्त्योस्तु पूर्वं सौरजपस्ततो मृत्युञ्जयजपः । ततो ऋत्विजः प्रागादि दिक्चतुर्षु क्रमेण आनो भद्रा भद्रा अग्ने सहस्रशीर्षा कद्रुद्रायेति सूक्तानि जप्त्वा आचार्यस्तु कुम्भात्पश्चिमेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य ग्रहावाहनादि पूजनान्तं कृत्वाऽन्वादध्यात् । तत्र चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते रुद्रसूर्यसोमान् समिद्भिर्वाज्यैस्तत्तन्मन्त्रैर्मृत्युञ्जयमन्त्रेण च तिलाहुतिभिरष्टसहस्राऽष्टशताष्टाविंशति अन्यतरसङ्ख्ययाऽशेषेण स्विष्टकृतमित्यादिव्यतीपातसङ्क्रान्तिशान्त्योस्तु सूर्याग्निरुद्रानिति विशेषः । तत आज्यभागान्तेऽन्वाधानोक्तक्रमेण हुत्वा बलिदानान्ते कलशोदकैः समुद्रज्येष्ठा इति सूक्तेन आपो हि ष्ठेति तृचेनाऽक्षीभ्यामिति सूक्तेन पावमानीभिः प्रधानाधिप्रत्यधिदेवतामन्त्रैः सुरास्त्वेत्यादिपौराणमन्त्रैश्चाभिषिक्तो यजमानोऽभिषेकवस्त्रमाचार्याय निवेद्याऽऽज्यमवेक्ष्य पूर्णाहुतिं हुत्वाऽऽचार्याय धेनुं वस्त्रयुग्माऽङ्गुलीयकादि ऋत्विग्भ्यश्च दक्षिणां दत्वाऽन्येभ्यश्च भूरिदक्षिणां दत्वा शतं शक्त्या वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा बन्धुभिः सह भुञ्जीत इति वैधृति-व्यतीपात-सङ्क्रान्तिशान्तयः ।

---

## अथैकनक्षत्रजन्मशान्तिः ।

गर्गः—एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृ-पुत्रयोः ।
प्रसूतिश्चेत्तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चयः ॥ १ ॥

तद्दोषनाशाय तदा प्रशस्तां शान्तिं च कुर्यादभिषेचनं च ।
सम्पूज्य ऋक्षप्रतिमां तदग्रे दानं च कुर्याद्विभवानुरूपम् ॥२॥
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वाचार्यमतेन तु ।
शुभर्क्षे शुभवारे च चन्द्र-ताराबलान्विते ॥ ३ ॥
रिक्ता-विष्टी विवर्ज्ये तु प्रारभेद्विभवे सुधीः ।
आचार्यं वरयेत्पूर्वं चतुरश्च द्विजोत्तमान् ॥ ४ ॥
पुण्याहं वाचयित्वा तु शान्तिकर्म समाचरेत् ।
अग्नेरीशानदिग्भागे नक्षत्रप्रतिमां ततः ॥ ५ ॥
तन्नक्षत्रोक्तमार्गेण अर्चयेत्कलशोपरि ।
रक्तवस्त्रेण सञ्छाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥ ६ ॥
स्वशाखोक्तेन मार्गेण कुर्यादग्निमुखं ततः ।
अनेनैव तु मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ७ ॥
प्रत्येकं समिदन्नाज्यैः प्रायश्चित्तांतमेव च ।
अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यः पितृपुत्रयोः ॥ ८ ॥
वस्त्रालङ्कारगोदानैराचार्यं पूजयेत्पुनः ।
ऋत्विजां दक्षिणां दद्यान्माषत्रयसुवर्णकम् ॥ ९ ॥
देवताप्रतिमादानं धान्यवस्त्रादिभिः सह ।
यान-शय्या-ऽऽसनादीनि दद्याद्दोषशान्तये ॥१०॥
भोजयेद् ब्राह्मणान्सर्वान् वित्तशाठ्यविवर्जितः ।

अथ प्रयोगः—कर्ता मास-पक्षाद्युल्लिख्याऽस्य कुमारस्य पि-त्राद्येकर्क्षोत्पत्तिसूचितारिष्टशान्त्यर्थमेकनक्षत्रशान्तिं करिष्य इति सङ्कल्प्य गणेशपूजन-स्वस्तिवाचनाऽऽभ्युदयिकाऽऽचार्यत्विग्वरणानि कुर्यात् । अथाऽऽचार्योऽग्नेरीशान्यां कुम्भं संस्थाप्य रक्तवस्त्रयुग्मेना-ऽऽच्छाद्य तस्मिन् पूर्णपात्रोपरि तत्तन्नक्षत्रोक्तमन्त्रेण प्रतिमायां तन्न-क्षत्रं तद्देवतां चाऽऽवाह्य सम्पूज्य अग्निं प्रतिष्ठाप्याऽन्वाधाय आज्य-भागान्तं कृत्वा तत्तन्नक्षत्रमन्त्रेण समिदाज्याभ्यां प्रत्येकमष्टोत्तरशतं

हुत्वा होमशेषं समाप्य शिशुं तत्पित्रादींश्चाऽभिषिञ्चेत् । ततः कर्तोत्तरपूजां कृत्वा विसृज्य प्रतिमादिकं गवादि चाऽऽचार्याय दत्वा ऋत्विग्भ्यश्च प्रत्येकं सौवर्णमाषत्रयात्मिकां यथाशक्ति दक्षिणां दत्वा यथाविभवं यान-शय्या-ऽऽसनादीनि च दत्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वयं भुञ्जीत । इत्येकनक्षत्रशान्तिप्रयोगः ।

---

## अथ ग्रहणोत्पत्तौ शान्तिः ।

शौनकः—ग्रहणे चन्द्र-सूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते ।
व्याधिपीडा तदा स्त्रीणामादौ तु ऋतुदर्शनात् ॥ १ ॥
इत्थं सञ्जायते यस्तु तस्य मृत्युर्न संशयः ।
व्याधिपीडा च दारिद्र्यं शोकश्च कलहो भवेत् ॥ २ ॥
शान्तिं तेषां प्रवक्ष्यामि नराणां हितकाम्यया ।
यस्मिन् ऋक्षे विशेषेण ग्रहणं संप्रजायते ॥ ३ ॥
तदृक्षाधिपते रूपं सुवर्णेन विशेषतः ।
चन्द्रं चन्द्रग्रहे धीमान् रजतेन विशेषतः ॥ ४ ॥
राहुरूपं प्रकुर्वीत नागेनैव विचक्षणः ।
शुचौ देशे प्रयत्नेन गोमयेन प्रलेपयेत् ॥ ५ ॥
नागेन = सीसेन ।
तस्योपरि न्यसेद्धीमान्नववस्त्रं सुशोभनम् ।
त्रयाणां चैकरूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत् ॥ ६ ॥
रक्ताक्षं तं रक्तगन्धं रक्तपुष्पाम्बराणि च ।
सूर्यग्रहे प्रदातव्यं सूर्यप्रीतिकराय च ॥ ७ ॥
श्वेतवस्त्रं श्वेतमाल्यं श्वेतगन्धाक्षतादिभिः ।
चन्द्रग्रहे प्रदातव्यं चन्द्रप्रीतिकराय च ॥ ८ ॥
राहवे चैव दातव्यं कृष्णपुष्पाम्बराणि च ।
दद्यान्नक्षत्रनाथाय श्वेतगन्धानुलेपने ॥ ९ ॥

सूर्यं सम्पूजयेद्धीमान्नाकृष्णेनेति मन्त्रतः ।
चन्द्रग्रहे च पालाशैः समिद्भिर्जुहुयान्नरः ॥१०॥
दूर्वाभिर्जुहुयाद्धीमान् राहोः सम्प्रीणनाय च ।
समिद्भिर्जलवृक्षोत्थैर्भेशाय जुहुयाद्बुधः ॥११॥

भेशाय = नक्षत्राधिपतये ।

आज्येन चरुणा चैव तिलैश्च जुहुयात्ततः ।
पञ्चगव्यैः पञ्चरत्नैः पञ्चलक् पञ्चपल्लवैः ॥१२॥
जलैरौषधकल्कैश्च सहितैः कलशोदकैः ।

औषधकल्कैः = सर्वौषधिकल्कैः ।

अभिषेकं प्रकुर्वीत यजमाने प्रयत्नतः ॥१३॥
मन्त्रैर्वरुणदेवत्यैरापो हि ष्ठादिभिस्त्रिभिः ।
इमं मे गङ्गे पितरस्तलायामीति मन्त्रकैः ॥१४॥
अभिषेके निवृत्ते तु यजमानः समाहितः ।
आचार्यं पूजयेत्पश्चात् सुशान्तो नियतेन्द्रिय ॥१५॥
तस्मै दद्यात्प्रयत्नेन भक्त्या प्रतिकृतित्रयम् ।
दक्षिणाभिश्च संयुक्तं यथाशक्त्यनुसारतः ॥१६॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।
तेभ्योऽपि दक्षिणां दद्याद्यजमानः समाहितः ॥१७॥
अनेन विधिना शान्तिं कृत्वा सम्यग्विशेषतः ।
अकालमृत्युशोकं च व्याधिपीडा न चाप्नुयात् ॥१८॥
सौख्यं सौमनसं नित्यं सौभाग्यं लभते नरः ।
इत्थं ग्रहणजातानां सर्वारिष्टविनाशनम् ॥१९॥
कथितं भार्गवेणेदं शौनकाय महात्मने ।

इति चन्द्र-सूर्यग्रहणप्रसूतिशान्तिः ।

# अथ विषघटिकाशान्तिविधिः ।

तत्र वृद्धगार्ग्यः—

विषनाडीषु सञ्जातः पितृ-भ्रातृ-धनात्मनाम् ।
नाशकृद्विषशस्त्राद्यैः क्रूरलग्नेऽष्टमेऽपि वा ॥ १ ॥
तद्दोषपरिहाराय शान्तिकर्म समारभेत् ।
रुद्रो यमोऽग्निर्मृत्युश्च देवताः परिकीर्तिताः ॥ २ ॥
सुवर्णेन यथाशक्त्या तत्तल्लक्षणसंयुताः ।
प्रतिमाः कारयित्वा तु आढकव्रीहिभिः स्थले ॥ ३ ॥
स्थण्डिलं परिकल्प्याऽथ कुम्भमौषधिसंयुतम् ।
जलैः सम्पूर्य्य संस्थाप्य मृदादि प्रक्षिपेत्ततः ॥ ४ ॥
वस्त्रद्वयेन संवेष्ट्य पञ्चरत्नानि निक्षिपेत् ।
कुम्भोपरि तु संस्थाप्य चतस्रः प्रतिमास्तथा ॥ ५ ॥
तत्तन्मन्त्रैश्च सम्पूज्य गन्धपुष्पोपहारकैः ।
कद्रुद्रायेति मन्त्रेण यमाय सोममित्यथ ॥ ६ ॥
अग्निर्मूर्द्धेति मन्त्रेण परं मृत्यो इति त्वथ ।
एतैश्चतुर्भिर्मन्त्रैस्तु क्रमादर्चेद्धुनेत्तथा ॥ ७ ॥
समिच्चरुघृतद्रव्यैः प्रत्येकं च यथाक्रमम् ।
ऋत्विग्भिश्च सहाचार्यो हुनेदष्टसहस्रकम् ॥ ८ ॥
अष्टोत्तरशतं वाऽथ अष्टाविंशतिमेव वा ।
ततस्तिलैर्हुनेद्देवांस्तत्तन्मन्त्रैश्च कल्पवित् ॥ ९ ॥
ततोऽभिषिञ्चयेदेनं मन्त्रैः पौराणिकैः क्रमात् ।
प्रार्थ्यतां भगवानीशः पिनाकी सर्वतोमुखः ॥१०॥
तव मूर्तिप्रदानेन समस्ताऽभीष्टदो भव ।
ईषत्पीनो यमः कालो दण्डहस्तः प्रशान्तधीः ॥११॥
रक्तदृक् पाशभृत्कृष्णो महिषस्थः शिवं कुरु ।

पिङ्गलश्मश्रुकेशाक्षः पिङ्गाक्षचतुरोरुणः ॥१२॥
छागस्थः साक्षसूत्रश्च सप्तार्चिः शक्तिधारकः ।
तव मूर्तिप्रदानेन मम पापं विनाशय ॥१३॥
दंष्ट्राकरालवदनो नीलाञ्जनसमाकृतिः ।
दृक-खड्ग-गदापाणिर्मृत्युर्मां पातु सर्वदा ॥१४॥
इत्थमेवं विधैर्मन्त्रैर्यथाविधिसमाहितः ।
गो-भू-हिरण्य-वस्त्रैश्च आचार्यं पूजयेत्सुधीः ॥१५॥
एवं कुर्यात्प्रदानेन विषदोषः प्रशाम्यति ।

इति विषघटीशान्तिः ।

---

## अथ भ-गण्डान्तशान्तिः ।

गर्गः—अश्विनी-मघ-मूलादौ त्रि वेद-नवनाडिका ।
रेवती सर्प-शक्रान्ते मास-रुद्र-रसाः क्रमात् ॥ १ ॥
अश्विनी-मघ-मूलादौ नाडिका द्वितयं तथा ।
अश्विनी-मघ-मूलानां पूर्वार्द्धे बाध्यते पिता ॥ २ ॥
पूषादिसर्पपश्चार्द्धे जननी बाध्यते शिशोः ।
पितृघ्नश्च दिवाजातो रात्रिजातस्तु मातृहा ॥ ३ ॥
आत्महा सन्ध्ययोर्जातो नास्ति गण्डे निरामयः ।
सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ॥ ४ ॥
वर्ज्ययेद्दर्शनं यावद्वर्षं षाण्मासिकं भवेत् ।
तस्य शान्तिं प्रवक्ष्यामि सोममन्त्रेण भक्तिमान् ॥ ५ ॥
कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्नवम् ।
अष्टभिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां वा शोभनं तथा ॥ ६ ॥
तन्मध्ये पायसं शुभ्रं नवनीतेन पूरितम् ।
राजतं चन्द्रमर्चेत सितपुष्पसहस्रकैः ॥ ७ ॥

दैवज्ञः क्षौमवासाश्च शुक्लमाल्याम्बरार्चितः ।
सोमोऽहमिति सञ्चिन्त्य पूजां कुर्यादतन्द्रितः ॥ ८ ॥
जपेत्साहस्रकं मन्त्रं श्रद्दधानः समाहितः ।
आप्यायस्वेति मन्त्रेण पूजां कुर्यात्समाहितः ॥ ९ ॥
दद्याद्वै दक्षिणामिष्टां गण्डदोषप्रशान्तये ।
शुक्लं वागीश्वरं चैव ताम्रपात्रसमन्वितम् ॥१०॥
गण्डदोषोपशान्त्यर्थं दद्याद्वेदविदे शुचिः ।

इति भ-गण्डान्तशान्तिः ।

---

## अथ दिनक्षयादिशान्तिः ।

गर्गः—दिनक्षये व्यतीपाते व्याघाते विष्टि-वैधृतौ ।
मूले गण्डेऽतिगण्डे च परिघे यमघण्टके ॥ १ ॥
कालदण्डे मृत्युयोगे दुष्टयोगे सुदारुणे ।
तस्मिन् गण्डदिने प्राप्ते प्रसूतिर्यदि जायते ॥ २ ॥
अतिदोषकरी प्रोक्ता तत्र पापयुते सति ।
विचार्य तत्र दैवज्ञं शान्तिं कृत्वा यथाविधि ॥ ३ ॥
यजमानो देवतानां ग्रहाणां चैव पूजनम् ।
दीपं शिवालये भक्त्या घृतेन परिदापयेत् ॥ ४ ॥
अभिषेकं शङ्करस्य अश्वत्थस्य प्रदक्षिणम् ॥
आयुर्वृद्धिकरं जाप्यं सर्वारिष्टविनाशनम् ॥ ५ ॥
गुरु-दैवत-विप्राणां पूजनं गोश्च वर्द्धनम् ।
पुष्ट्यायुस्तुष्टिशान्त्यर्थमभीष्टफलसिद्धये ॥ ६ ॥
सर्वारिष्टहरार्थाय ग्रहयज्ञं समाचरेत् ।
शिवाय विधिवद्भक्त्या दीपदानं करोति यः ॥ ७ ॥
अखण्डे गोघृतेनैव स वै मृत्युं जयेन्नरः ।

विष्णुमूर्तिं महापुण्यमश्वत्थं श्रीकरं सदा ॥ ८ ॥
प्रदक्षिणं नरो भक्त्या कृत्वा मृत्युं जयेन्नरः ।
सर्वसम्पत्समृध्यर्थं नित्यं कल्याणवृद्धये ॥ ९ ॥
अभीष्टफलसिध्यर्थं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
अभिषेकं शिवे शान्तिं कृत्वा भक्त्या नरोत्तमः ॥१०॥
अकालमृत्युं निर्जित्य दीर्घायुर्जायते नरः ।
गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युञ्जयं शुभम् ॥११॥
शान्तिजाप्यं रुद्रजाप्यं कृत्वा मृत्युञ्जयो भवेत् ।
मूले वा सर्पगण्डे वा कुर्यादेतानि यत्नतः ॥१२॥
आयुर्वृद्धिकरार्थाय गण्डदोषप्रशान्तये ।

इति गर्गोक्तगण्डजननशान्तिः ।

---

## अथ त्रिकशान्तिः ।

शान्तिसर्वस्वे—

सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्त्रये वा सुतो यदि ।
माता-पित्रोः कुलस्यापि तदाऽनिष्टं महद्भवेत् ॥ १ ॥
ज्येष्ठनाशो धने हानिर्दुःखं वा सुमहद्भवेत् ।
तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २ ॥
जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने ।
आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरःसरम् ॥ ३ ॥
सह वा ग्रहयज्ञः स्यात्स्वस्य वित्तानुसारतः ।
ब्रह्म-विष्णु-महेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः ॥ ४ ॥
पूजयेद्धान्यराशिस्थ – कलशोपरि शक्तितः ।
पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसङ्ख्यया ॥ ५ ॥
रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः ।

द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिः समाहितः ॥ ६ ॥
आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरुम् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा विंशतिं तु वा ॥ ७ ॥
देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरःसरम् ।
ब्रह्मादि-मन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्रभजामहे ॥ ८ ॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः ।
अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाऽऽचार्यं प्रपूजयेत् ॥ ९ ॥
हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा ततः ।
प्रतिमा गुरवे देया उपस्कारसमन्विताः ॥१०॥
कांस्यास्य वीक्षणं दत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत् ॥११॥
एवं शान्तिविधानेन सर्वारिष्टं विलीयते ।

इति त्रिकशान्तिः ।

---

## अथ प्रसववैकृतशान्तिविधिरुच्यते ।

अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा ।
विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवनास्तथा ॥ १ ॥
अमानुषा अखण्डाश्च अजातव्यं जनास्तथा ।
हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः ॥ २ ॥
पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः ।
विनाशं तस्य देहस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ॥ ३ ॥
विश्वासयेत्तां नृपतिः स्वराष्ट्रात्स्त्रियश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः ।
चिकित्सनैर्ब्राह्मणतर्पणैश्च ततोऽस्य शान्तिं समुपैति पापम् ॥४॥

— * —

## अथ यमलशान्तिविधिः ।

अत्र ब्राह्मणं तदाहुर्यं आहिताग्निर्यस्य भार्या गौर्वा यमौ जनयेत्का तत्र प्रायश्चित्तिरिति ? सोऽग्नये मरुत्वते त्रयोदशकपालं पुरोडाशं निर्वपेत्तस्य याज्यानुवाक्ये मरुतो यस्य हि क्षयेरा इ वेद चरमा अहे वेत्याहुतिं वाऽऽहवनीये जुहुयादग्नये मरुत्वते स्वाहेति सा तत्र प्रायश्चित्तिरिति ।

कारिका—अथ यस्य वधूर्गौ वा जनयेच्चेद्यमौ ततः ।
समरुद्भ्यश्चरुं कुर्यात् पूर्णाहुतिमथापि वा ॥ १ ॥ इति

अथ प्रथमदिनादिषु देवीगृहीतबालकरक्षणम् ।

मदनरत्ने योगसागरे—

प्रथमेऽहनि गृह्णाति बालकं बालिनी ग्रही ।

बालिनीस्थाने पार्थिनीग्रहीति नारायणीये पाठः ।

गन्धिनीति गुणोत्तरे ।

तया गृहीतमात्रस्य चेष्टितान्युपलक्षयेत् ।
गात्रो द्वे गोनिराहारो लालाग्रीवानिवर्तनम् ।
लिम्पेत धातकी-लोध्र-मञ्जिष्ठा-ताल-चन्दनैः ॥ १ ॥
धूपयेन्महिषाक्षेण ततो मुञ्चति सा ग्रही ।

लेपनधूपने बालस्य नारायणीये बलिदानानुवृत्तौ—

मत्स्य-मांस-सुराभक्ष्य-गन्धा-ऽसृक्-धूप-दीपकैः ।

बलिं दद्यादिति शेषः ।

बलिमन्त्रः प्रयोगसारे—ॐ नमश्चामुण्डे भगवति विद्युज्जिह्वे ह्रां २ ह्रीं २ अपसरन्तु दुष्टग्रहा हुँ । तद्यथा—गच्छन्तु यातान्यतः स्थाने रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा विद्युज्जिह्वे ह्रां ह्रीं हुं हुं मुञ्च मुञ्च स्वाहेति ।

बालग्रहाणां विधेयं शस्ता बलिनिवेदने ।

बलिश्च रवेरुदयेऽस्ते दिनार्द्धे वा देयः ।

बलिस्थानानि प्रयोगसारे—

कदम्बश्च करञ्जश्च विनीतो निम्ब एव च।
अश्वत्थोदुम्बरश्चैव श्लेष्मान्तक-वटौ तथा ॥ १ ॥
मातृवृक्षाः क्रमेणोक्ताः पूर्वादीशान्तदिग्गताः।
तेषामेकं समाश्रित्य बलिं दद्याद्यथोदितम् ॥ २ ॥
प्रतिस्थूलं प्रत्युदकं प्रतिवृक्षमथाऽपि वा।

स्थूलम् = तटम्। क्वचित्तु कूलमित्येव पाठः।

अत्राशायामनुक्तायां प्राक्प्रोक्तान्नानुसारतः ॥ ३ ॥
यत्र वा रोचते तत्र मातॄणां बलिमाहरेत्।

कृत्वा नीराजनान्तं बलिमिति विधिवद्बालमाहूय संस्पृश्या-
ऽद्भिस्तत्सर्वगात्रं शिरसि सकुसुमैरक्षतैर्मार्जयित्वा।
क्षिप्त्वाऽग्रे देवताया विधिवदुपहितैस्तत्र गीतैः सुमन्त्रैः
कुर्याद्रक्षां समीक्ष्य क्षणमिव विलयं याति दुष्टग्रहार्त्तिः॥

नीराजनमन्त्रोद्धारो नारायणीये—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणस्तथा।
रक्षन्तु त्वरितं बालं मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ॥ १ ॥

कालगुणोत्तरे—

पलाशा-ऽश्वत्थ-कपित्थ-बिल्वौदुम्बर-पल्लवाः।
पञ्चभङ्गाः स्मृता ह्येते बालानां हितकारकाः ॥ २ ॥
स्नापितं भूषितं बालं तता मुञ्चति सा ग्रही।

प्रयोगसारेऽपि—

पलाशोदुम्बरा-ऽश्वत्थ-बिल्व-न्यग्रोध-पल्लवाः।
कथितेन कषायेन परिषिञ्चेत्प्रशान्तये ॥

परिषिञ्चेत् = स्नापयेदिति मदनः।

अथ मन्त्रः—ॐ नमश्चामुण्डे इत्यादिर्बलिदाने पूर्वमुक्तः।

रक्षामन्त्रः प्रयोगसारे—

रक्ष रक्ष महादेव ! नीलग्रीव ! जटाधर !
ग्रहैस्तु सहितो रक्ष मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ॥ १ ॥

अमुं मन्त्रं भूर्जपत्रे विलिख्य तत्पत्रं भुजे बध्नीयादिति मदनः । बालकशिखास्पर्शपूर्वकं जपे मन्त्र उक्तः प्रयोगसारे—ॐ सर्वमातर इमं ग्रहं संहरन्तु हुरोदय २ स्फोटय २ स्वाहा २ गर्ज्ज २ सर गृह्ण २ आमर्द्दय २ हिम २ हन । एवं सिद्धि रुद्रो शापयति स्वाहा । अत्र होमोऽपि प्रयोगसारे—ॐ कूष्माण्डि भगवति ! सुरागिणि ! संमुण्डिते ! मुञ्च २ दह २ पच सर २ गच्छ स्वाहा २ ।

कृत्वा चतुष्पथे कुण्डं मन्त्रेणाऽनेन मन्त्रवित् ।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सहस्रं जुहुयात्तिलैः ॥ १ ॥
यान्ति दुष्टग्रहाः शान्तिं बलिना चाऽनुमोदिताः ।

बालरोदनपरिहारार्थं यन्त्रमुक्तं प्रयोगसारे—षडस्रं मध्ये ह्रींकारस्तन्मध्ये शिशोर्नाम विलिख्य षट्सु अस्रेषु ॐ लुलुव स्वाहेति मन्त्रस्य षडक्षराणि विलिख्य तद्बहिर्नमिव द्वितयं विलिख्य तद्बहिरधोमुखैरर्द्धचन्द्रैरावेष्ट्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य बालहस्ते बध्नीयादिति ॥

---

## अथ बालग्रहस्तवः ।

प्रयोगसारे—प्रणम्य शिरसा शान्तं गणेशाऽनन्तमीश्वरम् ।
बालग्रहस्तवं वक्ष्ये समस्ताऽभ्युदयप्रदम् ॥ १ ॥
तपसा यशसा दीप्त्या वपुषा विक्रमेण च ।
निर्दिष्टो यः सदा स्कन्दः स नो देवः प्रसीदतु ॥ २ ॥
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः ।
रक्तादित्योज्ज्वलः शान्तिः स नो देवः प्रसीदतु ॥ ३ ॥
यो नन्दनः पशुपतेर्मातॄणां पावकस्य च ।
गङ्गोमाकृत्तिकानां च स नो देवः प्रसीदतु ॥ ४ ॥

देवसेनापरिवृतो देवसेनाऽर्चितः सदा ।
देवसेनापतिः श्रीमान् स नो देवः प्रसीदतु ॥ ५ ॥
शक्तिः शक्तिधरापूरः कुमारः शिखिवाहनः ।
सुरारिहा महासेनः स नो देवः प्रसीदतु ॥ ६ ॥
प्रकृत्या सुन्दरो दान्तो देवैश्वर्योदयान्वितः ।
नानाविनोदसम्पन्नः स नो देवः प्रसीदतु ॥ ७ ॥
प्रबोधा सुप्रबोधा च बोधना सुप्रबोधना ।
प्रबुद्धा च प्रबोधा च सुप्रीता सुमनास्तथा ॥ ८ ॥
मनोन्मनीति विख्याता योगिन्यः पान्तु बालकम् ।
सुव्रता रुक्मिणी चैव मन्दवेगा विभीषणा ॥ ९ ॥
विद्युज्जिह्वा महानासा शतानन्दा तथाऽपरा ।
बालदा प्रमदा चेति योगिन्यः पान्तु बालकम् ॥१०॥
हरिणी चाऽथ वाराही वानरी क्रोष्टुकी तथा ।
कुबेरी कोटराक्षी च कुम्भकर्णा च चण्डिनी ॥११॥
बलाद्विकारिणी चेति योगिन्यः पान्तु बालकम् ।
शुद्धा विशुद्धा श्रद्धा च योगासिद्धा मितम्वदा ॥१२॥
सुभगा शुभदा गौरी बलाविकरिणीति च ।
नानाविज्ञानविख्याता योगिन्यः पान्तु बालकम् ॥१३॥
लम्बा प्रलम्बा च तथा लम्बकर्णा च लम्बिका ।
ज्वालाकराली कालिन्दी कालिकेति यथोदिताः ॥१४॥
स्वच्छन्दाऽऽचारसम्पन्ना योगिन्यः पान्तु बालकम् ।
प्रणीता सुप्रणीता च मालिनी विश्वमालिनी ॥१५॥
विमला कमला माली लोला रौद्री च विश्वदा ।
विचरन्त्यो यथा कामं योगिन्यः पान्तु बालकम् ॥१६॥
वायुवेगा महावेगा सुवेगा वेगवाहिनी ।

शशिनी हंसिनी दृष्टिः पुष्टिः पौष्टिकसिद्धिदा ॥१७॥
दिव्यानुभावावाहिन्यो योगिन्यः पान्तु बालकम् ।
भ्रमिनी भामिनी नित्या निर्भिन्ना सुभगा गुहा ॥१८॥
क्रेदिनी द्राविणी वामा योगिन्यः पान्तु बालकम् ।
रुद्रशक्तिविनिष्क्रान्तमेकाशीति-क्रमोदितम् ॥१९॥
योगिनीछन्दमेतद्धि सिद्धविद्याधराऽर्चितम् ।
स्कन्दग्रहाभिदैवं तद्बालकं पातु सर्वदा ॥२०॥
शकुनी रेवती देवी शिखा च मुखमण्डिका ।
प्रलम्बा पूतनाख्या च कटपूतनिका पुनः ॥२१॥
त्रिजया गोमुखी धूम्रा मुण्डमाला तथाऽपरा ।
अधोलम्बा च पद्मा च कुमुदाऽप्यथ चाऽम्बिका ॥२२॥
भानिनी चैव काली च देवी प्रेतमुखी तथा ।
ऐन्द्री मार्जारिका भूयः कुरुणी च शुभाकृशा ॥२३॥
कालरात्रिश्च माया च लोहिता पिलिपिञ्चिका ।
भीतारणी चक्रवादा भीषणा दुर्ज्जयापरा ॥ २४ ॥
तापनी कटकोली च मुक्तकेशी महाबला ।
अहङ्कारी जया तद्वदजमेषा त्रिदण्डिका ॥२५॥
रोदनी मुकुटाभिख्या ललाटा पिङ्गला तथा ।
शीतला बालिनी चैव तापसी पापराक्षसी ॥२६॥
मानसा धनदा देवी बलानावर्त्तिनी तथा ।
यमुना जातवेदा च मानिनी कलहंसिनी ॥२७॥
बालिका देवदूती च वायसी यक्षिणी तथा ।
स्वच्छन्दा पालिका चैव वासिनी चाम्बिकेति च ॥२८॥
पञ्चाशत्तु कुलोत्पन्नाश्चतुष्षष्टि समीरिताः ।
योगिन्यो नित्यसन्तुष्टाः स्कन्दाऽपस्मारदेवताः ॥२९॥

नानारक्षाधिकारस्था बालकं पान्तु सर्वदा ।
महालक्ष्मीर्महातङ्गा महासेना महाबला ॥३०॥
महाकम्पा महाभीमा महातेजा महोत्सवा ।
महासेना महाचण्डा मोहिनी वीरनायका ॥३१॥
एकवीरा विशालाक्षी सुकेशी सुमनास्तथा ।
सुकेशिनी च सन्तुष्टा दण्डिनी च विलम्बिनी ॥३२॥
भामिनी चाऽथ सौवर्णी सिंहवक्त्रा कटङ्किनी ।
भ्रमरा चञ्चला चम्पा सिद्धिदा च तथाऽपरा ॥३३॥
शातोदरी धृतिः स्वाहा स्वधाख्या च सनातनी ।
शम्बरा च तथा देवी नीलग्रीवा तथाऽम्बिका ॥३४॥
वितला गन्धिनी वामा क्रीडन्ती चैव वाहिनी ।
कर्षिणी मालती फुल्ला कालकर्णी च चण्डिका ॥३५॥
चित्रानना गुहा चेति पार्वती सङ्गतिर्गता ।
पञ्चाशन्नवसम्पन्ना शकुनी दैवतप्रिया ॥३६॥
योगिन्यः कामरूपिण्यो बालकं पान्तु सर्वदा ।
विश्वन्तपा प्रभावज्ञा सर्वज्ञा सर्वगा गुहा ॥३७॥
दुर्गा सरस्वती ज्येष्ठा श्रेष्ठा पद्मा पराऽपरा ।
प्रमदा रोहिणी शीता प्रह्वी प्रह्लादिनी विभा ॥३८॥
विभूतिर्विततिः प्रीतिः प्रकृतिप्रमतिर्यथा ।
एता भगवता सृष्टा योगिन्यो योगसिद्धिदाः ॥३९॥
पञ्चविंशतिराख्याता रेवती शक्तिगोचरा ।
जगदाप्यायनकरा बालकं पान्तु सर्वदा ॥४०॥
नन्दश्चैवोपनन्दश्च गोमतिः सुमतिस्तथा ।
विद्युज्जिह्वो महाकालः करालस्तिमिलोचनः ॥४१॥
तेजहोडा विरूपाक्षो गोमुखो वडवामुखः ।

कालाननः करालश्च शङ्कुकर्णो विभीषणः ॥४२॥
एते शङ्कुन्दनोत्पन्ना वीराः षोडश राक्षसाः ।
पूतना देवता जुष्टा बालकं पान्तु सर्वदा ॥४३॥
वज्रिणी शक्तिनी चाढ्या दण्डिनी खड्गिनी तथा ।
पाशिनी ध्वजिनी देवी गदिनी शूलिनी परा ॥४४॥
पविनी चक्रिणी चेति सर्वाकारा भयप्रदाः ।
एता दिङ्निर्मिता देव्यो योगिन्यो देवकीर्त्तिताः ॥४५॥
अधिभूतप्रधाना या पायात्सा शान्तपूतना ।
प्रसन्ना मातरः सर्वा बालकं पान्तु सर्वदा ॥४६॥
अर्थको जलको भूमा उग्रः स्कन्दश्च कीर्त्तितः ।
वीरेशाः पितृभिः सृष्टा नैजमेषाधिदेवताः ॥४७॥
पञ्चशक्तिप्रधानास्ते बालकं पान्तु सर्वदा ।
आदित्या वसवो रुद्राः पितरो मरुतस्तथा ॥४८॥
मुनयो मनवः काला ग्रहयोगाः सनातनाः ।
सिद्धाः साध्याश्च गन्धर्वा देव्यश्चाऽप्सरसां वराः ॥४९॥
विद्याधरा महादैत्या बालकं पान्तु सर्वदा ।
सहजा योगजा चैव वीरजा मन्त्रजा तथा ॥५०॥
योगिन्यो योगवनिता नानाविभवगोचराः ।
भवानी नाम सन्तुष्टा बालकं पान्तु सर्वदा ॥५१॥
भूर्लोके च भुवर्लोके स्वर्लोके याश्च मातरः ।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च क्रीडन्त्योऽनन्तमूर्त्तयः ॥५२॥
प्रसन्नयोगसम्पन्ना दिव्यैश्वर्यसमन्विताः ।
स्वच्छन्दपदसम्भूतैर्भैरवैः परिवारिताः ॥५३॥
रक्षन्तु बालकं प्रीताः शान्तिर्नयतु चेतसा ।
दिव्यं स्तोत्रमिदं पुण्यं बालरक्षाधिकारकम् ॥५४॥

जपेत्सन्तानरक्षार्थं बालद्रोहोपशान्तिदम् ॥
इति बालस्तवः ।

इदं च स्तवान्तं कृत्यमाद्यमासवर्षयोर्द्वितीयादि दिन-मास-वर्षेष्वपि कार्यं विशेषस्तूच्यते—

कुमारतन्त्रे-प्रथमे दिवसे मासे वर्षे वा योगिनी तदा ।
अथवा नन्दिनी नाम्ना पूतनाऽऽक्रमते शिशुम् ॥ १ ॥
तद्गृहीतस्य बालस्य ज्वरः स्यात्प्रथमं ततः ।
गात्रशोषश्च वैवर्ण्यं नाऽऽहारेच्छा भृशं भवेत् ॥ २ ॥
छर्दि-मूर्च्छा च कम्पश्च हीनज्वरयुतस्तथा ।
विधानं तत्र वक्ष्यामि येन मुञ्चति पूतना ॥ ३ ॥
नदी मृत्तिकया कुर्याच्छोभनां पुत्रिकां ततः ।
शुक्लौदनं शुक्लगन्धस्तथा शुक्लाऽनुलेपनम् ॥ ४ ॥
शुक्लपुष्पाणि वै पञ्च ध्वजाः पञ्च प्रदीपिकाः ।
स्वस्तिकाः पञ्चपूर्वाह्णे पूर्वस्यां दिशि संयतः ॥ ५ ॥
बलिं दद्यादथो श्वेतसर्षपोशीरमेव वा ।
शिवनिर्माल्य-मार्जार-नृकेशान्निम्बपत्रकम् ॥ ६ ॥
गव्यं घृतं चेत्येतेन धूपयेच्चैव बालकम् ।
एवं दिनत्रयं कृत्वा चतुर्थे शान्तिवारिणा ॥ ७ ॥
स्नापयेद्बालकं पश्चाद्भोजयेच्चापि भिक्षुकम् ।
क्षीरेण भोजयेदेवं सुस्थो भवति बालकः ॥ ८ ॥

शान्तिवारिणेति शन्न इन्द्राग्नी शन्नो वात इत्यादिकैः स्व-स्व-शाखापठितैर्मन्त्रैरभिमन्त्रितं वारि शान्तिवारि । अथवा वक्ष्यमाण-मन्त्रेण शतकृत्वोऽभिमन्त्रितं वारि शान्तिवारि ॥ १ ॥

द्वितीयदिवसे मासे हायने वा सुनन्दना ।
गृह्णाति पूतना बालं योगिनी स्वस्तनाऽपि वा ॥ १ ॥
ततो भवेज्ज्वरः पूर्वं सङ्कोचो हस्त-पादयोः ।

दन्तान्प्रखादत्यनिशं निमीलयति चक्षुषी ॥ २ ॥
आहारं च न गृह्णाति दिवारात्रं च रोदिति ।
अक्षिरोगं छर्दनं च भवेद्भीतिः पुनः पुनः ॥ ३ ॥
कृशत्वं च प्रजायेत इत्येतच्छिशुलक्षणम् ।
तण्डुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्मायाऽथ पुत्रिकाम् ॥ ४ ॥
त्रयोदशध्वजा दीपाः स्वस्तिकाय बलोदना ।
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन सिद्धापूपाश्च मत्स्यकाः ॥ ५ ॥
मांसं चेत्येतदखिलं पश्चिमायां दिशि क्षिपेत् ।
पश्चिमायां च सन्ध्यायामेतद्द्याद्दिनत्रयम् ॥ ६ ॥
धूपशान्ति-स्नान-ब्राह्मणभोजनानि च पूर्ववत् ॥ २ ॥

तृतीये दिवसे मासे वर्षे वा पूतनाऽभिधा ।
गृह्णीयाद्योगिनी बालं ततः पूर्वं ज्वरो भवेत् ॥ १ ॥
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन पुत्रिकां कारयेत्ततः ।
रक्तौदनं ध्वजो रक्तः स्वस्तिको रक्त एव च ॥ २ ॥
रक्तपुष्पं रक्तगन्धस्तथा रक्ताऽनुलेपनम् ।
पश्चिमायां च सन्ध्यायामुदीच्यां निक्षिपेद्बलिम् ॥ ३ ॥
धूपशान्ति-स्नान-ब्राह्मणभोजनानि च पूर्ववत् ॥ ३ ॥

चतुर्थेऽहनि मासे तु वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
तुषमण्डनिका नाम पूतना चाऽथ योगिनी ॥ १ ॥
भीषणाख्या ततस्तस्य जायते प्रथमं ज्वरः ।
गात्रभङ्गो स्थितिर्मूर्द्धो वैवर्ण्यं चाऽक्षिमीलनम् ॥ २ ॥
वैकल्पं श्यामता श्वासः कासो रुचिरितिङ्गितम् ।
तिलपिष्टमयैः कृत्वा पुत्रिकां बिल्वकण्टकैः ॥ ३ ॥
अष्टाङ्गं रचयेत्पुष्प-युक्तं शुक्लध्वजोऽर्जुनः ।
स्वस्तिकोऽर्द्धप्रस्थसिद्धं भक्तं तावदपूपकाः ॥ ४ ॥

त्रिसन्ध्यं पश्चिमाऽऽशायां बलिं दद्यात्प्रयत्नतः ।
तान्रदधूपका इति अर्द्धप्रस्थपरमितेनाऽन्नेन कृता इत्यर्थः ।
गोशृङ्गं सर्पनिर्मोकं लशुनं निम्बपत्रकम् ॥ ५ ॥
मनुष्यकेश-मार्जार-लोमान्याज-घृतं तथा ।
एतैश्च धूपयेदेकनिशि सन्ध्यात्रयेऽपि च ॥ ६ ॥
एकनिशि एकस्मिन्नेव दिने बलिरित्यर्थः ।
शान्तिस्नानमन्त्रब्राह्मणभोजनानि च पूर्ववत् ॥ ४ ॥
पञ्चमे दिवसे मासे वर्षे वा पूतना शिशुम् ।
विडालिकाख्या गृह्णीयात्प्रथमं जायते ज्वरः ॥ १ ॥
हिक्का श्वासश्च शूलं च गात्रभङ्गो रुचिस्तथा ।
तण्डुलप्रस्थपिष्टेन निर्मायाऽथोरुपुत्रिकाम् ॥ २ ॥
शुक्लोदनं ध्वजाःपञ्च स्वस्तिकाः पञ्च चोज्ज्वलाः ।
पञ्च दोषास्त्रशुक्लानि कुसुमानि च चन्दनम् ॥ ३ ॥
अपराह्णे वृक्षमूले पश्चिमायां दिशि क्षिपेत् ।
धूपस्तु गोशृङ्गं लशुनमित्यादिकः ।
शान्तिस्नानमन्त्रब्राह्मणभोजनानि ॥ ५ ॥
षष्ठेऽहनि तथा मासे हायने चापि बालकम् ।
पूतना शकुनीर्नाम गृह्णीयात्तदनन्तरम् ॥ १ ॥
ज्वर उद्वेजनं गात्रे शोषः श्वासोऽरुचिस्तथा ।
कासश्च हस्त-पादा-ऽक्षिसङ्कोचश्चेति लक्षणम् ॥ २ ॥
तण्डुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्मायाऽथ पुत्रिकाम् ।
कृष्णोदनं ध्वजाः पञ्च कृष्णाः स्वस्तिकपञ्चकम् ॥ ३ ॥
कृष्णमेवाऽथ मत्स्यांश्च पायसं दुग्धमेव च ।
मांसं चाऽपूपकास्त्वर्द्धप्रस्थपिष्टविनिर्मिताः ॥ ४ ॥
अपराह्णे पश्चिमायां निक्षिपेद्बलिपुत्रिकाम् ।
पुत्रिकां पूर्ववत्कृत्वा प्रललं शूलपाचितम् ॥ ५ ॥

मत्स्याः पर्पटिकाश्चैव रक्तं च प्रस्थसम्मितम् ।
उदीच्यां पूर्वसन्ध्यायां बलिर्देयः प्रशान्तये ॥ ६ ॥

अत्र बलिदानयोर्विकल्पः । तयोरेव कालयोर्बलिकस्य धूपो देयः गोश्टङ्गलशुनमित्यादिकः । तथा शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च ॥७॥ बलिदानपूजायां मन्त्रस्तु—ॐ फट् २ स्वाहा ।

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा शुष्करेवती ।
गृह्णाति पूतना बालं ततः स्यात्प्रथमं ज्वरः ॥ १ ॥
गात्रभङ्गोऽथ विद्वेष आहारे कम्परोदने ।
इत्येतल्लक्षणं तत्र बलिर्देयः प्रशान्तये ॥ २ ॥
प्रस्थसम्मितपिष्टेन सम्यक् कृत्वाऽथ पुत्रिकाम् ।
सप्त ध्वजाः सप्त दीपाः स्वस्तिकाः सप्त वै तथा ॥ ३ ॥
पुष्पाणि मत्स्य-मांसं च भक्तं चेत्युदगाहरेत् ।

धूपस्तु गोश्टङ्गलशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनम् । मन्त्रस्तु—ॐ ह्रीं फट् स्वाहा ।

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे चाऽऽक्रमते शिशुम् ।
बिडालिका नामधेया पूतनाऽस्य ततो ज्वरः ॥ १ ॥
गात्रभेदोऽत्र रुदितं रोदनं नेत्रमीलनम् ।
जिह्वाशोषः शिरस्फोट आहारद्वेष एव च ॥ २ ॥
अक्षिरोगो भवेदेतदिङ्गितं तद्ग्रहाच्छिशोः ।
तण्डुलप्रस्थपिष्टेन पुत्तलां कारयेत्ततः ॥ ३ ॥
पायसं मधु-सर्पिश्च क्षीर-लाजाश्च शष्कुली ।
गुग्गुलुं मेषमांसं च तथा पर्पटिका अपि ॥ ४ ॥
ध्वजा दीपाश्च चत्वारो गन्धा नानाविधा अपि ।
सुमनांसि च रक्तानीत्येवं मन्त्रोदितो बलिः ॥ ५ ॥
अमुं समाहरेत्पूर्वं सन्ध्यायां दक्षिणादिशि ।
कृष्णाऽष्टम्यां वक्ष्यमाण-मन्त्रेणाऽनेन संयतः ॥ ६ ॥

ॐ नमो नारायणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय । ॐ ह्रीं फट् स्वाहा । अनेनैव च मन्त्रेण पूजादिबलिहरणान्तं कर्म कुर्यात् । धूपस्तु गोशृङ्गलशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च । अत्र कृष्णाष्टम्यां बलिहरणमिति न नियमार्थम् । किन्तु स्वति सम्भवे प्राशस्त्यार्थम् । अन्यथा तत्प्रतीक्षायां शिशुविनाशापत्तेः ॥ ८ ॥

नवमे दिवसे मासे हायने वाऽपि बालकम् ।
गृह्णाति मदना नाम्नी पूतना तदनन्तरम् ॥ १ ॥
ज्वरश्छर्दिर्व्रणाऽऽध्मानं कास-श्वासश्च तृष्णता ।
गात्रभङ्गश्च शूलं च चिह्नान्येतानि बालके ॥ २ ॥
प्रस्थमात्रेण पिष्टेन विनिर्माय च पुत्रिकाम् ।
ओदनं मत्स्य-मांसं च पर्पटीं चेक्षुमूलिकाम् ॥ ३ ॥
निक्षिपेत्पूर्वसन्ध्यायामुत्तरस्यां बलिं दिशि ।

अत्र मन्त्रः—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय कृष्णमण्डले बलिमाबाय हर हुं फट् स्वाहा । धूपस्तु गोशृङ्गलशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च ॥९॥

दशमे दिवसे मासे हायने वाऽथ बालकम् ।
पूतना रेवती नाम्ना गृह्णीयाद्बालकं ततः ॥ १ ॥
ज्वरः छर्दिः कास-श्वासौ शूलं चेत्येतदीरितम् ।
यत्र द्वेषश्च तत्राऽयं बलिर्देयो विचक्षणैः ॥ २ ॥
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन पुत्रिकां तत्र प्रकल्पयेत् ।
अष्टाङ्गं लेखयेत्तत्र बिल्ववृक्षस्य कण्टकैः ॥ ३ ॥
गुडादनं च सर्पिश्च ध्वजानां पञ्चविंशतिः ।
स्वस्तिकानां प्रदीपानां पञ्चविंशतिरेव च ॥ ४ ॥
चत्वारि रक्तपुष्पाणि ह्येतद्दक्षिणदिग्गतः ।
सन्ध्यात्रये वक्ष्यमाण-मन्त्रेणाऽनेन निक्षिपेत् ॥ ५ ॥

अत्र मन्त्रः—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय हन२ हुं फट् स्वाहा । धूपो गोशृङ्गलशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च ॥१०॥

एकादशदिने मासे हायने पूतनाऽर्चिका ।
गृह्णाति बालकं पश्चाज्ज्वरस्तस्य प्रजायते ॥ १ ॥
अन्नद्वेषो मुखे शोषो गात्रभङ्गश्च रोदनम् ।
ऊर्ध्वदृष्टिरपीत्येतल्लक्षणं तद्गृहाच्छिशोः ॥ २ ॥
पुत्रिका माषपिष्टेन रचित्वा शुक्लमोदनम् ।
पुष्पाण्यपि च शुक्लानि ध्वजानां पञ्चविंशतिः ॥ ३ ॥
स्वस्तिकानां प्रदीपानां पञ्चविंशतिरेव च ।
एतत्सर्वं यमाशायां सन्ध्यायां प्रातराहरेत् ॥ ४ ॥

अत्र मन्त्रः—ॐ नमो भगवते ताराय चन्द्रहास-वज्रहस्ताय ज्वल दुष्टग्रहाय ॐ फट् स्वाहा । धूपस्तु-गोशृङ्गलशुनमित्यादिकः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च । प्रथमदिवस-मास-वर्षगृहीतपूतनाहरोक्तं द्रष्टव्यम् ॥ ११ ॥

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे या पूतना शिशुम् ।
अद्भुताख्या प्रगृह्णाति ज्वरः स्यात्प्रथमं ततः ॥ १ ॥
रोदनं सर्वदा दन्त-खादनं रक्तनेत्रता ।
रोमाञ्चस्ताप इत्येतदखिलं तस्य लक्षणम् ॥ २ ॥
तण्डुलप्रस्थपिष्टेन कृत्वा तन्नाम पुत्रिकाम् ।
त्रयोदश स्वस्तिकाश्च ध्वजा दीपास्त्रयोदश ॥ ३ ॥
अपूपा मत्स्य-मांसं च तथा पर्पटिका अपि ।
एतत्सर्वं दक्षिणस्यां दिशि मन्त्रेण निक्षिपेत् ॥ ४ ॥

मन्त्रस्तु—ॐ नमो नारायणाय ज्वल वज्रहस्ताय हर हर शोषय २ मर्दय २ पातय हन हन दुष्टसत्वानां हुँ फट् स्वाहा । गोशृङ्गमित्यादिको धूपः । शान्तिस्नानं ब्राह्मणभोजनं च ॥ १२ ॥

---

## अथ बौधायनोक्ता ज्वराद्युत्पत्तौ शान्तयः ।

। प्रतिपदि कष्टं सन्देहो वा दिनान्यष्टादश । अग्निर्देवता अग्निरस्मीति पूजामन्त्रः । हैमीप्रतिमा । घृत-धूपो घृत-दीपश्च । यथा-

सम्भवं नैवेद्यं घृतं होमद्रव्यं शान्तिर्भवति । अत्र सर्वत्र प्रथमं तत्तत्तिथिदेवतामन्त्रजपः । सहस्रादि-सङ्ख्याकः पश्चात्पूजा-होमदानादि-होमसंख्या चाऽष्टोत्तरशतादिर्व्याधितारतम्येन कल्प्या । सहस्रं मृत्युनिर्देशः ॥ १ ॥ द्वितीयायां दिनानि षोडश ब्रह्मा देवता ब्रह्मजज्ञानमिति जप-पूजा-होममन्त्रः । अगुरुर्धूपः घृतदीपः सर्वत्र शर्करानैवेद्यं तिल-यवा-ऽऽज्यानि होमद्रव्यं प्रतिमा च हैमी ॥ २ ॥ तृतीयायां दिनानि नवपार्वतीदेवता गौरीर्मिमायेति मन्त्रः । दूर्वाभिः पूजा कुङ्कुम-धूपः । गुग्गुलुर्वा धूपो घृतदीपः । द्राक्षा-क्षीराऽऽज्यं नैवेद्यम् । पायसं मधुराक्तं दूर्वाश्च होमद्रव्यं प्रतिमा हैमी ॥ ३ ॥ चतुर्थ्यां दिनानि षोडशगणपतिर्देवता गणानान्त्वेति पूजा होमादिमन्त्रः । हैमीप्रतिमा कुङ्कुमं रक्तचन्दनं गन्धः करवीरादीनि पुष्पाणि अगुरुर्धूपो घृतदीपो लड्डुका इक्षुखण्डानि नैवेद्यं नारिकेरशकलानि कदलीफलानि च होमद्रव्यम् ॥ ४ ॥ पञ्चम्यां दिनान्येकविंशतिर्नागा देवताः हैमीप्रतिमा नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति मन्त्रः । चन्दनं गन्धः सुरभिपुष्पाणि घृत-धूपः पयो नैवेद्यं तिल-यवाऽऽज्य-पायस-शर्करा-मधुनि यथायोगं होमद्रव्यम् ॥ ५ ॥ षष्ठ्यां दिनानि द्वादश स्कन्दो देवता द्रप्सश्च स्कन्देति पूजामन्त्रः । पीतं चन्दनं रक्तं वा गन्धः रक्तानि पुष्पाणि जातीपुष्पाणि वा । जटामांसी धूपः । लड्डुकादिनैवेद्यं फलानि वा तिल-यवाऽऽज्यं होमद्रव्यं हैमीप्रतिमा शान्तिर्भवति ॥ ६ ॥ सप्तम्यां दिनान्यष्टौ दिननाथो देवता । आसत्येन आकृष्णेनेति वा मन्त्रः । हैमी ताम्रजा वा प्रतिमा कुङ्कुमं गन्धः करवीरादीनि पुष्पाणि गुग्गुलो धूपः शर्कराघृतसंयुतं पायसं नानाफलानि च नैवेद्यमर्कसमिधः पायसं होमद्रव्यम् ॥ ७ ॥

अष्टम्यां दिनानि त्रयोदश ईश्वरो देवता तमीशानमिति पूजामन्त्रः । राजती प्रतिमा कर्पूरमिश्रितं चन्दनं गन्धः बिल्वदलानि अर्कपुष्पाणि नीलोत्पलानि च पुष्पाणि । जटामांसी धूपः पायसं नानाभक्षाश्च नैवेद्यं मधुराक्तास्तिला होमद्रव्यं साङ्गशान्तिर्भवति ॥ ८ ॥ नवम्यां दिनान्यष्टादश भगवती दुर्गादेवता जातवेदस इति पूजामन्त्रः । हैमीप्रतिमा रक्तं चन्दनं गन्धः कुङ्कुमादिकं वा । जपाकुसुमादिकं पुष्पं गुग्गुलुर्धूपः घृतपक्वं नैवेद्यं त्रिमधुराक्तं पायसं होमद्रव्यं देव्यै दधिनकपात्रदानं तद्भक्ताय वा ॥ ९ ॥ दशम्यां दिनानि

पञ्चविंशतिः यमो देवता हैमी लौही वा प्रतिमा यमाय त्वेति पूजामन्त्रः । चन्दनं मृगमदश्च गन्धः मधुसर्ज्जरसश्च धूपः तिलतैलदीपः । बिल्वपत्राणि कृष्णतिलाश्च पूजाद्रव्यं कृशरान्नं नैवेद्यं घृतं मधु-तिल-मुद्गा होमद्रव्यम् ॥ १० ॥ एकादश्यां दिनानि सप्त विश्वेदेवा देवता विश्वे देवास इति मन्त्रः हैमी प्रतिमा श्वेतचन्दनगन्धः कृष्णाऽगुरुधूपः घृतदीपः तुलसीपत्राणि पूजायां यवमोदकं नैवेद्यं तिल-यव-मध्वाज्यं होमद्रव्यम् ॥ ११ ॥ द्वादश्यां दिनानि दश रुद्रो देवता या ते रुद्रेति मन्त्रः । हैमीप्रतिमा चन्दनं श्रीखण्डं अगुरुधूपो घृतदीपः पायसं नैवेद्यं चम्पकं पुष्पं कमलं वा । पूजायां तिल-यवा-ऽऽज्य-व्रीहि-मधूनि होमद्रव्यं शान्तिर्भवति ॥ १२ ॥ त्रयोदश्यां दिनान्यष्टौ शशी देवता रौक्मी राजती वा मूर्तिः आप्यायस्वेति मन्त्रः । पूजादौ श्वेतचन्दनं गन्धः चन्दनधूपः घृतदीपः । दधि-शर्करा-नैवेद्यं तिल-यवास्त्रिमध्वक्ता होमद्रव्यं शान्तिर्भवति ॥ १३ ॥ चतुर्दश्यां दिनानि द्वाविंशतिः शम्भुर्देवता शम्भवायेति मन्त्रः । रौक्मी राजती वा मूर्तिः श्वेतचन्दनं गन्धः, अर्कपुष्पं बिल्वदलानि वा अगुरुधूपः पायसं नैवेद्यं त्रिमध्वक्तास्तिला होमद्रव्यम् ॥ १४ ॥

अमायां दिनान्यष्टादश शचीदेवता होता यत्तदिति मन्त्रः । हैमी प्रतिमा कुङ्कुमादि गन्धः नानासुगन्धपुष्पाणि कृष्णाऽगुरुधूपः फेणिका-पूरिकादिनैवेद्यं शर्कराघृतपायसं होमद्रव्यम् ॥१५॥

पूर्णिमायां दिनानि षोडश चन्द्रो देवता दमनकं पूजार्थमन्यत्सर्वं त्रयोदशीशान्तावुक्तं ग्राह्यम् ॥ १६ ॥ इति दोषशान्तिः ।

---

## अथाऽऽश्वलायनोक्ता वारशान्तिः ।

आदित्यवारस्य रुद्रो देवता या ते रुद्रेति मन्त्रः हैमी राजती वा मूर्तिः चन्दनं गन्धः अगुरुधूपः घृतदीपः पायसं नैवेद्यं होमद्रव्यं च ॥ १ ॥

सोमवारस्य पार्वतीदेवता गौरीर्मिमायेति मन्त्रः हैमी राजती वा मूर्तिः कुङ्कुमगन्धः सुगन्धिपुष्पम् । अगुरुधूपः । घृतदीपः । नानाभक्ष्याणि नैवेद्यं तिलयवा होमद्रव्यं देवभक्तसन्तर्पणं च ॥ २ ॥

भौमस्य स्कन्दो देवताऽन्यत्सर्वं षष्ठीशान्तिवत् ॥ ३ ॥

बुधवारस्य विष्णुर्देवता विष्णो रराटमसीति मन्त्रः। हैमं स्वरूपं पीतचन्दनं पीतपुष्पाणि कमलानि च अगुरुधूपो घृतदीपः यवलड्डुका नैवेद्यं तिल-यवा-ऽऽज्यहोमः ॥ ४ ॥

गुरुवासरस्य ब्रह्मादेवता ब्रह्म जज्ञानमिति मन्त्रः। हैमी प्रतिमा कुङ्कुमगन्धः पर्णपुष्पं गुग्गुलुधूपः शर्कराऽऽज्यं नैवेद्यं तिल-यवधाना घृतं होमद्रव्यम् ॥ ५ ॥

शुक्रवासस्य इन्द्रो देवता त्रातारमिन्द्रमिति मन्त्रः हैमी राजती वा मूर्तिः चन्दनं गन्धः चम्पकं पुष्पं अगुरुधूपः घृतपक्वं नैवेद्यं तिल-यवाऽऽज्यं मधूनि होमद्रव्यम् ॥ ६ ॥

शनिवारस्य यमो देवता यमेन दत्तमिति मन्त्रः हैमी लौही वा मूर्तिः। ताम्रजेति केचित्। चन्दनगन्धः पुष्पं कृष्णं मधु धूपः तिलतैलदीपः। मधु-मत्स्याश्च नैवेद्यं तिला मधु च होमद्रव्यं शान्तिर्भवति ॥ ७ ॥ इति वारशान्तयः।

---

## अथ नक्षत्रशान्तयः।

वृद्धवशिष्ठः—रोगशान्तिं प्रवक्ष्यामि रोगार्त्तानां शरीरिणाम्।
बलिपूजाङ्गहोमैश्च जपब्राह्मणभोजनैः ॥ १ ॥
यस्मिन् धिष्ण्ये यदा नृणां रोगः सञ्जायते तदा।
तद्धिष्ण्यपूजा कर्त्तव्या तत्तदीश्वरतुष्टये ॥ २ ॥
सुवर्णेन प्रमाणेन तदर्द्धाऽर्द्धेन वा पुनः।
धिष्ण्येशप्रतिमा कल्प्या यथावित्तानुसारतः ॥ ३ ॥
ईशान्यामथवा प्राच्यामुदीच्यां दिशि संलिखेत्।
तण्डुलोपर्यष्टदलं पद्मं गोमयमण्डले ॥ ४ ॥
पञ्चामृतैः सलेपैश्च तत्तन्मन्त्रैः पृथक् पृथक्।
स्नाप्य कल्पोक्तमन्त्रेण प्रतिमां स्थापयेत्पुनः ॥ ५ ॥
कर्णिकायां सुसंस्थाप्य ध्यात्वा देवं समर्चयेत्।
तद्वर्णवस्त्रगन्धाद्यै रक्तधूपोपहारकैः ॥ ६ ॥
आरक्तवर्णं कुम्भं च पञ्चत्वक् पल्लवैर्युतम्।

शुक्लवस्त्र-स्वर्णरत्न-सर्वौषधि-समन्वितम् ॥ ७ ॥
मृत्पञ्च गव्य-सद्बीज-फल-क्षौद्र-कुशान्वितम् ।
देवस्य पूर्वतः स्थाप्यं जलमन्त्रैः समर्चयेत् ॥ ८ ॥
प्रतीच्यां स्थण्डिले वह्निं विधिवत्स्थापयेत्ततः ।
मुखान्ते जुहुयादुक्त-द्रव्येणाऽष्टसहस्रकम् ॥ ९ ॥
तिलहोमं व्याहृतिभिरष्टोत्तरसहस्रकम् ।
पूर्णाहुतिं च जुहुयात्सम्यक्-जपादिपूर्वकम् ॥१०॥
ततः शुद्धोपविष्टस्य रोगिणः प्राङ्मुखस्य च ।
मन्त्रपूतैः कुम्भजलैरब्लिङ्गैर्वारिमन्त्रकैः ॥११॥
मार्जनं कारयेत्तस्य सम्यक् सङ्कल्पपूर्वकम् ।
नीराजनं च शुद्धात्मा पूजास्थानं समागतः ॥१२॥
देवं हुताशनं भक्त्या प्रणम्य प्रार्थयेदिति ।
अमृतोद्भवधिष्ण्येश ! यतस्त्वं शङ्करात्मकः ॥१३॥
रोगादस्माच्च मां रक्ष तव वश्यश्च धिष्ण्यपः ।
इति प्रार्थ्य ततो दद्यात्प्रतिमां वस्त्रसंयुताम् ॥१४॥
दक्षिणासहितां भक्त्या आचार्याय कुटुम्बिने ।
ब्राह्मणाय यथाशक्त्या ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥१५॥
कृत्वा नक्षत्रपूजान्तं तिथिवासरयोरपि ।
सर्वान्कामानवाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥१६॥
अश्विन्यामुत्थितो व्याधिर्नवरात्रेण मुञ्चति ।
देवस्य त्वेति मन्त्रस्य गायत्री कश्यपोऽश्विनौ ॥१७॥
श्वेतवर्णौ सुधापूर्ण-कलशाम्भोजधरौ पृथक् ।
चन्दनोत्पल-पुष्पा-ऽऽज्य-गुग्गुलौ तु गुडप्रियौ ॥१८॥
क्षीर-लड्डुकभोक्तारौ समिधः क्षीरवृक्षजाः ।
गुडोदनबलिं दद्यादीपैः सार्द्धं निशामुखे ॥१९॥ (१)

भरण्यामुत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदः ।
मासेन मुञ्चत्यथवा दैवस्य कुटिला गतिः ॥२०॥
त्र्यम्बकस्य मन्त्रस्य प्रोक्ताश्छन्दर्षिदेवताः ।
गन्धोऽगरुकरवीरं पुष्पं धूपश्च गुग्गुलः ॥२१॥
अष्टदीपं च सर्वेषां नैवेद्यं च गुडौदनम् ।
पाशदण्डधरो रक्तस्त्वाज्य-मध्वाक्ततैर्हविः ॥२२॥
महिषीनायकारूढः कृसरान्नं बलिं हरेत् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण बलिं सम्यक् प्रदापयेत् ॥२३॥ (२)
कृतिकासूत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ।
स्रुक् स्रुवाभयवरदः स्ववर्णो मेषवाहनः ॥२४॥
मेधातिथिर्जगत्यग्नी पुनन्तु मामित्यस्य च ।
चन्दनं यूथिकापुष्प-घृत-दीपः सुगुग्गुलुः ॥२५॥
नैवेद्यं तिलमाषान्नं वरकान्नेन संयुतम् ।
गुडोदनं हविस्तत्र पायसेन बलिं हरेत् ॥२६॥ (३)
रोहिण्यामुत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ।
नमो ब्रह्मणमन्त्रस्य गायत्रीविधिरीश्वरः ॥२७॥
शुक्लः कमण्डलुस्त्वक्ष-सूत्राभयवरप्रदः ।
चन्दनं कमलं पुष्पं स दशाङ्गं च गुग्गुलम् ॥२८॥
नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं सर्वदा तैर्हविर्भवेत् ।
दधि-क्षीर-घृत-क्षौद्र-शाल्यन्नेन बलिं हरेत् ॥२९॥ (४)
चन्द्रभे चोत्थितो व्याधिः पञ्चरात्रेण मुञ्चति ।
गदावरदपाणिश्च श्वेतो सौरथवाहनः ॥३०॥
नवो नवो भवत्यस्य गायत्री गौतमः शशी ।
चन्दनं कुमुदं पुष्पं दशाङ्गं पायसोदनम् ॥३१॥
नैवेद्यं मण्डकाऽपूप-घृत-क्षौद्रसमन्वितम् ।

शर्करा-दधिपिष्टेण शुक्लान्नेन बलिं हरेत् ॥३२॥(५)
आर्द्रायामुत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदः ।
मासेन मुञ्चत्यथवा दैवस्य कुटिला गतिः ॥३३॥
शुद्धस्फटिकसङ्काश-शूलखड्गाभयेष्टदः ।
नमः शङ्करायेत्यस्य बृहतीशो विधी ऋषिः ॥३४॥
चन्दनं सौरभं पुष्पं दशाङ्गं पायसोदनम् ।
सम्मध्वाज्यं हविस्तत्र दध्योदनबलिं हरेत् ॥३५॥(६)
पुनर्वसौ भवेद्व्याधोर्नवरात्रेण मुञ्चति ।
कमण्डलुवस्त्रसूत्रेध्मदर्भास्रुक्स्रुवभृत् सदा ॥३६॥
अदितिर्द्यौश्च मन्त्रस्य त्रिष्टुभो द्रुहिणोऽदितिः ।
हरिद्रा-कुङ्कुमं गन्धं पुष्पं सेवन्तिकाद्वयम् ॥३७॥
धूपो मलयजं पिष्टं घृतान्नं पीतवर्णकम् ।
घृताक्ततण्डुलहविः पीताऽन्नेन बलिं हरेत् ॥३८॥(७)
पुष्ये समुत्थितो व्याधिः सप्तरात्रेण मुञ्चति ।
पीतो दण्ड-कमण्डलुवस्त्र - सूत्राभयवरोद्यतः ॥३९॥
बृहस्पते परीत्यस्य त्रिष्टुप् जीवोऽङ्गिरा ऋषिः ।
कुङ्कुमं वारिजं पुष्पं नैवेद्यं घृतपायसम् ॥४०॥
मण्डका-गुडसंयुक्तमेतदेव हविर्भवेत् ।
समण्डक-घृतान्नेन बलिं तत्र प्रदापयेत् ॥४१॥(८)
आश्लेषासुत्थितो व्याधिः क्लेशान्मासेन मुञ्चति ।
नमो अस्त्विति मन्त्रस्य विराडग्निश्च सर्पराट् ॥४२॥
मधुवर्णो भोगयुक्तः खड्गचर्मधरः शुभः ।
सकुङ्कुमाऽगरुगन्धपुष्पं चाऽगस्तिसम्भवम् ॥४३॥
घृत गुग्गुल-धूपोऽत्र नैवेद्यं क्षीर-सर्पिषा ।
हविः साज्यं सुदध्यन्नं दध्योदनबलिं हरेत् ॥४४॥(९)

मघायां चोत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदः ।
अथवा सार्द्धमासेन धूम्रो दण्डपवित्रधृक् ॥४५॥
आयन्तु नस्त्विति चाऽस्य जगती पितरोऽजः ।
चन्दनं चम्पकं पुष्पं धूपः सघृत गुग्गुलः ॥४६॥
नैवेद्यं घृतपिष्टान्नं तिलाज्यं सघृतं हविः ।
सतिलान्नं च मुद्गान्नं बलिं च पितृतृप्तये ॥४७॥(१०)
पूर्वाफाल्गुनभे व्याधिरर्द्धमासेन मुञ्चति ।
भग एव भगवानित्यस्याऽनुष्टुप् भगो विधिः ॥४८॥
यथाऽभयकरः पद्म-वर्णः सिंहासने स्थितः ।
चन्दनं मालतीपुष्पं बिल्व-दीपो घृतोदनम् ॥४९॥
नैवेद्यं शर्करायूथलड्डुकाभिश्च संयुतम् ।
घृतोदनं हविस्तत्र पायसेन बलिं हरेत् ॥५०॥ (११)
अर्यमर्क्षे भवेद्व्याधिरर्द्धमासेन मुञ्चति ।
पद्मवर्णः पद्मसंस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ॥५१॥
अर्यमायाति मन्त्रस्य अर्यमा त्रिष्टुबञ्जनः ।
कर्पूरं कुङ्कुमं गन्धं पुष्पं धूपकसंज्ञकम् ॥५२॥
घृत-गुग्गुल-धूपोऽत्र नैवेद्यं घृतपायसम् ।
होमद्रव्यं घृताऽन्नं स्याच्छाल्यन्नेन बलिं हरेत् ॥५३॥(१२)
हस्ते समुत्थितो व्याधिर्नवरात्रेण मुञ्चति ।
उदुत्यमिति हिरण्यस्तूपो गायत्र्याऽदितिर्जपेत् ॥५४॥
रक्तगन्धं कुङ्कुमं च पुष्पं राजीवसंज्ञकम् ।
स-गन्धगुग्गुलो धूपो नैवेद्यं घृतपायसम् ॥५५॥
मधुपुष्पं तिला-ऽऽज्या-न्नं दूर्वाभिः सहितं हविः ।
गुड-शकर-मध्वाज्यपिष्टाऽन्नेन बलिं हरेत् ॥५६॥ (१३)
चित्रायामुत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ।

चित्रं देवानामित्यस्य त्वष्टाऽनुष्टुप् पितामहः ॥५७॥
अक्षसूत्राभयकरश्चित्रवर्णः शिवे रतः ।
स-कुङ्कुमाऽगरुर्गन्ध-कुसुमं चित्रवर्णकम् ॥५८॥
नैवेद्यं मोदकान्नाऽऽज्यं चित्राऽन्नं स-घृतं हविः ।
तदन्नेन बलिं दद्यात्सर्वरोगापनुत्तये ॥५९॥(१४)
स्वात्यृक्षे चोत्थितो व्याधिः सर्वदा निधनप्रदः ।
एक-द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चमासैर्वाऽपि विमुञ्चति ॥६०॥
स नः पितेति मन्त्रस्य गायत्री मरुदङ्गिराः ।
खड्गचर्मधरः कृष्णो गन्धः कृष्णाऽगरुर्भृशम् ॥६१॥
पुष्पं दमनकं धूपः चन्दनाऽगुरुगुग्गुलुः ।
नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं हविस्तेन बलिं हरेत् ॥६२॥(१५)
द्विदैवभे भवेद्व्याधिर्मासेनैकेन मुञ्चति ।
इन्द्राग्नी आगतमिति गायत्री चाऽस्य चैव हि ॥६३॥
मधुच्छन्द ऋषीन्द्राग्नी तयोर्ध्यानं च पूर्ववत् ।
श्रीखण्डकुङ्कुमं गन्धं तयोः पुष्पं सरोरुहम् ॥६४॥
देवदारुस्तयोर्धूपो नैवेद्यं घृतपायसम् ।
तदेवाऽन्नं हविस्तत्र चित्राऽन्नेन बलिं हरेत् ॥६५॥(१६)
मित्रभे चोत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ।
मित्रस्य चर्षणीरेति गायत्री चाऽस्य चैव हि ॥६६॥
ऋषिर्हिरण्यस्तूपाख्यस्तत्र मित्रोऽधिदेवता ।
द्विभुजः पद्मगर्भाभः पद्मभृत् पद्मसंस्थितः ॥६७॥
कुङ्कुमं पुण्डरीकाख्यं पुष्पं धूपं च चन्दनम् ।
नैवेद्यं पायसं साऽऽज्यं हविः कन्दं च सूरणम् ॥६८॥
बलिस्तत्र प्रदातव्यो मधु-शर्करा-पायसम् ।
घृत-पूरक-माषाऽन्नं मुद्गगर्भैश्च संयुतम् ॥६९॥(१७)

ज्येष्ठायामुत्थितो व्याधिर्मृत्युरेव न संशयः ।
अथवा मासमेकं वा मुञ्चत्येव न संशयः ॥७०॥
इन्द्रं च इति मन्त्रस्य गायत्रीन्द्रोऽङ्गिरा ऋषिः ।
इन्द्राय पूर्ववद्गन्धं च चन्दनं कुसुमं शुभम् ॥७१॥
कर्पूरधूपो नैवेद्यं चित्राऽन्नं सुमनोहरम् ।
हविस्तु सूरणं कन्दं मधु-कन्दं सुपायसम् ॥७२॥
विचित्र-पुष्पगन्धेन दध्यन्नेन बलिं हरेत् । (१८)
मूलभे चोत्थितो व्याधिर्मासाऽर्द्धेन विमुञ्चति ॥७३॥
खड्गचर्मधरः कृष्णः करालवदनः प्रभुः ।
मोषुणोऽस्य च गायत्री घोरः कण्वोऽथ नैर्ऋतिः॥७४॥
गन्धः कृष्णाऽगरुः पुष्पं पद्मं नीलोत्पलं शुभम् ।
धूपः कृष्णाऽगरुर्माषमिश्रान्नमुपहारकम् ॥७५॥
तदेवाऽन्नं हविस्तत्र माषाऽन्नेन बलिं हरेत् । (१९)
वारिभे चोत्थितो व्याधि रोगिणो निधनप्रदः ॥७६॥
विमुञ्चत्यथवा मासैर्द्वि-त्रि-षड्-नव-सप्तभिः ।
आप्यायस्वेति मन्त्रस्य गायत्री पद्मजो जलम् ॥७७॥
सुवर्णो द्विभुजः पद्म-पाणिर्गन्धस्तु चन्दनम् ।
पद्मं शैलेय-धूपोऽत्र नैवेद्यं घृतपायसम् ॥७८॥
हविर्मसूरपिष्टान्नं तदन्नेन बलिं हरेत् । (२०)
विश्वभे चोत्थितो व्याधिः सार्द्धमासेन मुञ्चति ॥७९॥
विश्वेदेवास इत्यस्य गायत्र्या विश्वदेवता ।
कमण्डल्वभयाम्भोजवरदश्च कुशासनः ॥८०॥
चन्दनं कमलं पुष्पं धूपं सघृत-गुग्गुलुः ।
नैवेद्यं पायसाऽऽज्यान्नं हविरप्येतदेव हि ।८१॥
समिद्भिर्निचुलैः सार्द्धं तदन्नेन बलिं हरेत् । (२१)

श्रवणे चोत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ॥८२॥
अतो देवेति मन्त्रस्य गायत्री पद्मजो हरिः ।
पीताम्बरः कृष्णवर्णः शङ्खचक्रगदाम्बुजः ॥८३॥
चन्दनं मालतीपुष्पं धूपः कर्पूरगुग्गुलः ।
शाल्यन्नं षड्रसोपेतं भक्ष्य-भोज्यादिभिः सह ॥८४॥
नैवेद्यं हविरप्येतत्पायसेन बलिं हरेत् । (२२)
वसुभे चोत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति ॥८५॥
शपन्तामिति मन्त्रस्याऽनुष्टुब् व्यासो वसुस्ततः ।
चाप-बाणधरः शुक्लगन्ध-कर्पूर-चन्दनम् ॥८६॥
वारितं गुग्गुलुर्धूपो नैवेद्यं घृतपायसम् ।
हविश्चोदुम्बर-समिद्-गुड-पायससंयुतम् ॥८७॥
लड्डुका-धूप-मध्वाज्य-तिल-पिष्टबलिं हरेत् । (२३)
वारुणे चोत्थितो व्याधिरष्टरात्रेण मुञ्चति ॥८८॥
इमं मे वरुण इत्यस्य गायत्री कण्ववारिपः ।
नाग-पाशधरः श्रीमान् वररत्नविभूषितः ॥८९॥
मकरस्थो गुरुर्गन्धः पुष्पं च कमलोत्पलम् ।
कर्पूरं चन्दनं धूपो नैवेद्यं घृतपोलिका ॥९०॥
हविरश्वत्थसमिधश्चित्राऽन्नेन बलिं हरेत् । (२४)
अजपाद्ये भवेद्व्याधिः सर्वदा निधनप्रदः ॥९१॥
अथवा बहुभिर्मासैर्दिवसैर्वा विमुञ्चति ।
वामपादकरं भूम्यामाकाशे त्वपरद्वयम् ॥९२॥
प्रसार्य प्राञ्जलिः साक्षादीश्वरं चिन्तयेत्स्थितः ।
शमग्निरित्यस्याऽजपाद्गायत्रीचतुराननः ॥९३॥
कुङ्कुमं चन्दनं गन्धं पुष्पं श्वेतार्कसम्भवम् ।
धूपः शतौषधीमिश्रो नैवेद्यं दधि-पायसम् ॥९४॥

हविः कूष्माण्ड-गन्धः स्याद्दध्यन्नेन बलिं हरेत् । (२५)
अहिर्बुध्न्ये भवेद्व्याधिः सार्द्धमासेन मुञ्चति ॥९५॥
नमस्ते रुद्र इत्यस्य सर्वं तत्रैव संस्थितम् ।
गन्ध-चन्दन-कर्पूरैः पुष्पं पद्मोत्पलं शुभम् ॥९६॥
स-बिल्व-गुग्गुलु-धूपो नैवेद्यं घृतपायसम् ।
मुद्ग-माष-तिलान्नाज्य-यव-व्रीहिमयं हविः ॥९७॥
पूषा च देवताम्भोज-वर्णो भोजधरं शुभम् ।
रक्तचन्दनगन्धोऽत्र पुष्पं मन्दार-संज्ञकम् ॥९८॥
धूपस्तु गुग्गुलुः साज्यो नैवेद्यं घृतपायसम् ।
हविस्तदेव स-जलं दध्यन्नेन बलिं हरेत् ॥९९॥(२६)
भूतेशानुगतो यस्माद्रोगनाथमहाज्वरः ।
रोगादस्माच्च मां त्राहि त्वं गृहीत्वोत्तमं बलिम् ॥१००॥

जन्मसन्धिषु नक्षत्र-राशि-लग्नेषु यमघण्टेषु प्रत्यरेनैधनतारकेऽष्टमचन्द्रे रोगोत्पत्तौ मृत्युः । रवि-मघा-द्वादशी-सोम-विशाखैकादशीनां भौमाऽऽर्द्रा-पञ्चमीनां बुधोत्तराषाढा-तृतीयानां गुरु-शतभिषक्-षष्ठीनां शुक्राऽश्विन्यष्टमीनां शनि-पूर्वाषाढा-नवमीनां च योगो मृत्युः । भरण्यनुराधा वा चन्द्रे, आर्द्रोत्तराषाढा वा सोमे, मघा शतभिषग्वा भौमे, अश्विनी विशाखा बुधे, ज्येष्ठा मृगशिरो वा गुरौ, श्रवण आश्लेषा वा भृगौ, पूर्वाभाद्रपदा शनौ चेन्मृत्युयोगः । अतोऽशोक्तास्तिथि-वार-नक्षत्रशान्तयो विस्तृताः कार्याः ।

अथ तिथि-वार-र्क्षेषु साधारणः प्रयोगः—

मासपक्षाद्युल्लिख्य ममोत्पन्नस्य व्याधेर्जीवच्छरीराविरोधेन समूलनाशार्थममुकनक्षत्राऽमुकदेवताख्यं जपं करिष्य इति सङ्कल्प्याऽष्टशताष्टसहस्रायुताऽन्यतमसंख्यया तत्तद्देवतामन्त्रस्य जपं कृत्वाऽन्येन कारयित्वा वा मास-पक्षाद्युल्लिख्य ममोत्पन्नव्याधेर्जीवच्छरीराविरोधेन समूलनिवृत्तयेऽमुकशान्तिं करिष्य इति सङ्कल्प्य । गणेशपूजा-ऽऽचार्यवरणान्तं कृत्वाऽऽचार्यं पूजयेत् । तत आचार्यो भूमौ तण्डुलैश्चतुरस्रं मण्डलं कृत्वा तत्र हैमीं तत्तन्नक्षत्रदेवतां

वस्त्रद्वयपरिवृत्तां वक्ष्यमाणतत्तद्गन्ध-धूपादिभिः पूजयेत् । तदीशान्यां धान्ये कुम्भं संस्थाप्य जलेनाऽऽपूर्य्य गन्ध-सर्वौषधि-दूर्वा-पल्लव-पञ्चत्वक्-सप्तमृत्-फलं पञ्चरत्न-पञ्चगव्य-हिरण्यानि तत्तन्मन्त्रैः क्षिप्त्वा वस्त्रद्वयेनाऽऽवेष्ट्य सर्वे समुद्रा इति तत्र तीर्थान्यावाह्य तत्त्वायामीति तत्र वरुणमावाह्य सम्पूज्याऽग्निं ग्रहांश्च प्रतिष्ठाप्याऽऽज्यभागान्ते तत्तन्नक्षत्रदेवतामन्त्रेण तत्तद्द्रव्येण चाऽष्टोत्तरसहस्राऽष्टोत्तरशताऽष्टाविंशत्यन्यतरसङ्ख्यया होमं कृत्वा शान्तिकलशेन यजमानाऽभिषेके विहिते तां प्रतिमां रोगी ब्राह्मणाय दद्यात् । उक्तगन्धाभावे चन्दनं पुष्पाभावे शतपत्रं धूपाभावे गुग्गुलुः । नैवेद्याभावे घृतोदनम् । होमद्रव्याभावे तिलाः । मन्त्राविज्ञाने गायत्री अष्टोत्तरसहस्रं मृत्युनिर्देशेऽष्टोत्तरशतमन्यत्र जुहुयात् । ततः कुशोदकैर्वरुणसूक्तैः पुराणमन्त्रैश्चाऽभिषेकं कुर्यात् । पूर्णाहुतिं वसोर्द्धारां च कृत्वा शान्तिपाठं कृत्वाऽऽशिषं दद्यात् । अतः सर्वशान्तिर्भवति । तत आचार्याय सुवर्णप्रतिमां वस्त्रयुग्मेन वेष्टितां सवत्सां गां साऽलङ्कारां दद्यात् । इतरेभ्योऽपि दक्षिणां दद्याद्ब्राह्मणांश्च भोजयेत् । इति रोगोत्पत्तिशान्तिप्रयोगः । मदनरत्ने-त्रिषु सर्वनक्षत्रशान्तिषु गायत्र्या यमोद्देशेन होमोऽष्टसङ्ख्यः बलिश्च तत्तन्नक्षत्रदेवतायै सोऽपि होमावशिष्टद्रव्येण क्वचिदन्येन । तच्च तत्र वक्ष्यते । अत्र रोहिणी-पुष्या-ऽऽश्लेषा-पूर्वा-हस्त-स्वाती-विशाखा-ऽनुराधा-ज्येष्ठा-मूलोत्तराषाढा-पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदासु घृतमेव होमद्रव्यमनुराधाबलिरपि तेनैवाऽन्यत्र तु होमे बलौ च विशेषस्तत्र वक्ष्यते । द्रव्ये तु विशेषोऽश्विन्यादिक्रमेण दुग्धाक्ताः क्षीरवृक्षसमिधो होमे दध्योदनं बलौ मध्वक्तास्तिलाः घृतं दध्योदनं च क्षीरान्नं बलौ ४ मुद्ग-तिला-घृत-मधु-घृताक्ता अक्षता ३ होमे गन्धं शाल्योदनं बलौ ॥७॥ गन्ध-माल्योदनं बलौ भिक्षान्नं बलौ ॥९॥ घृताक्ता अक्षत-तिला होमे । अक्षत-तिला बलौ ॥१०॥ गन्ध-पुष्पाणि बलौ ॥११॥ तिल-माषाः ॥१२॥ गन्धपुष्पबलौ ॥१३॥ जलयुतं होमे ॥ सघृता मुद्गा बलौ ॥१४॥ गन्ध-पुष्पाणि बलौ ॥१५॥ दुग्धाक्ताऽन्न-गन्ध-माल्यानि बलौ ॥१६-१७॥ गन्ध-माल्यं बलौ ॥१८॥ पायसं बलौ ॥१९॥ शालयो होमे । पायसं बलौ ॥२०॥ होमे पायसं बलौ ॥२१॥ बीजाऽक्षता होमे ॥ गन्ध-पुष्पाणि बलौ ॥२२॥ अश्वत्थसमिधो होमे । घृताक्तमुद्गा बलौ ॥२३॥ जल-पुष्पाणि होमे ॥ पायसं

बली ॥२४॥ गन्ध-माल्योदनं बली ॥२५॥ एकविंशतिः (२१) एकविंशतिः (२१) नव(९) नव (९) दश (१०) मृत्यु (१०) विंशतिः एकविंशतिः एकविंशतिः विकल्पमासाब्दौ सप्तविंशतिः (२७)। सप्त(७) अष्टौ(८) दश (१०) अष्टौ(८) अष्टाविंशतिः(२८) एकविंशतिः विंशतिः विंशतिः(२०) विंशतिः पञ्चविंशतिः (२५) विकल्पतः पक्षत्रयोदशदिनमासाः द्वादश (१२) दश (१०) दश (१०) अष्टाविंशतिः (२८) दिनानि क्रमात्पीडाऽन्ते सुखम्। आश्लेषा-मघा-पूर्वा-पूर्वाभाद्रपदासु पक्षे मृत्युरपि सम्भाव्यते।

## अथ ग्रहणशान्तिः

मत्स्यपुराणे—

होरायां ग्रस्यते यस्य नक्षत्रे वा निशाकरः ।
प्राणसन्देहमाप्नोति स वा मरणमृच्छति ॥ १ ॥
यस्याऽत्र जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशि-भास्करौ ।
तज्जनानां भवेत्पीडा ये जनाः शान्तिवर्जिताः ॥ २ ॥
यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्रहणसम्भवः ।
तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् ॥ ३ ॥
चन्द्रोपरागे सम्प्राप्ते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।
सम्पूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्याऽनुलेपनैः ॥ ४ ॥
पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम् ।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भानग्रतः सागरानिव ॥ ५ ॥
गजा-ऽश्व-रथ्या-वल्मीक-सङ्गमाद्-ह्रद-गोकुलात् ।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥ ६ ॥
पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं पञ्चत्वक् पञ्चपल्लवम् ।
रोचकं पद्मकं शङ्खं कुङ्कुमं रक्तचन्दनम् ॥ ७ ॥
शुद्धस्फटिकतीर्थाम्बु-सितसर्षपगोकुलान् ।
मधुकं देवदारुं च विष्णुक्रान्तां शतावरीम् ॥ ८ ॥
बलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव च ।

एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेऽष्टाऽऽवाहयेत्सुरान् ॥ ९ ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥१०॥
योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः ।
सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥११॥
मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमृतद्युतिः ।
चन्द्रोपरागसम्भूतां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१२॥
यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः ।
यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१३॥
रक्षोगणाधिपः साक्षी नीलाञ्जनसमप्रभः ।
खड्गहस्तोऽतिभीदश्च ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१४॥
नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः ।
चन्द्रोपरागकलुषं वरुणो मे व्यपोहतु ॥१५॥
प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगप्रियः ।
वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥१६॥
योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ।
चन्द्रोपरागदुरितं धनदो मे व्यपोहतु ॥१७॥
योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ।
चन्द्रोपरागपापानि निवारयतु शङ्करः ॥१८॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्म-विष्ण्वर्क-रुद्राश्च दहन्तु मम पातकम् ॥१९॥
एवमावाहयेत् कुम्भान्मन्त्रैरेभिश्च वारुणैः ।
एतानेव तथा मन्त्रान् स्वर्णपट्टे विलेखयेत् ॥२०॥
ताम्रपट्टेऽथवा लेख्य नव्यवस्त्रे तथैव च ।
मस्तके यजमानस्य निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः ॥२१॥

कलशान् द्रव्यसंयुक्तान्नानारूपसमन्वितान् ।
गृहीत्वा स्थापयेद्गूढं भद्रपीठोपरि स्थितम् ॥२२॥
पूर्वोक्तैरेव मन्त्रैश्च यजमानं द्विजोत्तमाः ।
अभिषेकं ततः कुर्युर्मन्त्रैर्वरुणसूक्तकैः ॥२३॥
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्याऽनुलेपनः ।
आचार्यं वरयेत्पश्चात्स्वर्णपट्टं निवेशयेत् ॥२४॥
आचार्यदक्षिणां दद्याद्गोदानं च स्वशक्तितः ।
गन्ध-माल्यै-र्धूप-दीपैः पूजयेद्देवतुष्टये ॥२५॥
होमं चैव प्रकुर्वीत तिलैर्व्याहृतिभिस्तथा ।
निवृत्ते ग्रहणे सर्वं ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥२६॥
दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
सूर्यग्रहे सूर्यनामयुक्तान्मन्त्रांश्च कीर्तयेत् ॥२७॥
चन्द्रपदस्थाने सर्वत्र सूर्यपदमूहनीयमित्यर्थः ।
अनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत् ।
न तस्य ग्रहणे दोषः कदाचिदपि जायते ॥२८॥

## अथ जलाशयवैकृतशान्तिः ।

गर्गः—नगरादुपसर्पन्ते समीप उपयान्ति च ।
नद्यो ह्रदप्रस्रवणा विरसा वै भवन्ति च ॥ १ ॥
विवरणं कलुषं तप्तं फेनवज्जन्तुसङ्कुलम् ।
क्षीरं स्नेहं सुरां रक्तं वहन्ते व्याकुलोदकम् ॥ २ ॥
षण्मासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं विदुः ।
जलाशया नदन्ते च प्रज्वलन्ति कथन्ति च ॥ ३ ॥
विमुञ्चति तथा ब्रह्मन् ! ज्वाला धूमं रजांसि च ।
अखाते वा जलोत्पत्तिः स-सत्त्वा वा जलाशयाः ॥ ४ ॥
सङ्गीतिशब्दा दृश्यन्ते जनमारभयं विदुः ।

दिव्यं महाभयं विद्धि मधुमात्राऽवसेचनम् ॥ ५ ॥
जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तैश्च होमो जले भवेत् ।
मध्वाज्ययुक्तं परमान्नमत्र देयं द्विजानामथभोजनार्थम् ।
गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्तास्तथोदकुम्भाःसकलाश्च शान्त्यै ॥६॥
इति जलाशयवैकृतशान्तिः ।

## अथ वृष्टिवैकृतशान्तिः ।

गर्गः—अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादौ भयं मतम् ।
अनृतौ तु दिवाऽनन्ता वृष्टिर्व्याधिभयाय तु ॥ १ ॥
अनभ्रवैकृता मेघमन्तरे गर्ज्जितादयः ।
शीतोष्णानां विपर्यासे ऋतूनां रिपुजं भयम् ॥ २ ॥
शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत् ।
अङ्गारपांशुवर्षेण नगरं तद्विनश्यति ॥ ३ ॥
मज्जा-ऽस्थि-स्नेह-मांसानां जनमारभयं भवेत् ।
फलं पुष्पं तथा धान्यं परेणाऽतिभयाय तु ॥ ४ ॥
पांशु-जन्तूफलानां च वर्षतो रोगजं भयम् ।
छिद्रावान्न प्रवर्षेण सस्यानामीतिवर्द्धनम् ॥ ५ ॥
विरजस्के रवौ व्यभ्रे यदा छाया न दृश्यते ।
दृश्यते तु प्रतीपा वा तत्र देशे भयं भवेत् ॥ ६ ॥
प्रतीपा = प्रतिकूलाच्छाया, विपरीतछायेत्यर्थः ।
निरभ्रे वा तथा रात्रौ श्वेतं याम्योत्तरेण तु ।
इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उल्कापातं तथैव च ॥ ७ ॥
दिग्दाहो परिघोपौ च गन्धर्वनगरं तथा ।
परचक्रभयं विन्द्याद्देशोपद्रवमेव च ॥ ८ ॥
सूर्येन्दु-पर्ज्जन्य-समीरणानां यागस्तु कार्यो विधिवद्द्विजेन्द्र ! ।
धान्यानि गो-काञ्चन-दक्षिणाश्च देया द्विजानामघनाशहेतोः ॥९॥
इति वृष्टि-वैकृतशान्तिः ।

## अथाऽग्निवैकृतशान्तिः ।

गर्गः—अग्निः प्रदीप्यते यत्र राष्ट्रे भृशमनिन्धनः ॥
न दीप्यते वेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीडयेन्नृप ! ।
ज्वलेदार्द्रश्च वंशो वा तथाऽऽर्द्रान्नं मृदः सुधा ॥ १ ॥
प्रासाद-तोरणं द्वारं नृप-वेश्म सुरालयम् ।
एतानि यत्र दह्यन्ते तत्र राजभयं वदेत् ॥ २ ॥
विद्युता वा प्रदह्यन्ते तत्राऽपि नृपतेर्भयम् ।
अनैशानि तमांसि स्युर्विना पांशु रजांसि च ॥ ३ ॥
धूमश्चाऽनग्निजो यत्र तत्र विद्यान्महाभयम् ।
तडिद्विनाऽभ्रं गगने भयं स्याद्वृष्टिवर्जिते ॥ ४ ॥
दिवा स-तारे गगने तथैव भयमादिशेत् ।
ग्रह-नक्षत्र-वैकृत्ये ताराविकृतिदर्शने ॥ ५ ॥
पुत्रवाहनदारेषु चतुष्पदगृहेषु च ।
स्वभावाद्वाऽपि हीयेत धेनु-वत्सादिकं च यत् ॥ ६ ॥
लोहायुधविकारः स्यात्तत्र सङ्ग्राममादिशेत् ।
त्रिरात्रोपोषितस्तत्र पुरोधाः सुसमाहितः ॥ ७ ॥
समिद्भिरर्कवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च ।
होमं कुर्यादग्निमन्त्रैर्ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत् ॥ ८ ॥
दद्यात्सुवर्णं च तथा द्विजेभ्यो गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवं च ।
एवं कृते तत्समुपैति नाशं यदग्निवैकृत्यभयं द्विजेन्द्र ! ॥९॥

इत्यग्निवैकृत्यशान्तिः ।

## अथ प्रतिमादिवैकृत्यशान्तिः ।

गर्गः—देवताद्याः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति वा ।
आ-रदन्ति च रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च ॥ १ ॥

उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति रमन्ति च ।
भजन्ति विकृतिं भूम्ना मानुषाणां भयावहाः ॥ २ ॥
अवाङ्मुखावतिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं भ्रमन्ति च ।
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहरक्ते तथा वसाम् ॥ ३ ॥
एवमादीनि दृश्यन्ते विकाराः सहजोत्थिताः ।
लिङ्गायतनचित्रेषु तत्र वासं न रोचयेत् ॥ ४ ॥
राज्ञो वा व्यसनं तत्र स च देशो विनश्यति ।
देवयात्रासु चोत्पातान् दृष्ट्वा देशभयं वदेत् ॥ ५ ॥
देवयात्रोत्पाता वराहसंहितोक्ता ज्ञेयाः ।
विना साहसधर्मेण तत्र वासं न रोचयेत् ।
पशूनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम् ॥ ६ ॥
रुद्रजम्=रुद्रप्रतिमासूत्पन्नं वैकृत्यं पशुभयदमित्यर्थः । एवं सर्वत्राऽपि ज्ञातव्यम् ।
ज्ञेयं सेनापतीनां च यत्स्यात्स्कन्दविशाखजम् ।
लोकानां विश्ववस्विन्द्रविश्वकर्मसमुद्भवम् ॥ ७ ॥
विनायकोद्भवं ज्ञेयं गणानां सेवकाय च ।
देवदूते च याः प्रेष्याः देवस्त्रीषु नृपस्त्रियः ॥ ८ ॥
वासुदेवेषु विज्ञेयं गृहाणामेव नाऽन्यथा ।
देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः ॥ ९ ॥
देवताऽर्चां तु गत्वा वै स्नातामाच्छाद्य भूषयेत् ।
पूजयेत्तां महाभाग ! गन्ध-माल्या-ऽन्नसम्पदा ॥१०॥
मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरम् ।
तल्लिङ्गेण च मन्त्रेण स्थालीपाकं यथाविधि ॥११॥
पुरोधा जुहुयाद्वह्नौ सप्तरात्रमतन्द्रितः ।
विप्राश्च पूज्या मधुरान्नपात्रैः स-दक्षिणैः सप्तदिनं नरेन्द्र ! ।
प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि क्षिति-गो-प्रदानैः सकाञ्चनैः शान्तिमुपैति पापम् ॥१२॥
इत्यद्भुतशान्तिषु देवताप्रतिमा-वैकृत्यशान्तिः ।

## अथाऽऽकस्मिकप्रासादपतनादिशान्तिः

गर्गः--प्रासाद-तोरणा-ऽट्टाल-द्वार-प्राकार-वेश्मनाम् ।
अनिमित्तं तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे ॥ १ ॥
रजसा वाऽथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः ।
आदित्यश्चन्द्रताराश्च विवर्णा भयवृद्धये ॥ २ ॥
राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः ।
ऋतवश्च विपर्यस्ता अपूज्यं पूजयेज्जनः ॥ ३ ॥
नक्षत्राणि वियोगीनि तन्महद्भयलक्षणम् ।
केतूदयोपरागौ च छिद्रं वा शशि-सूर्ययोः ॥ ४ ॥
ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्राऽपि भयमादिशेत् ।
स्त्रियश्च कलहायन्ते बाला निघ्नन्ति बालकान् ॥ ५ ॥
क्रियाणामुचितानां च विच्छित्तिर्यत्र दृश्यते ।
अग्निर्यत्र न दृश्येत हूयमानोऽथ शाम्यति ॥ ६ ॥
क्रव्यादा वायसा वाहा यान्ति चोत्तरतस्तथा ।
पूर्णकुम्भाः स्रवन्ते च वह्नयो वा विलुम्पते ॥ ७ ॥
मङ्गल्यध्वनयो यत्र न श्रूयन्ते समं ततः ।
क्षवथुर्बाधते वाऽथ प्रोत्साहे सति निन्दिताः ॥ ८ ॥
न दैवतेषु वर्तन्ते यथा ब्रह्महणेषु च ।
मन्दघोषाणि वाद्यानि वाद्यन्ते वि-स्वराणि च ॥ ९ ॥
गुरु-मित्र-द्विषो यत्र शत्रुषूपारताः सदा ।
ब्राह्मणान् सुहृदोऽमात्यान् जनो यत्राऽवमन्यते ॥१०॥
शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र मन्यते ।
राजा वा म्रियते तत्राऽथवा देशो विनश्यति ॥११॥
राज्ञो विनाशे सम्प्राप्ते निमित्तानि निबोध मे ।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणांश्च विनिन्दति ॥१२॥

ब्राह्मणस्वानि चाऽऽदत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।
नैतान् स्मरति कृत्येषु योऽन्वितश्चात्यसूयति ॥१३॥
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाऽभिनन्दति ।
अपूर्वं तु करं लोभात्तथा पातयते जने ॥१४॥
एतेष्वभ्यर्चयेत्सम्यक् सपत्नीकान् द्विजोत्तमान् ।
भोज्यानि चैव कर्त्तव्या सुराणां बलयस्तथा ॥१५॥
गावश्च देया द्विजपुङ्गवेभ्यो भुवं तथा काञ्चनमम्बराणि ।
होमं च कुर्याद् द्विजपूजनं च एवं कृते शान्तिमुपैति पापम् ॥
अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः प्रजायते ।
सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमद्भुतं विफलं हि तत् ॥१७॥
इत्याकस्मिकप्रासादपतनादिशान्तिः ।

## अथ वृक्षविकारशान्तिः ।

गर्गः—रुदतो व्याधिरभ्येति हसतो देशविभ्रमः ।
शाखाप्रपतने कुर्यात्सङ्ग्रामं योधपातनम् ॥ १ ॥
बालानां मरणं कुर्याद्बालानां फलपुष्पतः ।
स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमनार्त्तवम् ॥ २ ॥
क्षीरं सर्वत्र गम्भीर-स्नेहं दुर्भिक्षलक्षणम् ।
वाहनाऽपचयं मद्यो रक्ते सङ्ग्राममादिशेत् ॥ ३ ॥
मधुस्रावे भवेद्व्याधिर्जलस्रावे च वर्षति ।
अरोगशोषणं ज्ञेयं ब्रह्मन् ! दुर्भिक्षलक्षणम् ॥ ४ ॥
शुष्केषु सम्प्ररोहत्सु वीर्यमन्तं च हीयते ।
उत्थाने पतितानां च भयं भेदकरं भवेत् ॥ ५ ॥
स्थानात्स्थाने तु गमने देशभङ्गं तथाऽऽदिशेत् ।
अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः ॥ ६ ॥
आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत् ।

वृक्षोपरि तथा छत्रं कुर्यात्पापप्रशान्तये ॥ ७ ॥
शिवमभ्यर्चयेद्देवं पशुं चाऽस्मै निवेदयेत् ।
मूलेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेच्चतः ॥ ८ ॥
मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन सम्पूज्य विप्रांश्च भुवं च दद्यात् ।
गीतेन नृत्येन तथाऽर्चयेत्तं देवं हरं पापविनाशहेतोः ॥९॥

इति वृक्षोत्पातशान्तिः ।

## अथोत्पातशान्तिः ।

नारदसंहितायां चतुस्त्रिंशेऽध्याये—

उत्पाता विविधा लोके दिव्य-भौमाऽन्तरिक्षगाः ।
तजो नामानि तां शान्तिं सम्यक् वक्ष्ये पृथक् पृथक् ॥१॥
देवताद्याः प्रनृत्यन्ति पतन्ति प्रज्वलन्ति वा ।
मुहुर्गायन्ति रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च ॥ २ ॥
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम् ।
अधो मुखं तु तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति वा ॥ ३ ॥
एवमाद्याश्च दृश्यन्ते विकाराः प्रतिमादिषु ।
गन्धर्वनगरं चैव दिवा-नक्षत्रदर्शनम् ॥ ४ ॥
महोल्कापतनं कष्टं नृणां रक्तप्रवर्षणम् ।
गान्धर्वगेहं दिग्दाहं भूमिकम्पं दिवा निशि ॥ ५ ॥
अनग्नौ च स्युरलिङ्गाः स्युर्ज्वलनं च विनेन्धनम् ।
निशीन्द्रचापं मण्डूकशिखरे श्वेतवायसम् ॥ ६ ॥
दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गा ये गो-गजाऽश्वोष्ट्रगास्ततः ।
जन्तवो द्वि-त्रि-शिरसो जायन्ते चाऽवियोनिषु ॥ ७ ॥
प्रतिसूर्याश्च तिसृषु स्युर्दिक्षु युगपद्रवैः ।
जम्बूको ग्रामसंवेशः केतूनां च प्रदर्शनम् ॥ ८ ॥

काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवा यदि ।
एवमेते महोत्पाता बहवः स्थाननाशकाः ॥ ९ ॥
केचिन्मृत्युप्रदा केचिच्छत्रुभ्यश्च भयप्रदाः ।
देवालये स्वगेहे वा ऐशान्यां पूर्वतोऽपि वा ॥१०॥
कुण्डं लक्षणसंयुक्तं कल्पयेन्मेखलायुतम् ।
गृह्योक्तविधिना तत्र स्थापयेच्च हुताशनम् ॥११॥
जुहुयादाज्यभागान्तमथवाऽष्टोत्तरं शतम् ।
यत इन्द्र भयामहे स्वस्ति येन च मन्त्रकैः ॥१२॥
समिदाज्य-चरु-व्रीहि-तिलैर्व्याहृतिभिस्ततः ।
कोटिहोमं तदर्द्धं वा लक्षहोममथायुतम् ॥१३॥
यथाविद्यानुसारेण पादहोममथापि वा ।
एकविंशतिरात्रं वा पक्षं पक्षार्द्धमेव वा ॥१४॥
त्रिरात्रमेकरात्रं वा होमकर्म समाचरेत् ।
गणेश-क्षेत्रपाला-ऽर्क-दुर्गाख्या अङ्गदेवताः ॥१५॥
तासां प्रीत्यै जपः कार्यः शेषं पूर्ववदाचरेत् ।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद् षोडशेभ्यः स्वशक्तितः ॥१६॥

इति नानोत्पातशान्तिः ।

## अथ पल्लीसरटशान्तिः ।

वृद्धगर्गः—पल्ल्याः प्रपातस्य फलं सरटस्य तथैव च ।
शीर्षे राज्यं श्रियः प्राप्तिर्भाले चैश्वर्य्यवर्द्धनम् ॥ १ ॥
कर्णयोर्भूषणावाप्ति—र्नेत्रयोर्बन्धुदर्शनम् ।
नासिकायां तु सौभाग्यं वक्त्रे मिष्टान्नभोजनम् ॥ २ ॥
कण्ठे नित्यं प्रियाऽऽश्लेषः स्कन्धयोर्विजयो ध्रुवम् ।
धनलाभो बाहुयुग्मे करयोरर्थसंचयः ॥ ३ ॥
जङ्घयोश्च निरुद्योगः पादयोर्भ्रमणं भवेत् ।

एवं पक्ष्याः प्रपातस्य फलं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ ४ ॥
एतदेव फलं विन्द्याच्छरटस्य प्ररोहणे ।
पक्ष्याः प्रपातने चैव सरटस्य प्रपातने ॥ ५ ॥
पञ्चरात्रं भवेत्तस्य व्याधिपीडा विशेषतः ।
पतनाऽनन्तरं तस्य रोहणं यदि जायते ॥ ६ ॥
पतने फलमुत्कृष्टं रोहणेऽल्पफलं भवेत् ।
आरोहणं चोर्ध्ववक्त्रे अधो वक्त्रे निपातनम् ॥ ७ ॥
भवेद्यदि सुशीघ्रेण तत्फलं जायते ध्रुवम् ।
मृत्युयोगे दग्धदिने पाते च यमघण्टके ॥ ८ ॥
चन्द्राऽष्टमे नैधने च जन्मर्क्षे विषनाडिके ।
क्रूरलग्ने क्रूरयुते क्रूरेण च निरीक्षिते ॥ ९ ॥
अष्टमेते क्रूरयुते विष्टि-वैधृतिसंयुते ।
दुर्निमित्ते तयोः पाते निधनं जायते ध्रुवम् ॥१०॥
तयोः स्पर्शनमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत् ।
गव्यं पञ्चविधं प्राश्य कुर्यादाज्याऽवलोकनम् ॥११॥
शस्ते वाऽप्यथवाऽशस्ते यदीच्छेदात्मनः शुभम् ।
पुण्याहं वाचयित्वा तु शान्तिकर्म ततश्चरेत् ॥१२॥
प्रतिरूपं तयोः कुर्यात्सुवर्णेन स्वशक्तितः ।
रक्तवस्त्रेण सम्वेष्ट्य गन्ध-पुष्पैः प्रपूजयेत् ॥१३॥
कलशे वस्त्रयुग्मेन पूजयेद्विधिना ततः ।
अग्निसंस्थापनं कृत्वा होमं कुर्याद्विधानतः ॥१४॥
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण समिद्भिः खादिरैः शुभैः ।
तिलैर्व्याहृतिहोमं च अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ १५ ॥
महाव्याहृतिहोमं च सर्पिः क्षीरेण कारयेत् ।
अभिषेकं ततः कुर्याद्यजमानस्य मूर्द्धनि ॥१६॥

पुण्यैर्वारुणसूक्तैश्च द्यौः शान्तादिकमन्त्रकैः ।
इत्थं मन्त्रविधानेन यः कुर्याच्छान्तिमुत्तमम् ॥१७॥
तस्याऽऽयुर्विजयो लक्ष्मीः कीर्तिः पुष्टिश्च जायते ।

इति पन्यादिपतनशान्तिः ।

---

## अथ ग्रामारण्यादिशान्तिः ।

गर्गः-प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः ।
अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जलोद्भवाः॥१॥
स्थलजा वा जलं यान्ति घोरं वा सन्ति निर्भयाः ।
राजद्वारे पुरद्वारे शिवाश्चाप्यशिवप्रदाः ॥ २ ॥
दिवा रात्रिञ्चरा वाऽपि रात्रौ वाऽपि दिवाचराः ।
ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं वा तच्चोत्पातस्य निर्दिशेत् ॥ ३ ॥
उत्पातस्य लक्षणमिति शेषः ।
दीप्ता वा सन्ति सन्ध्यासु मण्डलानि च कुर्वते ।
वासन्ते विस्तरं यत्र तदा प्रेतफलं लभेत् ॥ ४ ॥
प्रदोषे कुक्कुटो वासेद्धेमन्ते वाऽपि कोकिलः ।
अर्कोदयेऽर्काभिमुखस्तदाऽमात्यभयं वदेत् ॥ ५ ॥
गृहे कपोतः प्रविशेत् क्रव्याद्यनुविलीयते ।
मधु वा मक्षिकाः कुर्यान्मृत्युर्गृहपतेर्भवेत् ॥ ६ ॥
प्राकार-द्वार-गेहेषु तोरणा-ऽऽपण-वीथिषु ।
केतुच्छत्रायुधाग्रेषु क्रव्यात्संश्रयते यदि ॥ ७ ॥
जायते वाऽथ वल्मीको मधु वा दृश्यते यदि ।
स देशो नाशमायाति राजा च म्रियते तदा ॥ ८ ॥
मूषिकाः शलभान् दृष्ट्वा प्रभूतं क्षुद्भयं वहेत् ।
काष्ठोन्मुकाऽस्थिशृङ्गास्याऽश्वानो मरकवेदिनः ॥ ९ ॥

दुर्भिक्षवेदिनो ज्ञेयाः काकाधान्यक्षुपे यदि।
जनाग्नभिभवन्तश्च निर्भया रणवेदिनः ॥१०॥
काको मैथुनयुक्तश्चेत् श्वेतः स यदि दृश्यते।
राजा च म्रियते तत्र तदा देशो विनश्यति ॥११॥
उलूको वासते यत्र निपतेद्वा गृहे यदि।
ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च ॥१२॥

वासते=शब्दं करोति।

मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमं सदक्षिणम्।
देवाः कपोत इति च जप्तव्यं पञ्चभिर्दिनैः ॥१३॥
सुदेव इति वैकेन देया गावस्तु दक्षिणा।
जपेच्छाकुनसूक्तं च नमो वेदशिरांसि च ॥१४॥

देवाः कपोत इत्यादयो मन्त्रा ऋग्वेदे प्रसिद्धाः। नमो नमो ब्रह्मणे नम इति। वेदशिरांसि उपनिषदः।

गावश्च देया विधिवद्द्विजानां सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः।
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं मृगैर्द्विजैर्वाऽपि निवेदितं यत् १५

इति ग्राम्यारण्यादिशान्तिः।

---

## अथ कपोतशान्तिः।

नारदः—आरोहयेद्गृहं यस्य कपोतो वा प्रवेशयेत्।
स्थानहानिर्भवेत्तस्य यद्वाऽनर्थपरम्परा ॥१॥
दोषाय धनिनां गेहे दरिद्राय शिवाय च।
तस्य शान्तिश्च कर्त्तव्या जपहोमविधानतः ॥२॥
ब्राह्मणान् वरयेत्तत्र स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
षोडशद्वादशाष्टौ वा श्रौतस्मार्त्तक्रियापराः ॥३॥
देवाः कपोत इत्यादि-ऋचाभिः पञ्चभिर्जपम्।
लक्षं कृत्वा प्रयत्नेन स्व-गृह्योक्तविधानतः ॥४॥

ऐशान्यां स्थापयेद्वह्निं मुखान्तेऽष्टोत्तरं शतम् ।
प्रत्येकं समिदाज्यान्नैः प्रतिप्रणवपूर्वकम् ॥ ५ ॥
मुखान्ते अ= अग्निमुखान्ते ।
यत इन्द्र भयामहे स्वस्तिदेति त्रियम्बकैः ।
त्रिभिर्मन्त्रैश्च जुहुयात्तिलान् व्याहृतिभिस्तथा ॥ ६ ॥
जयाहुतीस्ततो हुत्वा कुर्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् ।
विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यात् द्यौः शान्तिं च ततो जपेत्॥ ७ ॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ।
एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते ॥ ८ ॥
पिङ्गलायाः स्वरेऽप्येवं मधु-वल्मीकयोरपि ।
सम्पूर्णे मन्दिरे हानिः शून्यसद्मनि मङ्गलम् ॥ ९ ॥
प्राकारे च पुरद्वारे रथ्यादिषु च वीथिषु ।
ग्रामस्य तत्फलं चैव गुरुकल्पनया ततः ॥१०॥
शान्तिकर्माऽखिलं कार्यं पूर्वोक्तेन क्रमेण तु ।

इति कपोतादिशान्तिः ।

---

## अथ काकवैकृत्यशान्तिः ।

गर्गसंहितायाम्—

काकस्य मैथुनं पश्येत् काकः शिरसि चेद्विशेत् ।
शिरस्युरसि वा कुर्यात्पक्षघातं नखैस्तथा ॥ १ ॥
विदारणं च कुरुते शयानं च स्पृशेद्यदि ।
तदा वदेत्तु मरणं महाऽरिष्टमथापि वा ॥ २ ॥
मध्यरात्रे यदा काको वासते हेतुना विना ।
तद्ग्रहारिष्टमाचष्टे ग्रामारिष्टमथापि वा ॥ ३ ॥
शान्तिं तत्र प्रकुर्वीत विधानेन यथोदिताम् ।
उद्दिश्याऽरिष्टशमनं कुर्यात्सङ्कल्पमादितः ॥ ४ ॥

शुचौ देशे रत्निमात्रे स्थण्डिलेऽग्निं निधाय च ।
तदीशानेऽष्टदले कुम्भोपरि स्वशक्तितः ॥ ५ ॥
हिरण्यनिर्मितं त्विन्द्रं लोकपालसमन्वितम् ।
पूजयित्वा स्वशाखोक्तविधिना श्रपयेच्चरुम् ॥ ६ ॥
कृत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं जुहुयात्क्रमशो हविः ।
पालाशीः समिधो व्रीहीश्चरुमाज्यमिति क्रमात् ॥ ७ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं तु वा ।
यत इन्द्रेति मन्त्रेण लोकपालेभ्य एव च ॥ ८ ॥
शक्त्या हुत्वा स्वशाखोक्त-प्रायश्चित्ताहुतीर्हुनेत् ।
लोकपालबलिं दत्वा इन्द्राग्रे चरुशेषतः ॥ ९ ॥
वायसेभ्यो बलिं दद्यादैन्द्रवारुणमन्त्रतः ।
ऐन्द्रवारुणवायव्यां याम्यां वै नैर्ऋताश्च ये ॥१०॥
ते काकाः प्रतिगृह्णन्तु भूम्यां पिण्डं मयाऽर्पितम् ।
पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा आचार्यं पूजयेत्ततः ॥११॥
कुम्भोदकेनाऽभिषेको यजमानस्य विस्तरात् ।
आचार्यायेन्द्रप्रतिमां दद्यात्सोपस्करां ततः ॥१२॥
शक्त्या च भूयसीं दद्यात् द्विजानां भोजनं दिशेत् ।
शतं तदर्द्धमर्द्धं वा शक्त्यभावे दशाऽपि वा ॥१३॥
सर्वशान्तिं पाठयित्वा गृह्णीयाच्च द्विजाशिषः ।
एवं कृते भवेच्छान्तिः काकारिष्टविनाशिनी ॥१४॥

इति काकमैथुनदर्शनादिशान्तिः ।

---

## अथ प्रकारान्तरेण काकमैथुनदर्शनशान्तिः ।

नारदः—दिवा वा यदि वा रात्रौ यः पश्येत्काकमैथुनम् ।
स नरो मृत्युमाप्नोति ह्यथवा स्थाननाशनम् ॥ १ ॥

काकघातव्रतं यद्वा विदधीताऽथ वत्सरम् ।
पितृवद्वै द्विजान् भक्त्या प्रत्यहं चाऽभिवादयेत् ॥ २ ॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधः सत्यधर्मपरायणः ।
तद्दोषशमनार्थाय शान्तिकर्म समारभेत् ॥ ३ ॥
गृहस्येशानदिग्भागे होमस्थानं प्रकल्पयेत् ।
गृह्योक्तविधिना तत्र प्रतिष्ठाप्य हुताशनम् ॥ ४ ॥
मुखान्ते समिदाज्यान्नैर्हुनेदष्टोत्तरं शतम् ।
प्रतिमन्त्रं त्र्यम्बकेन अथ मृत्युञ्जयेन च ॥ ५ ॥
व्याहृतिभिर्व्रीहितिलैर्जपाद्यं तं प्रकल्पयेत् ।
पूर्णाहुतिं च जुहुयात्कर्त्ता शुचिरलङ्कृतः ॥ ६ ॥
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कृष्णां धेनुं पयस्विनीम् ।
वस्त्रालङ्कारसंयुक्तां निष्कद्वादशसंयुताम् ॥ ७ ॥
तद्धेन तदर्द्धेन दद्याद्दक्षिणया युतम् ।
यथावित्तानुसारेण न्यूनाधिक्यस्य कल्पना ॥ ८ ॥
आचार्याय श्रोत्रियाय तां गां दद्यात्कुटुम्बिने ।
यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनो ! वै कृष्णसन्निभे ! ॥ ९ ॥
सर्वमृत्युहरे ! नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।
ब्राह्मणेभ्यो विशिष्टेभ्यो यथाशक्त्या च दक्षिणाम् ॥ १० ॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम् ।
एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते ॥ ११ ॥

इति काकमैथुनशान्तिः ।

---

## अथ काकस्पर्शशान्तिः ।

नारदः-सूर्यास्तमनवेलायां वायसः संस्पृशेद्यदि ।
निःशब्दो वा सशब्दो वा पुंसो मृत्युप्रदायकः ॥ १ ॥

अङ्गनां च स्पृशेत्काको वैधव्यं तत्र निर्दिशेत् ।
नदीतीरे गवां गोष्ठे क्षीरवृक्षे सुरालये ॥ २ ॥
नरो वायससंस्पृष्टो वधबन्धनमाप्नुयात् ।
प्रतिचन्द्रं प्रतिसूर्यं वायसः स्पृशते यदि ॥ ३ ॥
अर्थहानिं तथा मृत्युं शस्त्रेण च विनिर्दिशेत् ।
मासैः पञ्चभिरेवाऽस्य निशाभिः फलमादिशेत् ॥ ४ ॥
तद्दिनादि फलं सद्भिः प्रोक्तमत्र शुभाऽशुभम् ।
शान्तिं तत्र प्रकुर्वीत शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ५ ॥
महानद्यम्भसि स्नात्वा शिवलिङ्गं निरीक्षयेत् ।
नत्वा सम्पूज्य लिङ्गं तु स्तुत्वा च दिक्पतीनपि ॥ ६ ॥
आरभ्य तद्दिनादेव वायसेभ्यो बलिं क्षिपेत् ।
शनैश्चरदिने प्राप्ते एकान्ते शुभमन्दिरे ॥ ७ ॥
कृष्णानि नववस्त्राणि अ-हतानि नवानि च ।
पूर्वदिक्क्रमयोगेन स्थापयेच्च पृथक् पृथक् ॥ ८ ॥
माषप्रस्थप्रमाणेन स्थापयेत्तत्र वायसान् ।
पूर्वस्यां कपिलं तत्र स्थापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥ ९ ॥
नीलग्रीवमथाऽग्नेय्यां याम्यां च विकृतस्वरम् ।
नैर्ऋत्यां च न्यसेत्क्रौञ्चमपमृत्युविनाशनम् ॥ १० ॥
विद्युज्जिह्वं च वारुण्यां वायव्यां कृष्णकर्बुरम् ।
कौबेर्यां कालनामानमीशान्यां श्वेतमेव च ॥ ११ ॥
अ-हते कृष्णवस्त्रे तु यमं मध्ये प्रपूजयेत् ।
महिषं कृष्णवर्णं च यमं माषैश्च पूजयेत् ॥ १२ ॥
रक्तोत्तमाङ्गं सर्वत्र आयुषैश्च समन्वितम् ।
लोहदण्डं चतुर्बाहुं पूजयेन्मन्त्रपूर्वकम् ॥ १३ ॥
यस्मिन् वृक्षे परेपि वासं मृगाः पन्थानमेव च ।

एते मन्त्राः समाख्याताः शूद्राणां नाम-मन्त्रतः ॥१४॥
अकालकलशं तत्र स्थापयेत्तस्य सन्निधौ ।
जलपूर्णं रत्नगर्भं पूर्णपात्रसमन्वितम् ॥१५॥
स्थापयेत्तत्र देवेशं शूलपाणिं महेश्वरम् ।
प्रतिष्ठाप्य च तान् सर्वानथ मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥१६॥
कपिलस्त्वं च वर्णेन शुभाऽशुभनिवेदकः ।
गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं भवाऽशुभविनाशनः ॥१७॥
नीलग्रीव ! गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं खगेश्वर !
अल्पमृत्युविनाशाय ददामि बलिमुत्तमम् ॥१८॥
क्रूरस्त्वं पापिनां नित्यं सौम्यस्त्वं धार्मिके जने ।
विकृतस्वर ! गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं शुभाय नः ॥१९॥
क्रूरस्त्वं पापिनां नित्यं वध शुम्भं न ऋच्छसि ।
गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं क्रौञ्च ! सौम्यप्रदो भव ॥२०॥
विद्युज्जिह्व ! नमस्तेऽस्तु शोकव्याधिविनाशन ! ।
बलिपूजां मया दत्तां गृहाण सुखदो भव ॥२१॥
कृष्णकर्बुरनामा त्वं भूतभव्यनिवेदक !
गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं भव वैधव्यनाशन ! ॥२२॥
काक ! त्वं कालनामाऽसि दुष्टकालनिवेदक !
गृहाण बलिपूजां मे दत्तां दुःखविनाशिनीम् ॥२३॥
श्वेतस्त्वं सितपर्णोऽसि मृत्युभावस्य सूचक ! ।
गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्तं भव मृत्युविनाशनः ॥२४॥
तन्मध्ये पूजयेद्देवं धर्मराजं चतुर्भुजम् ।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चाऽन्तकाय च ॥२५॥
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ॥२६॥

वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ।
नीलग्रीवाय लोकेश ! दण्डहस्ताय ते नमः ॥२७॥
पाशहस्ताय सायुधाय सपरिवाराय ते नमः ।
चन्दनैश्च सुगन्धैश्च वासोभिः पूजयेद्यमम् ॥२८॥
आदौ त्र्यम्बकमन्त्रेण ईश्वरं च प्रपूजयेत् ।
मृत्युविनाशिनीं विद्यां कुम्भे चैव नियोजयेत् ॥२९॥
शतमष्टोत्तरं चैव आचार्यो हृष्टमानसः ।
स्वगृह्योक्तविधानेन चरुं च यमदैवतम् ॥३०॥
संश्रव्य जुहुयाद्वह्नौ समिदाज्यचरूंस्तिलान् ।
तद्देवत्या समित्कार्या शतमष्टोत्तरं तथा ॥३१॥
समित्क्रमेण जुहुयात्प्रतिद्रव्यं शतं हुनेत् ।
सुगन्नुपन्थामन्त्रेण होतव्यं सर्वमत्र तु ॥३२॥
भद्रासनं प्रकर्त्तव्यं पञ्चवर्णकसंयुतम् ।
तस्योपरि न्यसेत्पट्टं यजमानमथाह्वयेत् ॥३३॥
निवेश्याऽऽच्छादिते पट्टे अभिषेकं च कारयेत् ।
पावमानीभिस्तु तल्लिङ्गैर्मन्त्रैर्वारुणसम्भवैः ॥३४॥

तल्लिङ्गैः = सुगन्नुपन्थामित्यादिभिः ।

तत्र स्नानं प्रकर्त्तव्यं तीर्थाऽऽनीतेन वारिणा ।
सहस्राक्षादिभिर्मन्त्रैः स्नानं कार्यं द्विजोत्तमैः ॥३५॥
ततोऽन्यद्वस्त्रमादाय धर्मराजं तु पूजयेत् ।
उक्तैः षोडशभिर्मन्त्रैः सुगन्वित्यर्घं प्रदापयेत् ॥३६॥
तत उत्थाय सम्प्रार्थ्य भक्तिभावसमन्वितः ।
रक्ष मां पुत्र-पौत्रांश्च रक्ष मां पशु-बान्धवान् ॥३७॥
रक्ष पत्नीं पतिं चैव पितरं मातरं धनम् ।
अग्नितो मे भयं माऽस्तु रोगाच्च व्याधिबन्धनात् ॥३८॥

शस्त्रतो विषतोऽघौघाद्भयं नाशय मे सदा ।
प्रार्थना च प्रकर्त्तव्या नमस्कारसमन्विता ॥३९॥
काकस्पृष्टं च यद्वस्त्रं स्नानक्लिन्नं च यद्भवेत् ।
सहिरण्यं च तत्कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥४०॥
मन्त्रः-यत्किञ्चित्स्पर्शदोषोक्तं दुष्कृतमपि विद्यते ।
तत्सर्वं नाशमायातु वस्त्रदानेन सूर्यज ! ॥४१॥
वायसांस्तान् यमं चैतमाचार्याय निवेदयेत् ।
माषान् वासांसि कृष्णां तु धेनुं चैव पयस्विनीम् ॥४२॥
शनिवारे च तत्कार्यं रविवारेऽथवा पुनः ।
घृतपात्रे स-सौवर्णे दर्शयेदात्मनस्तनुम् ॥४३॥
ब्राह्मणेभ्यो ददेदन्नं भूयसीं चैव शक्तितः ।
यथोक्तां दक्षिणां दद्यात् वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥४४॥
स्थाने यत्र स्पृशेत्काकस्तत्स्थानं पूजयेत्तदा ।
एवं कुर्यात्प्रदानेन ध्वांक्षदोषः प्रशाम्यति ॥४५॥

इति काकस्पर्शशान्तिः ।

---

## अथ सिंहादौ गवादिप्रसूतिशान्तिः ।

अद्भुतसागरे नारदः-

भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रसूयते ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः ॥ १ ॥
ततः शान्तिं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।
प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत् ॥ २ ॥
ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः ।
आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः ॥ ३ ॥
सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ।

वस्त्रयुग्मं यवं चैव समवर्णं प्रदापयेत् ॥ ४ ॥
इष्टदैवत-मन्त्रेण ततः शान्तिर्भवेद्द्विज !
गर्गः-दिवाप्रसूता वडवा श्रावणे च विशेषतः ॥ ५ ॥
माघमासे बुधे चैव प्रसवेन्महिषी यदि ।
सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः ॥ ६ ॥
जङ्गमे स्थावरं जातं स्थावरे वाऽथ जङ्गमम् ।
तस्मिन् योनिविपर्य्यासे परचक्रागमे भवेत् ॥ ७ ॥
त्यागो विवासो दानं वा कृत्वाऽप्याशु शुभं लभेत् ।
वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते ॥ ८ ॥
विजात्यं विकृतं वाऽपि षड्भिर्मासैर्म्रियेत वा ।
वियोनिषु च गच्छन्ति मैथुने देशनाशनम् ॥ ९ ॥
अन्यत्र वेसरोत्पत्तेर्नृणां वा जातिमैथुनात् ।
सर्प-मूषक-मार्जार-मत्स्य-श्वान-विवर्जिताः ॥१०॥
ज्ञेया दुर्भिक्षकर्त्तारः स्वजातिपिशिताशनाः ।
अकालजो मदो घोरश्च पुष्पान्मृगपक्षिणः ॥११॥
अन्यजातिभयं तस्मात् धेनु-श्वानौ विशेषतः ।
अथाऽनड्वाननड्वाहं धेनुर्धेनुं पिबेद्यदि ॥१२॥
शुनी बाधयते धेनुं शुनीं धेनुरथाऽपि वा ।
तिर्यग्योनौ मानुषी वा परचक्रागमो भवेत् ॥१३॥
अमानुषा मानुषाणि जल्पन्ति प्राणिनो यदि ।
विकृतं वा प्रसूयन्ते परचक्रागमं वदेत् ॥१४॥
त्यागो विवासो दानं वा तेषां कार्य्यं विजानता ।
तर्पयेद्ब्राह्मणांश्चैव जप-होमांश्च कारयेत् ॥१५॥
मृदङ्गवाद्यैः पटहैः सुशोभनैः
पूजा च कार्या त्रिदिवौकसानाम् ।

धातुस्तथेज्या विधिना च कार्या
देयं तथाऽन्नं बहु च द्विजेभ्यः ॥१६॥
गर्गः—वृत्तं वा मुशलं वाऽपि स्फुटते वाऽप्युलूखलम् ।
वृत्तम्=दलनयन्त्रम् ।
भूतानां चैव विभ्येत गृहे देवकुलेऽथवा ॥१७॥
दृषद्वा भद्रपीठं वा आसनं शयनं तथा ।
अकस्मात्स्फुटते यत्र कम्पते वा वसुन्धरा ॥१८॥
इत्यादीनि निमित्तान्युक्त्वा शान्तिरप्युक्ता तेनैव ।
अश्वत्थ-समिधो हुत्वा घृताक्तमधुसंयुताः ।
सावित्र्यष्टसहस्रेण प्राजापत्यास्तु मन्त्रयेत् ॥१९॥
प्राजापत्याः=प्रजापतिदैवत्याः ।
पायसं भोजयेद्विद्वान् हुतान्ते भूरिदक्षिणा ।
ततस्तच्छाम्यते पापं धर्मराजमतं यथा ॥२०॥
स एव कृष्णाः पिपीलिका यत्र ग्रामेषु नगरेषु वा ।
अतिमात्रं तु दृश्यन्ते ऊर्ध्ववंशकृतालयाः ॥२१॥
शान्तिगृहे देवगृहे तथा नरपतेर्गृहे ।
उपर्युपरिमात्रं तु दृश्यते वेश्मवत्तदा ॥२२॥
मक्षिका मशका दंशा अतिमात्रं भयावहाः ।
ईदृशैर्लक्षणोत्पातैर्महाचौरभयं भवेत् ॥२३॥
द्रव्याणां हरणं ब्रूयात्परचक्रस्य चाऽऽगमम् ।
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि विश्वामित्रोपदर्शिताम् ॥२४॥
अश्वत्थसमिधश्चैव हुत्वा चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
पूर्णपात्राणि दातव्या हुतान्ते भूरि दक्षिणा ॥२५॥
दासी-दाससमायुक्तं गृहं दद्याद्द्विजातये ।
तिलपात्रं प्रदातव्यं तिलान् जुहीत संयतः ॥२६॥

मृतः श्मशानं यो नीतः पुनर्जीवति मानवः ।
गृहे यस्य प्रविष्टोऽसौ तिष्ठेदथ कदाचन ॥२७॥
अचिराच्छून्यतां याति हृतदारपरिग्रहः ।
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा ॥२८॥
सक्षीराणां घृताक्तानामग्नौ हुत्वा सुखं बुधः ।
उदुम्बरीणां विविधवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् ॥२९॥
साविंशत्यष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिं च कारयेत् ।
रक्तानामेकेत्यादिवक्ष्यमाणा क्षीरशान्तिः ।
कपिलं च तथा कांस्यं हुतान्ते भूरि दक्षिणा ॥३०॥
ततस्तच्छाम्यते पापं धर्मराजमतं यथा ।
स एव—अनारोग्यमनावृष्टिर्दुर्भिक्षं जनमारकम् ॥३१॥
ज्वरः कासस्तथा श्वासः कण्डूर्दद्रूर्विकोचिकाः ।
शिरोरोगोऽक्षिरोगश्च पाण्डुरोगो गलग्रहः ॥३२॥
व्याधयश्च प्रवर्तन्ते दुर्दृष्टैः स्वप्नलक्षणैः ।
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि बृहस्पतिमतं यथा ॥३३॥
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा हविष्याशी पुरोहितः ।
सक्षीराणां घृताक्तानां समिधानां शतं दहेत् ॥३४॥
पलाशस्येति शेषः ।
ततस्तच्छाम्यते पापं बृहस्पतिमतं यथा ।
स एव—वज्रमिन्द्राऽशनिर्वाऽपि ज्वलन्नापतते यदि ॥३५॥
पुरे जनपदे वाऽपि तत्र विद्यान्महद्भयम् ।
संवत्सरे ततो घोरे विन्द्याच्चैव जनक्षयम् ॥३६॥
राजाऽमात्यविनाशं च निर्दिशेन्नाऽत्र संशयः ।
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि इन्द्राग्निवचनं यथा ॥३७॥
अपामार्गस्य समिधां सहस्राष्टोत्तरं भवेत् ।

पायसं भोजयेद्विप्रान् क्षीरशान्तिं च कारयेत् ॥३८॥
रक्तानामेकवर्णानां गवां क्षीरं समादिशेत् ।

समादिशेद्धोमार्थं सम्पादयेत् ।

हुत्वाऽऽहुतिशतं विप्रो महेन्द्रेणैव मन्त्रवित् ॥३९॥

महेन्द्रेण महान् इन्द्रो य ओजसेत्यादिना ।

सुवर्णमणिसङ्काशा हुतान्ते भूरि दक्षिणा ।

गौरिति शेषः ।

ततस्तच्छाम्यते पापमिन्द्राग्निवचनं यथा ॥४०॥

शौनकः—अथ यदाऽस्य मणिककुम्भस्थालीदरणमायासो राजकुलविवादो वा यान-छत्र-शय्या-ऽऽसनावसथध्वजगृहैकदेशप्रभञ्जने । गजवाजिमुख्याः प्रमीयन्ते वा हस्तिनो वा माद्यन्ति । इत्येवमादीनि । तान्येतानि सर्वाणि इन्द्रदेवत्यान्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति इन्द्रो देवता कर्त्ता हर्त्ता च येषां तानीन्द्रदैवत्यानि अद्भुतानि तेषु प्रायश्चित्तान्यपीन्द्रदैवत्यानि भवन्ति । इन्द्रं विश्वेति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चभिराज्याहुतीर्जुहोति इन्द्राय स्वाहा । शचीपतये स्वाहा । सर्वपापशमनाय स्वाहेति व्याहृतिभिश्च पृथक् पृथक् । स एव गृहद्वारेण वा सर्पो गच्छत कपोतं प्रविशति शरीरे रोहति कृष्णस्त्रीदर्शनमेवमादानि तान्येतानि सर्वाणि यमदैवत्यानि अद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति । नाके सुपर्णमिति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चभिराज्याहुतीर्जुहुयात् । यमाय स्वाहा । प्रेताधिपतये स्वाहा । दण्डपाणये स्वाहा । सर्वपापनाशनाय स्वाहेति व्याहृतिभिश्च पृथक्-पृथक् जुहोति स एव । दिशो दश दह्यन्ति । केतवश्चोत्तिष्ठन्ति । गवां शृङ्गाद्रुधिरं स्रवति अत्यर्थं हिमांशुस्तपति । इत्येवमादीनि सर्वाणि सोमदैवत्याम्यद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति, सोमं राजानमिति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चभिराज्याहुतिभिरभिजुहोति । सोमाय स्वाहा । नक्षत्राणां पतये स्वाहा । सीरपाणये स्वाहा । ईश्वराय स्वाहा । सर्वपापशमनाय स्वाहा । व्याहृतिभिश्च पृथक् पृथक् जुहोति ।

## अथाऽश्वशान्तिः ।

गर्गः-अश्वशान्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु शौनक ! यत्नतः ।
अश्वशालासमीपे तु कुण्डं कुर्याद्विधानतः ॥ १ ॥
उत्खातं हस्तमात्रं च आयामं च तथा भवेत् ।
मेखलात्रयसंयुक्तं योनिरश्वत्थपत्रवत् ॥ २ ॥
कुण्डस्योत्तरपूर्वे तु वेदिं कुर्यात्सुशोभनाम् ।
सार्द्धहस्तं तथाऽऽयाममुत्सेधं हस्तमात्रकम् ॥ ३ ॥
वर्तुलां चतुरस्रां च देवानां स्थापनाय च ।
कुर्यादष्टदलं पद्मं तण्डुलैर्वेदिकोपरि ॥ ४ ॥
तन्मध्ये पूजयेद्देवं सुवर्णेन प्रकल्पितम् ।
अश्वारूढं महातेजः सप्तहस्तं महाबलम् ॥ ५ ॥
अश्वारिष्टहरं शूरं देवं तं हयवल्लभम् ।
देवेन्द्रं च धराधीशं सुवर्णेन प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥
वरुणं च तथेशानं रजतेन प्रकल्पितम् ।
यमं च काललोहेन ताम्रेणाऽपि तथैव च ॥ ७ ॥
निर्ऋतिं च तथा वायुं नागेनैव प्रकल्पयेत् ।
सोमं च रजतेनैव कल्पयेत्सुसमाहितः ॥ ८ ॥
कृत्वैवं लोकपालांश्च स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत् ।
आवाहनार्घपात्राद्यैर्गन्ध-पुष्पादिकैः शुभैः ॥ ९ ॥
धूप-दीपैश्च नैवेद्यैः पूजयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
पञ्चामृतेन स्नपनं कुर्यादेव स्वमन्त्रकैः ॥१०॥
त्यमूषुवाजिनमिति मन्त्रेणाऽऽवाहनं चरेत् ।
अश्वस्तूपरोगविति कुर्यात्संस्थापनं बुधः ॥११॥
मानस्तोकेति मन्त्रेण स्नानं सम्यक् प्रकल्पयेत् ।
युवं वस्त्राणीति तथा वस्त्रं चैव प्रदापयेत् ॥१२॥

यज्ञोपवीतं दातव्यं देवस्य त्वेति मन्त्रतः ।
विचादायेति मन्त्रेण अर्चयेत्सुसमाहितः ॥१३॥
गन्धद्वारेति वै गन्धं पुष्पं श्रीश्च तथैव च ।
धूरसीति तथा धूपं दीपं चाऽपि विशेषतः ॥१४॥
अन्नपतेति मन्त्रेण नैवेद्यं बहु कल्पयेत् ।
एवं सम्पूज्य विप्रेन्द्र ! रविपुत्रं हयाधिपम् ॥१५॥
ततः सम्पूजयेद्धीमान् लोकपालान् स मन्त्रतः ।
इन्द्रं वो विश्वतः शक्रं अग्निं दूतेति पावकम् ॥१६॥
यमाय सोमेति यमं निर्ऋतिं मोषुणेति च ।
त्वन्नो अग्नेति वरुणं तव वायेति चाऽनिलम् ॥१७॥
सोमो धेनुं तथा सोमं कद्रुद्रेति तथा शिवम् ।
पूजयेद्गन्ध-पुष्पाद्यैर्धूप-दीपनिवेदनैः ॥१८॥
क्रमेण पूजयेदित्थं देवान्सम्पूजयेत्ततः ।
अश्वारूढ महावीर ! तुरङ्गेश ! महाबल ! ॥१९॥
अश्वारूढं च रेवन्तं शक्त्या चाऽऽशु विनाशय ।
आखण्डल गजारूढ ! वज्रहस्त सुरेश्वर ! ॥२०॥
वज्रेण तुरगारिष्टं भिन्नं कुरु शचीपते !
मेषारूढ ! महातेजो ज्वलज्ज्वालाविभूषितः ॥२१॥
तीक्ष्णाऽसिना हुतवह ! अश्वारिष्टं विनाशय ।
कालदण्डधरो देव ! महामहिषवाहन ! ॥२२॥
कालदण्डेन दण्डोत्थमश्वारिष्टं विनाशय ।
खड्गहस्त महाभीम ! निर्ऋते प्रेतवाहन ! ॥२३॥
छिन्नं कुरु हयारिष्टं तीक्ष्णखड्गेन शीघ्रतः ।
पाशहस्त ! जलाधीश ! स-दामकरवाहन ! ॥२४॥
पाशेन च हयारिष्टं भिन्नं कुरु जलाधिप ! ।

ध्वजहस्त महाकाय! मृगारूढ! महाबल! ॥२५॥
ताडयस्व हयारिष्टं ध्वज-दण्डेन वाऽनिल!।
शक्तिहस्त! महाराज! कुबेर! नरवाहन! ॥२६॥
अश्वारिष्टं च यक्षेश! शक्त्या चाऽऽशु विनाशय।
शूलहस्त! महारौद्र! पिनाकिन्! वृषवाहन! ॥२७॥
नाशयाऽऽशु हयारिष्टं त्रिशूलेन त्रिलोचन!।
एवं सम्प्रार्थ्य विप्रेन्द्र! लोकपालक्रमेण च ॥२८॥
अग्नेः संस्थापनं कृत्वा कुण्डे होमं च कारयेत्।
तिल-व्रीहि-यवैश्चैव प्रत्येकं चाऽऽढकाऽऽढकम् ॥२९॥
होमं कुर्यादश्वकामश्चरुणा घृतपूर्वकम्।
स्थापयित्वाऽऽज्यसंस्थालीं तत्स्थेनाऽऽज्येन यत्नतः।३०॥
इत्थं सर्वैश्च मन्त्रैश्च देवमुद्दिश्य कारयेत्।

अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। वायवे स्वाहा। विष्णवे स्वाहा। सर्वज्ञाय स्वाहा। सर्वदुरितनाशाय स्वाहा। रेवन्ताय स्वाहा। सर्वकामप्रदाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। सर्वत्र होमः कार्य्यः। अग्निरन्नादोऽन्नपतिरन्नाद्यमस्मिन् यज्ञे यजमानाय ददातु स्वाहा। सोमो राजा राजपतिं एवं सर्वत्र होमविधिः।

इत्थं कृत्वा होमकर्म आचार्यो विधिवत्ततः।
शान्तो भवन्तु मन्त्रेण अश्वशालां प्रवेशयेत् ॥१॥
पवित्रं तेति मन्त्रेण अश्वान् सम्मोक्षयेद् द्विजः।
एष वाजीति मन्त्रेण तथाऽश्वांश्च विसर्ज्जयेत् ॥२॥
मा नो मित्रेति मन्त्रेण तुरङ्गान् स्थापयेत् सुधीः।
पूर्णाहुतिं च जुहुयादच्छिन्नघृतधारया ॥३॥
भूतेभ्यश्च बलिं दद्यात् छिन्नां तं मन्त्रपूर्वकम्।
असुराः पन्नगा यक्षा यातुधानाश्च राक्षसाः ॥४॥
पिशाचाः सिद्धगन्धर्वा वेताला योगिनी शिवा।

डाकिनी लाकिनी चैव शाकिन्या जम्बुकादयः ॥ ५ ॥
अश्वारिष्ट-प्रशान्त्यर्थं बलिं गृह्णन्त्वमी ग्रहाः ।
इत्थं दत्त्वा बलिं सम्यक् भूतेभ्यश्च विधानतः ॥ ६ ॥
अश्वं च दक्षिणायुक्तं प्रतिमां वत्ससंयुताम् ।
उद्दिश्य भास्करं देवमाचार्याय प्रदापयेत् ॥ ७ ॥
आकृतीर्देवतानां च द्विजेभ्यो वस्त्रसंयुताः ।
दद्यात्ता दक्षिणायुक्ताः श्रद्धापूतः समाश्रितः ॥ ८ ॥
आकृतीः = प्रतिमाः । देवानाम् = इन्द्रादीनाम् ।
अनेन विधिना कृत्वा हयानां शान्तिकं महत् ।
अश्वानां नीरुजत्वं च बलं पुष्टिबलं तथा ॥ ९ ॥
लक्ष्मी स्थिता मनूनां च सङ्ग्रामे विजयो भवेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ १० ॥
इत्यश्वशान्तिः ।

## अथ गजशान्तिः ।

सनत्कुमार उवाच—
अथ राजा प्रकुर्वीत चतुर्थ्यां गज-वाजिनाम् ।
शान्तिमामयतप्तानां तदुत्पातोदये सति ॥ १ ॥
कवलानि च नाऽऽदत्ते यदा त्वश्रूणि मुञ्चति ।
स्तब्धः प्रशान्तो निर्वेदो स्यान्मदेन विवर्जितः ॥ २ ॥
विहीनमविरत्यर्थं परिक्षीणतनुर्द्विपः ।
विमानात् स्रस्तसर्वाङ्ग-गुप्तो नष्टपराक्रमः ॥ ३ ॥
नष्टशोभः सदाहीनो नष्टसंज्ञो रुपान्वितः ।
नानाव्याधिसमुत्थाभिः पीडाभिः पीड्यते यदा ॥ ४ ॥
अरिष्टोपनिपातेषु तथोत्पातभयेषु च ।
तदा शान्तिं प्रकुर्वीत गजरक्षापरो नृपः ॥ ५ ॥
अरिष्टाद्यशुभं त्वेवं वाजिनां लक्ष्यते यदा ।

युद्धारम्भेषु च तथा तेषां शान्तिं च कारयेत् ॥ ६ ॥
शान्त्यर्थं गज-वाजीनां मण्डपं चतुरस्रकम् ।
द्वादशाऽरत्निमानेन सम्मितं कारयेत् सुधीः ॥ ७ ॥
बाहुप्रमाणं मध्ये तु योनि-नाभिसमुज्ज्वलम् ।
कुण्डं त्रिमेखलं कुर्यात् वृत्तं वा चतुरस्रकम् ॥ ८ ॥
तत्पुरस्तादक्षिणतः पश्चिमे चोत्तरे तथा ।
चतुरस्रं ततः कुर्यात् कुण्डं हस्तप्रमाणकम् ॥ ९ ॥
कोणेषु च तथा कुर्याद्वृत्तं चाऽष्टत्रिकोणकम् ।
अर्क-खादिर-पालाश-बिल्वा-ऽश्वत्थ-वटैरपि ॥ १० ॥
औदुम्बर-अपामार्ग-समिद्भिस्तत्र तत्र च ।
मध्ये सर्वसमिद्भिर्वा पालाशैर्वाऽऽज्य-बिल्वकैः ॥ ११ ॥
तिल-तण्डुल-लाजाभिः सक्तसिद्धार्थशालिभिः ।
यवैरेभिस्त्रिमध्वक्तैर्मध्ये सर्वमिति स्थितिः ॥ १२ ॥
दत्वा च पयसा चैव घृतेन मधुनाऽपि वा ।
कोणेषु च तथाऽऽज्येन मध्ये तु कलशैरपि ॥ १३ ॥
स्थापयेत् ततः कुम्भानष्टावष्टासु दिक्षु च ।
वस्त्रयुग्मेन सञ्छन्नान् सर्वौषधि-समन्वितान् ॥ १४ ॥
सर्वरत्नयुतान् युग्मान् गन्ध-पुष्पोदकैरपि ।
हस्तावरप्रमाणं तु बृहत्कुम्भं तु मध्यमे ॥ १५ ॥
तीर्थोदकेन सम्पूर्णं सर्वरत्नौषधैरपि ।
चतुरः कलशाँस्तत्र चतुर्थस्य समं ततः ॥ १६ ॥
कोणेषु च यथान्यायं जल-वस्त्रादिकैर्युतान् ।
स्मरेत् प्रधानं कुम्भे तु नरसिंहाकृतिं हरिम् ॥ १७ ॥
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-चर्मा-ऽसि-शर-शक्तयः ।
पूर्वादिक्रमयोगेन ध्यातव्यं कलशेष्वपि ॥ १८ ॥
बहिः शक्रादि-दिक्पालाँस्तत्र तत्र च संस्मरेत् ।

प्रधानकुम्भात्पुरतः कुर्याच्चक्रं तु मण्डलम् ॥१९॥
तत्र सम्पूज्य देवेशं पश्चाद्धामादि साधयेत् ।
मण्डलाग्रे तदा कुम्भं कुम्भाग्रे कुण्डमेव च ॥२०॥
सर्वत्राऽनलसंस्कारान् स्वगृह्योक्तेन कर्मणा ।
जुहुयादग्निसिध्यर्थमाज्याऽऽहुतिसहस्रकम् ॥२१॥
आनुष्टुभेन मन्त्रेण गुरुर्वाऽस्य पुरोहितः ।
आनुष्टुभो नृसिंहमन्त्रो दशसाहस्रमिष्यते ॥२२॥
समिद्द्रव्यचरूण्येवं हुत्वा मन्त्री समाहितः ।
सम्पत्न्याऽऽज्याऽऽहुतीनां च सहस्रं वाऽयुतं चरेत् ॥२३॥
ततः स्विष्टकृदित्यादि-समापनविधिः क्रमात् ।
एवं समाप्य विधिवद्धोमं तत्र पुरोहितः ॥२४॥
संस्पृशेदुदकुम्भं च जपेद्दशसहस्रकम् ।
पर्यन्तकलशान् स्पृष्ट्वा जपेत्तत्र सहस्रकम् ॥२५॥
अनन्तरेषु कुण्डेषु गायत्र्या प्रणवेन वा ।
ऋत्विग्भिर्युगपत्कार्यं होमतन्त्रं तु पूर्ववत् ॥२६॥
प्रतिकुम्भं सहस्रं च जपेत्तानप्युपस्पृशन् ।
पूजयेल्लोकपालादीन् गन्धादिभिरलङ्कृतः ॥२७॥
अथ राजानमाकार्य-न्वास्तीर्णे सिंहविस्तरे ।
समाप्य च शुचिस्नानं सर्वाऽलङ्कारसंयुतम् ॥२८॥
कुम्भोदकेन देवाग्रे तन्मन्त्रेणाऽभिषेचयेत् ।
पर्यन्तकलशैश्चाऽपि नृपं पश्चाद्गजादिकम् ॥२९॥
अन्यांश्च वाहनान् पूज्य दिव्यलक्षणसंयुतान् ।
गजादिनाऽवशिष्टेन तोयेन स्नापयेद् बुधः ॥३०॥
अन्यवाहान् द्विपायातान् सर्वानेव समाहितः ।
बाह्यकुम्भोदकेनैव स्नापयेच्छत्रसाधकः ॥३१॥

राज्ञो नीराजनं कुर्याद्वाहनेषु च मन्त्रवित्।
अन्येष्वेवं विधिः कार्य्यः सहिरत्नकरः परः ॥३२॥
राजानं वाहनादींश्च तथाऽन्यांश्च पुरोहितः।
सर्वाऽलङ्कारसंयुक्तान् सर्वमङ्गलसंयुतान् ॥३३॥
कृत्वा तु वाचयेत् पश्चाद्ब्राह्मणैराशिषो बहु।
दक्षिणामप्यलं दत्वा ऋत्विग्भ्यो गुरवे नृपः ॥३४॥
वाहनं वस्त्र-भूषाणामाचार्याय निवेदयेत्।
दास-दासीषु भृत्येषु ग्रामादिषु च सर्वशः ॥३५॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तं राजवाहोपरि स्थितम्।
मन्त्रदीपैर्हयैश्चैव ब्राह्मणैः स्वस्तिवाचनैः ॥३६॥
साऽऽनन्दश्चैव ऋत्विग्भिर्वृद्धैर्मन्त्रवरैस्तथा।
आचार्यो राजभवने नृपं संवेशयेत्स्वयम् ॥३७॥
पूर्वं स्नानाऽवशिष्टेन कुम्भतोयेन मन्त्रवित्।
गजशालां च सम्प्रोक्ष्य वाजिशालां तथैव च ॥३८॥
सिद्धार्थतण्डुल-तिलैः पुष्पैर्वाऽप्यवकीर्य्य च।
शालामध्ये नृपः सिंहं सुदर्शनमनामयम् ॥३९॥
पूजयेद् गन्ध-पुष्पाद्यैः सर्वाऽलङ्कारसंयुतैः।
सक्तुभिः कृसरान्नेन कुर्याद्भूतबलिं बहिः ॥४०॥
ततः शालासु सर्वासु ब्राह्मणान् भोजयेद्बलिम्।
ततः संवेशनं कुर्यादाचार्यो गज-वाजिनाम् ॥४१॥
एवं शान्तिं प्रकुर्वीत निमित्ते सति तद्गुरुः।
सपरिच्छदस्य नृपतेर्मन्त्रवित् सुसमाहितः ॥४२॥
सर्वकल्याणसम्पूर्णः सर्वबाधाविवर्जितः।
सपुत्रो राजमन्त्रस्तु नृपस्तेन महीयते ॥४३॥

इति गजशान्तिः।

## अथ महाशान्तिः ।

श्रीकृष्ण उवाच—

महाशान्तिं प्रवक्ष्यामि महादेवेन भाषितम् ।
पार्थिवानां हितार्थाय महादुस्तरतारिणीम् ॥ १ ॥
नृपाऽभिषेके सा कार्या यात्राकाले नृपस्य तु ।
दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते च ग्रहवैगुण्यसम्भवे ॥ २ ॥
विद्युदुल्कानिपाते च जन्मर्क्षे ग्रहभेदने ।
केतूदये च निर्घाते क्षितिकम्पस्य सम्भवे ॥ ३ ॥
प्रसूतौ मूलगण्डान्ते यमलस्य च सम्भवे ।
छत्राणां च ध्वजानां च स्वस्थानात्पतने भुवि ॥ ४ ॥
काकोलूक-कपोतानां प्रवेशे वेश्मनस्तथा ।
क्रूरग्रहाणां चक्रेषु जन्मादिषु विशेषतः ॥ ५ ॥
जन्मनि द्वादशे चैव चतुर्थे वाऽष्टमे तथा ।
यदा स्युर्गुरु-मन्दा-ऽऽराः सूर्यश्चैव विशेषतः ॥ ६ ॥
मन्दः = शनिः । आरो=भौमः ।

युद्धे ग्रहाणां सर्वेषां सूर्य-शीतांशु-कीलके ।
वस्त्रा-ऽऽयुध-गवा-ऽश्वेषु संस्मिते शयनासने ॥ ७ ॥
यद्यग्निः परिदृश्येत रात्राविन्द्रधनुस्तथा ।
वेश्मनश्च तुलाभङ्गो गर्भेष्वश्वतरीषु च ॥ ८ ॥
रविबिम्बद्वये दृष्टे महाशान्तिः प्रशस्यते ।
सर्वाणि दुर्निमित्तानि प्रशमं यान्ति सर्वशः ॥ ९ ॥
तां कुर्युर्ब्राह्मणाः पञ्च कुल-शील-समन्विताः ।
चतुर्वेदास्त्रिवेदाश्च द्विवेदाश्चापि पाण्डव ! ॥ १० ॥
आथर्वणा विशेषेण बह्वृचास्तु सुसंयताः ।
शुचयः श्रुतसम्पन्ना जपहोमपरायणाः ॥ ११ ॥

कृच्छ्रोपवासनक्ताद्यैः कृतकायविशोधनाः ।
पूर्वमाराध्य मन्त्रांस्तु प्रारभेत ततः क्रियाः ॥१२॥

मन्त्रान् विनियोक्ष्यमाणान् ।

दश-द्वादशहस्तं वा मण्डपं कारयेच्छुभम् ।
तन्मध्ये वेदिकां कुर्याच्चतुर्हस्तप्रमाणतः ॥१३॥
आग्नेय्यां कारयेत् कुण्डं हस्तमात्रं सुशोभनम् ।
मेखलात्रयसंयुक्तं योन्या चाऽपि समन्वितम् ॥१४॥
रवीन्द्वोरुपरागेषु महोल्कापतनेषु च ।
उत्पातेषु तथाऽन्येषु निमित्तेषु च सर्वशः ॥१५॥
सर्वारिष्टोपशमना महाशान्तिः प्रशस्यते ।
चारुचन्दन-माले च तोरणाऽलङ्कृते तथा ॥१६॥
गोमयेनोपलिप्ते च मण्डपे ते द्विजातयः ।
शुक्लाम्बरधराः स्नाताः शुक्लमाल्याऽनुलेपनाः ॥१७॥

कर्म कुर्युरिति शेषः ।

ततश्च पञ्चकलशाँस्तस्यां वेद्यां निवेशयेत् ।
आग्नेयादिषु कोणेषु पञ्चमं मध्यतस्तथा ॥१८॥
अष्टपत्रकृते पद्मे चूतपल्लवधारिणम् ।
ब्रह्मकूर्चविधानेन पञ्चगव्यं तु कारयेत् ॥१९॥

ब्रह्मकूर्चविधानं गोमूत्रं ताम्रवर्णाया इत्यादिना ब्रह्मकूर्चप्रकरणे चोक्तम् ।

औषधीः पञ्चरत्नानि रोचनां चन्दनं तथा ।
सिद्धार्थकान् शमीं दूर्वां कुशान् व्रीहि-यवाँस्तथा ॥२०॥
अपामार्गं फलवतीं न्यग्रोधोदुम्बरौ तथा ।
प्लक्षा-ऽश्वत्थ-कपित्थांश्च प्रियङ्गूंश्चूतपल्लवान् ॥२१॥
हस्तिदन्तमृदं चैव कोणकुम्भेषु विन्यसेत् ।

फलवती = गन्धप्रियङ्गुः । प्रियङ्गुः = कङ्गुः ।

पुण्यतीर्थोदकोपेतं पञ्चगव्यं च मध्यमे ॥२२॥
ऋचं वाचमितीदं च वह्निकुम्भाऽभिमन्त्रणम् ।
आशुः शिशानं नैर्ऋत्ये यद्देवा वायुगोचरे ॥२३॥
ईशावास्यं चतुर्थस्य कुम्भस्य त्वभिमन्त्रणम् ।
मध्यमे त्वथ जप्तव्या रुद्राः कुम्भे यजुर्भवाः ॥२४॥
गन्ध-पुष्पा-ऽक्षतैर्वस्त्रैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः ।
फलैश्च नालिकेराद्यैर्दीपकैः कुम्भपूजनम् ॥२५॥
स्वस्तिवाचनकं चैव कारयेत्तदनन्तरम् ।
क्रमेणाऽनेन शनकैरग्निकार्यं च योजयेत् ॥२६॥

अनेन वक्ष्यमाणेनाऽग्निं दूतमिहाग्निं च पूर्वमेव निधापयेत् । पूर्वं कलशस्थापनात् ।

हिरण्यगर्भः समिति ब्रह्मासननियोजने ॥२७॥
कयानसा प्रणीताश्च मन्त्रेण विनिवेशयेत् ।
कृत्वा चास्तरणं वह्नेराज्यसंस्कारमेव च ॥२८॥
अथवाऽऽसादयेदन्नं द्रव्यं यस्य प्रयोजनम् ।
ततः पुरुषसूक्तेन पायसश्रवणं भवेत् ॥२९॥
अभिघार्याऽथ संसिद्धं पायसं स्थापयेद्भुवि ।
अष्टादश प्रमाणेध्मान् दद्यादथ शमीमयान् ॥३०॥
पालाशीः समिधः सप्त सप्त ते इति दापयेत् ।
आघारावाज्यभागौ तु हुत्वा पूर्वक्रमेण तु ॥३१॥
जुहुयादाहुतीः सप्त जातवेदस इत्यृचा ।
स्थालीपाकस्य जुहुयात्पुनर्वै जातवेदसे ॥३२॥
तरत्समन्दीसूक्तेन चतस्रो जुहुयात्ततः ।
यमायेति सप्ताऽन्याः स्वाहान्ता जुहुयात्ततः ॥३३॥

स्वाहान्ता इति सर्वत्र योज्यम् ।

इदं विष्णुस्ततः सप्त जुहुयादाहुतिर्नृप ।
नक्षत्रेभ्यस्ततः स्वाहा सप्तविंशतिराहुतीः ॥३४॥

नक्षत्राहुतयश्च कृतिकाभ्यः स्वाहेत्यादिभिर्मन्त्रैः कार्याः । तत्र रोहिणीद्वय-पुष्यहस्तादित्रया ऽनुराधादित्रया ऽभिजिद्द्वयशतभिषक्-रेवतीष्वेकवचनम् । पुनर्वसु-फाल्गुनीद्वय-विशाखा-ऽश्विनीषु द्विवचनं शेषेषु बहुवचनम् ।

यत्कर्मणेति जुहुयात्ततः स्विष्टकृतं पुनः ।
ग्रहहोमस्ततः कार्यस्तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥३५॥

अत्र तिलविधानं वैकल्पिका यवादिनिवृत्त्यर्थम् ।

प्रायश्चित्तं ततो हुत्वा होमकर्म समापयेत् ।
ततस्तु तूर्यनिर्घोषैः काहला-शङ्खनिस्वनैः ॥३६॥
यजमानस्य कर्त्तव्यो ह्यभिषेको द्विजोत्तमैः ।
काश्मर्यवृक्षसम्भूते समे भद्रासने स्थितम् ॥३७॥

काश्मर्यवृक्षः=श्रीपर्णी । भद्रासनम् ।

वेदीमध्यगतं कृत्वा दुर्निमित्तप्रशान्तये ।
पञ्चभिः कलशैः पूर्णैर्मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम् ॥३८॥
सहस्राक्षेण प्रथमं ततश्चैव शतायुषा ।
सजोषसा इन्द्र इति च विश्वानि वरुणेति च ॥३९॥
द्रुपदा दिवेति च ततः स्नापयेयुः समाहिताः ।
ततो दिशां बलिं दद्याद् विचित्राऽन्नसमाश्रितान् ॥४०॥
नमोऽस्तु सर्वऋक्षेभ्य इति मन्त्रमुदाहरेत् ।
स्नातस्य ब्राह्मणाः सर्वे पठेयुः शान्तिमुत्तमाम् ॥४१॥
शान्तितोयेन धारां च पातयित्वा समन्ततः ।
पुण्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समापयेत् ॥४२॥
तीर्थे देवालये वाऽपि गोदोहं कारयेद् बुधः ।
क्षितिं हिरण्यं वासांसि शयनान्यासनानि च ॥४३॥

विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या विमत्सरः ।
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याच्चैव युधिष्ठिर ! ॥४४॥
भोजनं चाऽनिशं दत्वा ततः सर्वं प्रसिद्ध्यति ।
आयुश्च लभते दीर्घं शत्रून् विजयते क्षणात् ॥४५॥
दुर्गाणि चाऽस्य सिद्ध्यन्ति पुत्रांश्च लभते शुभान् ।
यथा शस्त्रप्रहाराणां कवचं वारणं भवेत् ॥४६॥
तथा दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारणम् ।
अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च ॥४७॥
दया-दाक्षिण्ययुक्तस्य सर्वे सानुग्रहा ग्रहाः ।
अर्थान् समर्द्धयति वर्द्धयते च धर्मं
कामं प्रसाधयति तस्य विनष्टि पापम् ।
यः कारयेत् सकलदोषहरीं महार्थां
शान्तिं प्रशान्तहृदयः पुरुषः सदैव ॥४८॥

इति महाशान्तिः

चर्मण्वती-तरणिजाशुभसङ्गमस्य
सान्निध्यभाजि कृतशालिनि मध्यदेशे ।
ख्याता भरेहनगरी किल तत्र राजा
राजीवलोचनरतो भगवन्तदेवः ॥४९॥

इति श्रीसेंगरवंशावतंस-महाराजाधिराज-श्रीभगवन्तदेवोद्योजिते मीमांसकभट्टशङ्करात्मज-भट्टनीलकण्ठकृते भगवन्तभास्करे शान्तिमयूखो द्वादशः समाप्तः ।

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,
संस्कृत बुकडिपो, कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY New Delhi

D.G.A. 80.
CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
NEW DELHI

Issue Record.

Call No.—
Sa3S/Nil/M.M.-5356

Author—
Nīlkanthabhatta.

Title— Śāntimayūkha.

| Borrower's Name | Date of Issue | Date of Return |
|---|---|---|
| D.V. Kishen | 23-4-83 | 26-4-83 |
| | | |
| | | |

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
New Delhi